Saurashtra University
Re – Accredited Grade 'B' by NAAC
(CGPA 2.93)

Dodiya, N. M., 2005, "*निर्मल वर्मा के उपन्यासों में संवेदना और शिल्प*", thesis PhD, Saurashtra University

http://etheses.saurashtrauniversity.edu/id/eprint/703

Copyright and moral rights for this thesis are retained by the author

A copy can be downloaded for personal non-commercial research or study, without prior permission or charge.

This thesis cannot be reproduced or quoted extensively from without first obtaining permission in writing from the Author.

The content must not be changed in any way or sold commercially in any format or medium without the formal permission of the Author

When referring to this work, full bibliographic details including the author, title, awarding institution and date of the thesis must be given.

Saurashtra University Theses Service
http://etheses.saurashtrauniversity.edu
repository@sauuni.ernet.in

© The Author

# निर्मल वर्मा के उपन्यासों में संवेदना और शिल्प

सौश्चष्ट्र विश्वविद्यालय की पीएचश्चडीश्च(हिन्दी)
की उपाधि के लिए प्रस्तुत
शोध-प्रबंध


प्रस्तुत कर्ता

एन. एम. डोडिया

*व्याख्याता - हिन्दी विभाग*
*बहाउद्दीन कला महाविद्यालय*
*जूनागढ़*



निर्देशक

डॉ. आर. एम. पाण्डेय

*प्राचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,*
*बहाउद्दीन कला महाविद्यालय*
*जूनागढ़*



२००५

# श्रमाणपत्र

श्रमाणित किया जाता है कि *एनश्र एमश्र डोडिया* ने सौश्रष्ट्र विश्वविद्यालय की पीएचश्क्षीश्र (हिन्दी) की उपाधि के लिए मेश्र निर्देशन एवं निश्रीक्षण में **''निर्मल वर्मा के उपन्यासों में संवेदना औश्र शिल्प''** शीर्षक से शोध-श्रबंध तैयाश्र किया है । इस शोध-श्रबंध में इन्होंने उक्त विषय का यथा-शक्ति अध्ययन, अनुशीलन एवं शोध-पश्क्क विश्लेषण - विवेचन कश्क्के वैज्ञानिक ढंग से मौलिक निरूपण किया है ।

साथ ही यह शोध-श्रबंध अथवा इसका कोई अंश अब तक न तो श्रकाशित हुआ है औश्र न ही इसका कहीं कोई उपयोग हुआ है ।

दिनांकः

स्थलः जूनागढ  निर्देशक

**डॉ. आर. एम. पाण्डेय**

*प्राचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,*

*बहाउद्दीन कला महाविद्यालय*

*जूनागढ़*

# श्राक्कथन

## ❀ पूर्व सूत्र :

साहित्य का आधार जीवन है । जीवन परमात्मा की सृष्टि है, इसलिए अनंत है, अघोष है, अगम्य है । साहित्य मनुष्य की सृष्टि है, इसलिए सुबोध है, सुगम है । परमात्मा अपने कामों में जवाबदेह है या नहीं, हमें मालूम नहीं लेकिन साहित्य तो मनुष्य के सामने जवाबदेह है । साहित्य मस्तिष्क की वस्तु नहीं हृदय की वस्तु है । जहाँ ज्ञान और उपदेश असफल होते हैं, वहाँ साहित्य स्थान ले जाता है । यही कारण है कि हम उपनिषदों और अन्य धर्म ग्रंथों को साहित्य की सहायता लेते हुए देखते हैं । हमारे धर्माचार्यो ने देखा कि मनुष्य पर सबसे अधिक प्रभाव मानव–जीवन के सुख–दुःख के वर्णन से ही हो सकता है । अतः उन्होंने मानव जीवन की वे कथाएँ रची जो आज भी हमारे आनंद की गाथाएँ हैं ।

सदियों से भारत भूमि पर अनेक साहित्यकारों ने जन्म लेकर अपने चिंतन द्वारा साहित्यिक सर्जन के माध्यम से माँ सरस्वती की साधना और आराधना की है । इस युग–संभूत साहित्य को इन सरस्वती के पुजारियों ने अनेक रूपों में व्यक्त किया है, जिसे काव्य की संज्ञा दी गई है ।

यह साहित्य किसी भी रूप में रचा गया हो, उसका मूल प्रयोजन संपूर्ण मानव–हित में या प्राणी–हित में निहित है । इसीलिए कहा गया है – 'सहितस्य भावः साहित्यम्' । साहित्य की सार्थकता मानव–कल्याण में ही सन्निहित है । इसे पढ़कर प्रत्येक मानव में उत्थान की भावना होनी चाहिए, उसका परिमार्जन और परिष्कार करना ही साहित्य का केन्द्र रहा है । इसीलिए विद्वानों ने साहित्यकार को ईश्वर का प्रतिनिधि माना है । ईश्वर तत्त्व है, वह अंशी है और साहित्यकार अंश, अतः अंशी और अंश में किसी भी प्रकार का अंतर नहीं होना चाहिए । क्योंकि साहित्य को जन्म देना मातृत्व की साधना के

समान है । एक प्रकार से साहित्यकार एक ऐसा शिल्पी है, जो अपने साहित्य–सृजन से मनुष्य मात्र को सजाता है, सवाँरता है ।

उपन्यास परंपरा पाश्चात्य दुनिया में क्रमशः धार्मिक, रोमांटिक परंपरा का रूप लेते हुए आन्दोलनात्मक ढंग से आगे बढ़ती रही । भारत में यह परंपरा वेदों, और पुराणों से आरंभ होकर नीति कथाओं से संस्कृत और अपभ्रंश परंपराओं से होते हुए प्रेमाख्यानात्मक काव्यों से विकसित होती हुई दिखाई देती है । बाद में प्रेमचंदपूर्व युग के, सामाजिक उपन्यास, तिलस्मी उपन्यास, जासूसी और ऐतिहासिक उपन्यास पहली बार संपूर्ण हिन्दी गद्य के रूप में सामने आता है । जिसे हिन्दी पाठकों ने अपनी संपूर्ण चेतना से स्वीकार कर उसे सराहा । यह कथा परंपरा एक ऐसी परंपरा थी, जिसने अहिन्दी भाषियों को भी हिन्दी और उर्दू सीखने के लिए विवश किया । इस प्रकार इस परंपरा ने हिन्दी में उपन्यास की न केवल पहचान दी, बल्कि उसे एक विशाल पाठक वर्ग से जोड़कर हिन्दी उपन्यास की जमीन तैयार कर दी, और उसका परिणाम यह हुआ कि बंगला से बहुत सारे उपन्यासों के अनुवाद हिन्दी में आने लगे और हिन्दी ने उपन्यास रचना के प्रति एक नयी दृष्टि का विकास किया ।

हिन्दी में पहली बार प्रेमचंद एक ऐसे उपन्यासकार के रूप में आर्विभूत हुए, जिन्होंने अपने देशकाल और वर्तमान को काल्पनिकता के विपरीत संपूर्ण चेतना से मुखरित रूप दिया । उन्होंने समाज के उन दलित, मजदूर किसानों को कथा का नायक बनाया, जो भारतीय साहित्य परंपरा में निम्न समझे जाते थे । भारत में अंग्रेजी राज एक ओर जहाँ रजवाड़ों को अपनी मुट्ठी में रखकर अपनी जड़े जमाता गया, वहीं किसानों, मजदूरों की विपन्न स्थिति को और भी विपन्न करता हुआ कृषि और उसकी उपज पर हावी होता गया । परिणामतः जमीदारों, सामंतों, पुलिस और कोर्ट की घेराबंदी किसानों के आसपास इस तरह कसती गई कि वह अपनी ही जमीन में सोना उगाता हुआ दाने–दाने को तरसने लगा । जिसका परिणाम यह हुआ कि महाजनों की देनदारी मूल और ब्याज का व्यापार भी उन्हें चारों ओर से जकड़ता गया । प्रेमचंद भारत छोड़ो आंदोलन के साथ–साथ भारतीय किसान आंदोलन की आवश्यकता पर बल

देने लगे थे और इस प्रयत्न में उन्होंने प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कर्मभूमि और गोदान जैसे महाउपन्यासों का सृजन किया, जिनके नायक किसान आंदोलन परंपरा के पोषक रहे हैं ।

इस दौर में प्रेमचंद एक ओर जहाँ स्वराज की माँग से जुड़े थे, वहीं दूसरी ओर सोवियत संघ की क्रांति उन्हें आकर्षित करने लगी थी । उनका गांधीवाद से मोहभंग होने लगा था और वे खुलकर किसान आंदोलन की माँग करने लगे थे । शायद उन्हें इस बात का पता चल चुका था कि गांधीवाद के आदर्श सामाजिकता से लौटकर उन्हीं मूल्यों की सुरक्षा करने लगती है, जिसके विरोध में राष्ट्रीय आंदोलन शुरु हुआ था । जो भी हो, प्रेमचंद ने उपन्यास रचना की एक संपूर्ण यात्रा इस तरह प्रशस्थ की जिसे भारतीय उपन्यास का सबसे मजबूत आधार स्तंभ माना जायेगा । इसका परिणाम यह हुआ कि उस युग में प्रेमचंद की तरह ही लिखनेवाले बहुत से रचनाकार इस परंपरा में शामिल हो गये और जिसे प्रेमचंद स्कूल के भीतर समाहित कर लिया गया । इन रचनाकारों में चंडीप्रसाद 'हृदयेश' (मनोरमा, मंगल प्रभात), विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' (माँ, भिखारिणी), चतुरसेन शास्त्री (हृदय की परख, व्यभिचार, हृदय की प्यास, आत्मदाह), ऋृषभचरण जैन (भाई, मास्टर साहब, वैश्यापुत्र, सत्याग्रह), भगवती प्रसाद बाजपेयी (अनाथ पत्नी, प्रेमपथ, त्यागमय, निमंत्रण), पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' (दिल्ली का दलाल, सरकार तुम्हारी आँखों में) जैसे महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर थे, जिन्होंने प्रेमचंद की यात्रा को अपनी लेखनी से और भी परिपुष्ट किया ।

जिन दिनों प्रेमचंद अपने देशकाल की लड़ाई वर्तमान के धरातल पर लड़ रहे थे, उन दिनों जयशंकर प्रसाद, चतुरसेन शास्त्री और वृंदावनलाल वर्मा जैसे रचनाकार भी थे, जिन्होंने भारतीयता की पहचान इतिहास और सांस्कृतिक उत्थान को लेना आरंभ किया । प्रसाद भारतीय इतिहास और पुराण की परिक्रमा कर सांस्कृतिक युग की वापसी के प्रति कटिबद्ध थे । उन्होंने काशी, मथुरा और वृंदावन जैसे तीर्थस्थानों को केन्द्र बनाकर ब्रह्मानंद में डूबी हुई भक्त मंडली के यौवन प्रेम और नैसर्गिक भूख को केन्द्र में रखकर कंकाल जैसे उपन्यासों की रचना की । उन्होंने प्रेम के आदर्श स्वरूप, आत्मसंयम को दर्शाते हुए ग्रामसुधार

पर आधारित तितली जैसे उपन्यास की रचना की । स्पष्टतः प्रसाद अपनी पौराणिक ऐतिहासिक भारतीयता से उतरकर उस वर्तमान का अनुसरण करने लगे थे, जो प्रेमचंद की रचनात्मक दुनिया थी ।

प्रेमचंद की रचनात्मक दृष्टि जयशंकर प्रसाद जैसे महान रचनाकार को प्रभावित कर गई । पर आचार्य चतुरसेन शास्त्री और वृंदावनलाल वर्मा जैसे रचनाकार देशकाल में भी पौराणिक और ऐतिहासिकता को समाजोत्थान का आधार बनाये रहे । आचार्य चतुरसेन ने वैशाली की नगरवधू, अभिलाषा, आत्मदाह जैसे महत्त्वपूर्ण पौराणिक उपन्यास लिखे तो वृंदावनलाल वर्मा ने गढ़कुंडार, विराटा की पद्मिनी, झाँसी की रानी और मृगनयनी जैसी महत्त्वपूर्ण कृतियाँ दीं ।

इस देशकाल के बाद एक ओर जहाँ राष्ट्रीय आंदोलन क्रमशः कमजोर पड़ने लगा, वहीं सारी दुनिया में अंग्रेजों का सूर्य घूमिल पड़ने लगा था । फ्रायड़ के मनोविज्ञान से प्रभावित होकर सारी दुनिया के रचनाकारों में व्यक्तिमन की अंर्तपरतों को खोलने का प्रचलन आरंभ हुआ । हिन्दी में इलाचंद जोशी (परदे की रानी, प्रेत और छाया, मुक्तिपथ, जहाज का पंछी) जैनेन्द्रकुमार, (परख, तपोभूमि, सुनीता, त्यागपत्र, कल्याणी, सुखदा), अज्ञेय (शेखर एक जीवनी, नदी के द्वीप, अपने–अपने अजनबी), जैसे लेखकों ने इस परंपरा को बहुत महत्त्वपूर्ण ढंग से स्थापित किया । जबकि यह संभव नहीं था कि प्रेमचंद और प्रसाद स्कूल द्वारा बनायी गई लम्बी परंपरा को साधारण ढंग से मिटाकर उस पर नई रचना यात्रा का निर्माण किया जा सके । इन रचनाकारों ने अपनी प्रतिभा और महेनत से अपने मार्ग को आवश्यक रूप में स्थापित कर दिया ।

मनोवैज्ञानिक परंपरा की स्थापना के बाद भी हिन्दी उपन्यास अपनी दिशा में आगे बढ़ता रहा । यशपाल (झूठा–सच, दादा कामरेड), भगवतीचरण वर्मा (भूले बिसरे रास्ते, चित्रलेखा), अमृतलाल नागर (अमृत और विष, मानस का हंस), रांगेय राघव (मुर्दो का टीला, कब–तक पुकारूँ), अश्क (गिरती दिवारें, गर्म राख), हजारी प्रसाद द्विवेदी (अनामदास का पोथा, पुनर्नवा), 'रेणु' (मैला आँचल, परती परिकथा), नागार्जुन (बाबा बटेसरनाथ, बलचनमा) जैसे रचनाकारों ने उपन्यास की विविध रंगमय तस्वीर हिन्दी साहित्य जगत में प्रस्तुत की ।

हिन्दी कथा साहित्य में सबसे बड़ा कथात्मक आंदोलन नई कहानी के साथ आरंभ हुआ । रचनाकारों ने कथा के सारे सूत्र अस्वीकार करते हुए कथा के किसी एक बिंदु पर ही रचना की संपूर्ण यात्रा को केन्द्रित करना शुरु किया । परिणाम यह हुआ कि नई कहानी के रचनाकारों ने बहुत लम्बे समय तक कहानी लेखन की ओर ध्यान दिया । किन्तु जब उन्हें इस बात का ध्यान आया कि कहानी कथा का अंतिम विराम नहीं है उन्हें औपन्यासिक क्षेत्र में प्रवेश करना ही होगा, तो वे अपने अनुभव संसार में सीधे उतर गये और औपन्यासिक रचना के लिए अपनी नई कहानी संबंधी मान्यताओं को स्थान देकर उन्होंने सृजन आरंभ किया । इस कथायात्रा में मोहन राकेश, (अंधेरे बंद कमरे, अंतराल), कृष्णा सोबती (यारो के यार, मित्रो मरजानी), कमलेश्वर (एक सड़क सत्तावत गलियाँ, लोटेंगे मुसाफिर), राजेन्द्र यादव (सारा आकाश, उखड़े हुए लोग), जैसे रचनाकारों ने नयेपन की मान्यताओं को अपने–अपने ढंग से पुष्ट किया । इस शृंखला में निर्मल वर्मा ऐसे रचनाकार हैं, जिनकी कथाकृति 'परिन्दे' को डॉ. नामवरसिंह ने हिन्दी की पहली नई कहानी का दर्जा दिया था । निर्मल वर्मा ने लम्बी कहानियों से होते हुए 'वे दिन, तक चिथड़ा सुख, लाल टीन की छत, रात का रिपोर्टर और अंतिम अरण्य' जैसे लघु उपन्यासों का सृजन किया । निर्मल वर्मा अपने रहन–सहन, चिंतन और रचनात्मक परिवेश में भारतीय होते हुए भी पाश्चात्य शैली के अधिकाधिक निकट रहे हैं । स्पष्टतः उनकी रचनाओं पर उस शैली का बहुत अधिक प्रभाव रहा । दूसरे शब्दों में कहा जाय तो निर्मल वर्मा एक ऐसे भारतीय लेखक हैं, जिनके उपन्यास भारतीयता से मूल से बद्ध होने के बाद भी उस में वैश्विक जगत का आकलन है, जो युद्धोतर संस्कृतियों की देन है । इस सुलझन के माध्यम से निर्मलवर्मा की इसी अंतर्राष्ट्रीय दुनिया की संवेदनात्मक और शिल्पगत पहचान को ढूँढने की कोशिश की गई है ।

ऐसे ही एक मानवतावादी वैश्विक संवेदना से संवेदित उपन्यासकार के उपन्यासों का अनुशीलन करने का मैंने एक विनम्र प्रयास किया है ।

## ❀ प्रेरणा एवं विषय चयन :

हिन्दी के प्रति मेरा लगाव विद्यार्थी काल से ही रहा है । हिन्दी भाषा एवं साहित्य के प्रति विशेष लगाव होने के कारण मैंने स्नातकोत्तर कक्षा में हिन्दी विषय ही पसंद किया । इसके बाद एक अध्यापक के रूप में कई बरसों की सेवा के उपरांत जब मैंने शोध की दिशा में कदम बढ़ाया तो सबसे पहले श्रद्धेय गुरुवर डॉ. आर. एम. पांडेय साहब से विषय के बारे में परामर्श किया । डॉ. पांडेय साहब ने मेरे सामने वैसे कई आधुनिक एवं प्राचीन विषय रखे जो शोधकार्य की दृष्टि से नये थे । उन विषयों में से निर्मल वर्मा के उपन्यासों की बात बताई । मैंने उनकी 'परिन्दे' कहानी पढ़ी थी, मैं उससे बहुत प्रभावित हुआ था । निर्मल वर्मा के उपन्यास की बात बताने पर मैंने उनके उपन्यासों का गहराई से अध्ययन किया । बाद में डॉ. पांडेय साहब से बैठकर मैंने उसी विषय पर ही शोधकार्य करने की इच्छा व्यक्त की और ''निर्मल वर्मा के उपन्यासों में संवेदना और शिल्प'' विषय को लेकर डॉ. आर. एम. पांडेय साहब के निर्देशन में काम शुरु किया । उनके निर्देशन में मैंने विषय का अध्ययन आरंभ किया । जैसे–जैसे निर्मल वर्मा की रचनाओं से साक्षात्कार करता गया, वैसे–वैसे उनके शब्द संसार के भेद मेरे सामने खुलते चले गये । इस प्रकार ''निर्मल वर्मा के उपन्यासों में संवेदना और शिल्प'' विषय पर मैं आश्वस्थ होकर कार्य करने लगा । एक बड़ी लम्बी चिन्तन–मनन की प्रक्रिया से गुजरते हुए मैं संपूर्णतः की इस स्थिति में पहुँचा हूँ, इसका मुझे पूर्णतः परितोष है ।

## ❀ सामग्री संकलन :

शोधकार्य एवं सामग्री संकलन की प्रक्रिया अपने–आप में बड़ा कठिन कार्य है । सारे वैज्ञानिक संशाधनों के विकास होते हुए भी अहिन्दी भाषी प्रदेशों में, खासकर ग्रांमाचल प्रदेशों में रहनेवाले शोधकर्ताओं के लिए शोध–सामग्री सहजता–सरलता से उपलब्ध हो पाना या प्राप्त कर पाना अपने आप में बड़ा कठिन काम है । मुझे भी निर्मल वर्माजी की रचनाओं को प्राप्त करने के लिए अनेक प्रकाशन संस्थानों का सहारा लेना पड़ा है ।

उपन्यास संबंधी आलोचनात्मक पुस्तकें हमारी ही कॉलेज पुस्तकालय, जिल्ला पुस्तकालय जूनागढ़, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय राजकोट, गूजरात विद्यापीठ अहमदाबाद से प्राप्त हुई हैं । इसके अतिरिक्त गुजरात युनिवर्सिटी की प्राध्यापिकाएँ श्रीमती रेखा शर्मा और ज्योति शर्मा जिन्होंने निर्मल वर्मा पर शोध कार्य किया है उनसे भी मुझे पुस्तकीय सहयोग प्राप्त होता रहा है ।

इसके अतिरिक्त मैंने हिन्दी में पीएच.डी. हुए और रजिस्ट्रेशन किये गये नामों की नामावली देखी तो उसमें अलग–अलग युनिवर्सिटियों में रजिस्ट्रेशन हुए लोगों से पत्राचार के माध्यम से समय–समय पर पत्रिकाओं में प्रकाशित निर्मलजी के लेखों और पुस्तक संबंधी और कई पुस्तकें जो प्रकाशित हुई हैं इसकी जानकारी भी उन लोगों से मिलती रही ।

मैं बड़ा भाग्यशाली रहा कि हमारी ही कॉलेज बहाउद्दीन कला महाविद्यालय का पुस्तकालय इतना समृद्ध है कि मुझे आलोचनात्मक पुस्तकों के लिए ज्यादा समय कहीं भटकना न पड़ा । कई–ग्रंथालयों से और हिन्दी साहित्य प्रेमियों से पत्र–पत्रिकाएँ भी मिल गई जो शोधकार्य में मुझे बहुत उपयोगी सिद्ध हुई ।

वैसे सामग्री संकलन की यात्रा बड़ी कष्टप्रद रही फिर भी अंत में वह एक सुखद अनुभूति बन गई । इस प्रकार सहृदयपूर्ण, सक्रिय तथा आत्मीय लोगों के सहयोग से मेरी सामग्री–संकलन की यात्रा पूरी हुई और इसके परिणाम स्वरूप यह शोध प्रबंध प्रस्तुत हो सका ।

## ❀ पूर्ववर्ती शोध–कार्य :

निर्मल वर्मा एक ऐसे कथाकार हैं जिनका गद्य लगभग कथात्मक और संवेदनाओं की सूक्ष्म दुनिया से भरा हुआ है । यहीं कारण है जो उन पर शोध–प्रबष्ंध का अभाव दिखाई देता है । फिर भी निर्मल वर्मा के कथा साहित्य को समझने के लिए निम्नलिखित शोध–प्रबंधों का योगदान रहा है ।

(१) हिन्दी लघु उपन्यासों के संदर्भ में निर्मल वर्मा के उपन्यास – डॉ. छाया मोहरिर

(२) कथाकार निर्मल वर्मा – डॉ. नरेन्द्र इष्टवाल

(३) निर्मलवर्मा और सुरेश जोशी की कथा साहित्य – डॉ. रेखा शर्मा

(४) निर्मल वर्मा के उपन्यास – ज्योति शर्मा

इन शोध–प्रबंधों के अतिरिक्त निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण पुस्तकों ने निर्मल वर्मा के साहित्य, चिंतन और विश्व व्यापी प्रश्नधर्मिता को अलग–अलग लेखकों की दृष्टियों से देखा और परखा है । इनमें निर्मल वर्मा से लिए गये साक्षात्कार भी उनके साहित्य विस्तार को समझने में समर्थ रहे हैं ।

(१) निर्मल वर्मा – संपादक अशोक बाजपेयी ।

(२) निर्मल वर्मा सृजन और चिंतन – डॉ. प्रेमचंद

(३) निर्मल वर्मा और उत्तर उपनिवेशवाद – डॉ. सुधीश पचौरी

उपरोक्त कृतियों मे अशोक बाजपेयी द्वारा संपादित पुस्तक जहाँ विभिन्न लेखकों के वैचारिक निबंधों का संकलन है वहीं, डॉ. प्रेमसिंह की पुस्तक भी उसका एक दूसरा पक्ष है । डॉ. सुधीश पचौरी ने तो निर्मल वर्मा के हिन्दुत्व, भारतीयता और अंतर्राष्टीय परिवेश को अपने ही तर्को के आधार पर प्रभावित किया है । ये शोध–प्रबंध संपादन और समीक्षा ग्रंथ मेरे शोध के लिए बहुत सहायक रहे हैं ।

## ❀ शोध–प्रबंध की विशेषताएँ :

(१) हिन्दी उपन्यास जगत में निर्मल वर्मा के व्यक्तित्व और परिवेश को उनकी रचनात्मक दुनिया के संदर्भ में निरुपित करने विनम्र प्रयास है ।

(२) निर्मल वर्मा के अद्यावधि उपन्यासों का सांगोपांग अध्ययन करने का यह सर्व प्रथम प्रयास है ।

(३) निर्मल वर्मा का रचना संसार की परिक्रमा करते हुए उनके रचनात्मक संसार को संपूर्ण रूप में समझने का प्रयत्न करना ।

(४) हिन्दी उपन्यास की परंपरा निरुपित करते हुए निर्मल वर्मा रचनात्मक पहचान को स्पष्ट करना ।

(५) निर्मल वर्मा के कथा संसार में संवेदनाओं की परख करते हुए उसे समकालिन दुनिया के संदर्भ में स्थापित करना ।

(६) निर्मल वर्मा के उपन्यासों में भाषा एवं शिल्पगत वैशिष्ट्य की पहचान करना ।

(७) निर्मल वर्मा को देशकाल के संदर्भ में परखते हुए उनके लेखन को समकालिनता से जोड़ना ।

## ❀ शोध की संभावनाएँ :

आधुनिक लेखन पंरपरा के साथ जुड़े निर्मल वर्मा के साहित्य पर दृष्टि डालते हुए परंपरा से हटकर रचनाधर्मी प्रयोग दिखाई देते हैं । उन्होंने पौर्वात्य और पाश्चात्य दोनों परंपराओं को केन्द्र में रखकर समाज के बदलते हुए तेवर को अपने उपन्यासों के अंदर प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है । इस अध्ययन के दौरान मुझे लेखक के बहु आयामी व्यक्तित्व और बहुमुखी साहित्य धारा में शोध करने की पर्याप्त संभावनाएँ दिखाई दीं । आधुनिक संदर्भ में भाषा–संबंधी विषय को लेकर शोध की पर्याप्त संभावनाएँ उपलब्ध हैं । साथ ही भारतीय भाषाओं के उपन्यासों एवं पाश्चात्य दृष्टि से शोध की पर्याप्त संभावनाएँ प्रवर्तमान है । मेरा मानना है उनकी प्रत्येक कृति भाषा–वैज्ञानिक परंपरा से शोध के लिए पर्याप्त अवसर रखती है । अतः उनकी रचनाओं का समग्र एवं स्वतंत्र मूल्यांकन अनुवर्ती संशोधकों के लिए सराहनीय एवं उत्कृष्ठ रहेगा । मैंने शोध की मर्यादा को ध्यान में रखकर इसे बृहद रूप न देकर संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया है तथापि भविष्य में मेरी लालसा इसी विषय को बृहद् अध्ययन हेतु चयन करने की है ।

## ❀ शोध प्रबंध का सारांश :

इस शोध–प्रबंध के प्रथम अध्याय में निर्मल वर्मा के व्यक्तित्व का निरूपण करते हुए उनके बचपन, शिक्षा–दीक्षा, विदेश–प्रवास, वापसी और भारतीयता के बीच उनके लेखन और अंतर्मन पर दृष्टि डाली गई है । कोई भी लेखक रचनात्मक रूप से चाहे कितनी भी ऊँचाई पर पहुँच जाय, उसके अतीत की जड़े लगातार उसका पीछा करती रहती हैं । निर्मल वर्मा की रचनाओं में प्रायः पहाड़ों की दुनिया बार–बार लौटती है । पहाड़ी, धुंध, उदासी और अकेलेपन से

वे अपनी रचनाओं में बार–बार उलझते हुए दिखाई देते हैं । जैसे यह लगता है कि ये पहाड़ी संसार ही उनके लेखन की वह दुनिया है जिसके रंग को वह अपनी रचनाओं में बार–बार पकड़ने की कोशिश करते हैं । इस अध्याय में निर्मल वर्मा के पहाड़ी जीवन से आरंभ हुई यात्रा विदेश प्रवास और स्वदेश–वापसी पर अपनी कृतियों में बार–बार पहाड़ लौटने तक उनके परिवेशगत यथार्थ का अंकन किया गया है । इस माध्यम से रचनाकार के परिवेश से उसके रचनाकर्म को प्रमाणित करने की कोशिश की गई है ।

द्वितीय अध्याय में निर्मल वर्मा के संपूर्ण रचना संसार पर व्यापक दृष्टि डाली है, जिसमें उनकी कहानियों की दुनिया है, निबंधों का वैचारिक संसार है, यात्रा–संस्मरण हैं, डायरी के अनुभव हैं, नाटक और अनुवाद हैं और एक लम्बा रचना कर्म हैं, जिसके बीच से निर्मल वर्मा अपने उपन्यासों का ताना–बाना बुनते हुए एक व्यापक संवेदना से दुनिया की पड़ताल करता दिखाई देता है ।

तृतीय अध्याय में निर्मल वर्मा से पूर्व हिन्दी उपन्यास की यह सारी परंपरा निरुपित है, जो पश्चिम से होती हुई भारतीयता में वैदिकता से लेकर निर्मल वर्मा के समकालिनता तक मजबूत रूप से फैली हुई दिखाई देती है । इस परंपरा में निर्मल वर्मा कहाँ और किस मुकाम पर है, इस बात का सम्यक् चित्रण किया गया है ।

चतुर्थ अध्याय में निर्मल वर्मा के उपन्यासों की परख है । 'वे दिन' से लेकर 'अन्तिम अरण्य' तक की कथावस्तु में मुख्य पुरुषपात्र एवं स्त्री पात्रों के चरित्रों पर दृष्टि डालते हुए न केवल उनका संवेदनात्मक आकलन किया गया है, बल्कि देशकाल से उनका संबंध निरुपित करते हुए, उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय धरातल पर देखने और परखने की कोशिश की गई है ।

पंचम अध्याय में निर्मल वर्मा के उपन्यासों में वाणी संवेदनाओं की सूक्ष्म पड़ताल है । निर्मल वर्मा अपने कथा संसार में किस संदर्भ में वस्तु निरूपण करते हैं, यथार्थ के प्रति उनका कैसा दृष्टिकोण है, व्यक्तिगत स्वतंत्रता एवं संबंधों को वे किस दृष्टि से देखते हैं इन बातों की परख इस अध्याय में की गई है । निर्मल वर्मा का बोध मूलतः महानगरीय बोध है, जहाँ मृत्युबोध है,

जिजीविषा है, मोहभंग है, प्रेम और पीढ़ियों का संघर्ष है, संस्कृतियों का द्वन्द्व है, बदलते मूल्यबोध हैं और इन सबके आधार पर संवेदनाओं के विविध धरातल हैं, जिनसे निर्मल वर्मा के रचनाकार की गहरी पहचान होती है ।

अंतिम और षष्टम अध्याय में निर्मल वर्मा के रचना–संसार की भाषागत एवं शिल्पगत पहचान की परख की गई है । निर्मल वर्मा एक ऐसे कथाकार हैं जिन्होंने कहानी कहने की अपनी ही शैली का निर्माण किया है । स्पष्ट है कि उनके बोध का धरातल नये शिल्प की माँग करता है । यह शिल्प अपने पीछे भाषा, मुहावरे, लय एवं प्रतीकों की एक वैसी आभा छोड़ जाता है, जिसकी रोशनी में उनका कथा–साहित्य सर्वाधिक अलग और महत्त्वपूर्ण दिखाई देता है । अंत में उपसंहार प्रस्तुत करते हुए निर्मल वर्मा के उपन्यासों के उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है ।

इस शोध–प्रबंध में निर्मल वर्मा के लेखन के इन्ही विशिष्ट पक्षों की पहचान की गयी है ।

## ❀ कृतज्ञता ज्ञापन :

कुछ लोग आभार दर्शन को सिर्फ औपचारिकता ही मानते हैं, किन्तु मेरे लिए यह श्रद्धा व कृतज्ञता का विषय है । इस शोध–ग्रंथ को पूर्ण करने में जिन विद्वानों, गुरुजनों तथा आत्मीयजनों का प्रोत्साहन एवं सहयोग मिला है और जिनकी कृतियों से मुझे इस शोध–कार्य में सहायता मिली है, उन सभी महानुभावों के चरणों में मैं श्रद्धा–सुमन अर्पित करता हूँ ।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध परम सम्माननीय डॉ. राजेन्द्रप्रसाद एम. पाण्डेय साहब, प्राचार्य एवं हिन्दी विभागाध्यक्ष, बहाउद्दीन कला महाविद्यालय, जूनागढ़ के कुशल एवं आत्मीय निर्देशन में तैयार किया गया है । उन्होंने न केवल मेरे द्वारा प्रस्तावित इस विषय को अपनी सहर्ष स्वीकृति दी, बल्कि इस लम्बी यात्रा के दौर में उन्होंने अति व्यस्त जीवन में से भी समय निकालकर विषय चयन से लेकर इसकी संपूर्णता तक जिस सरलता, सहृदयता और आत्मीयता का परिचय दिया है, मैं सदा उनका ऋणी रहूँगा । उन्होंने लगातार तीन वर्ष तक मुझे काफी कठिनाईयों के बीच निरंतर आगे बढ़ने की प्रेरणा एवं शक्ति प्रदान की है । उन्होंने अपना मूल्यवान समय देकर विषय संबंधी जिज्ञासाओं का निराकरण किया तथा महत्त्वपूर्ण जानकारी देकर अनजाने तथ्यों को उजागर किया । उनके कुशल निर्देशन और अपार सौजन्य के बिना मेरा यह कार्य असंभव था । उनके प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ ।

मेरी इस साधना–यात्रा में मेरे विद्यालय के प्राक्तन प्राचार्य एवं हिन्दी विभागाध्यक्ष माननीय डॉ. घनश्याम अग्रवाल साहब के प्रति भी मैं हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने मुझे इस शोध–कार्य हेतु सदैव प्रोत्साहित किया था ।

मेरी इस ज्ञान–साधना में अपने ही महाविद्यालय के प्राक्तन प्राचार्य सी. पी. रावत साहब तथा सहृदयी मित्रों के. के. परमार, मालिया कोलेज के प्राचार्य एवं हिन्दी विभागाध्यक्ष वी. एस. गोहिल, चोकसी कॉलेज, वेरावल के हिन्दी विभागाध्यक्ष पी. आर. डोडिया साहब तथा अन्य सहृदयी मित्रों डॉ. एम. ए. यादव, जे. बी. झनकाट का हृदय से आभार ज्ञापित करता हूँ जिनका स्नेह मुझे सदैव इस कार्य में गतिशील बनाये रखा ।

मैं अपने ही महाविद्यालय के उन विद्वान सहृदय अध्यापकों को कैसे भूल सकता हूँ जिनका जाने–अनजाने सहयोग प्राप्त होता रहा है । मैं अपने कोलेज के सभी विभागाध्यक्ष, प्राध्यापकों तथा सभी कर्मचारियों के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ जिनका सहयोग और जिनकी प्रेरणा सदैव मुझे सुलभ रही है ।

मैं बी. आर. एस. कोलेज, डुमियाणी के सहृदयी मित्र व अध्यापक डॉ. एम. जे. देसाणी जिन्होंने मुझे आवश्यक पुस्तकें एवं पत्र–पत्रिकाएँ सुलभ करवाकर मेरी इस साधना को सदैव बल प्रदान किया है, मैं उनका भी आभारी हूँ । इनके अतिरिक्त गुजरात युनिवर्सिटी की श्रीमती रेखा शर्मा, ज्योति शर्मा जिन्होंने मुझे आवश्यक पुस्तकें दिलवाकर अनुग्रहीत किया, मैं उनका आभारी हूँ ।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध की सामग्री संकलित करने हेतु मैंने जिन ग्रंथालयों का उपयोग किया है उनमें जिल्ला पुस्तकालय जूनागढ़, गूजरात विद्यापीठ अहमदाबाद, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय राजकोट तथा बहाउद्दीन कला महाविद्यालय जूनागढ़ आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । इन सभी ग्रंथालयों के ग्रंथपालों के प्रति मैं आभार ज्ञापित करता हूँ ।

मेरे माता–पिता का सदैव मेरे प्रति सहग प्रेम रहा है उनका अपार स्नेह एवं वात्सल्य मुझे अभिसिंचन करता रहा है । मुझे अपने अनुज (कानजी, भावेश), अर्धांगिनी श्रीमती ज्योत्स्ना तथा परिवार के अन्य स्वजनों का अपूर्व सहयोग सदैव सुलभ रहा है । इस कठिन कार्य की साधना में मेरे बच्चे सुपुत्र परमजीत तथा सुपुत्री केयुरी का भी सहयोग रहा है कि वह कभी भी मुझे अध्ययन में विक्षेप नहीं बने ।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध की रूप–रेखा का टंकण कार्य सुचारु रूप से करने के लिए मैं कमलेश कोमर्सीयल सेन्टर, जामनगर के सभी सदस्यों का भी आभारी हूँ ।

अंत में मैं उन सभी गुरुजनों, सहकार्यकर, मित्रों, सहृदयी शुभचिंतकों के प्रति आभार ज्ञापित करता हूँ जिन्होंने मुझे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में इस कार्य में सहायता प्रदान की है ।

*श्री बहाउद्दीन आर्टस कोलेज*      *विनीत*
*जूनागढ़*      *एन. एम. डोडिया*

# अनुक्रमणिका


| | | पृष्ट क्रमांक |
|---|---|---|
| १ | प्रथम अध्याय :<br>निर्मल वर्मा का व्यक्तित्व । | ००१–०३१ |
| २ | द्वितीय अध्याय :<br>निर्मल वर्मा का रचना–संसार । | ०३२–०६८ |
| ३ | तृतीय अध्याय<br>उपन्यास परंपरा और विकास । | ०६९–११० |
| ४ | चतुर्थ अध्याय :<br>निर्मल वर्मा के उपन्यास । | १११–१८९ |
| ५ | पंचम अध्याय :<br>निर्मल वर्मा के उपन्यासों में संवेदना । | १९०–२२४ |
| ६ | षष्ठ अध्याय :<br>निर्मल वर्मा के उपन्यासों का शिल्प पक्ष | २२५–२६६ |
| | उपसंहार | २६७–२८१ |
| | परिशिष्ट : सहायक ग्रंथसूची | २८२–२८६ |
| | (१) आधार ग्रंथ :<br>उपन्यासकार निर्मल वर्मा की रचनाएँ | |
| | (२) संदर्भ ग्रंथ<br>○ सहायक ग्रंथ<br>○ पत्र–पत्रिकाएँ<br>○ शब्द कोश | |

# प्रथम अध्याय
# निर्मल वर्मा का व्यक्तित्व

(१) निर्मल वर्मा का जीवन

(२) बचपन

(३) माता-पिता

(४) शिक्षा-दीक्षा

(५) विवाह एवं दाम्पत्य जीवन

(६) प्रारंभिक साहित्य

(७) विदेश प्रवास

(८) स्वदेश वापसी

(९) पुरस्कार एवं सम्मान

(१०) अभिरुचियाँ

*(i) भ्रमण संबंधी अभिरुचियाँ*
*(ii) अध्ययन संबंधी अभिरुचियाँ*
*(iii) समकालीन कलाओं के प्रति अभिरुचि*

# प्रथम अध्याय
# निर्मल वर्मा का व्यक्तित्व

## (१) निर्मल वर्मा का जीवन :

कोई भी महान रचनाकार अपनी रचना के सूझ उन जगहों से ग्रहण करता है, जहाँ उसके जीवन के अनेक वर्ष व्यतीत हुए हों । लेकिन रचना-यात्रा की शुरुआत वहीं से होती है, जहाँ उसकी अपनी जड़े हों । उन जड़ों से होकर उपर उड़ती हुई जिंदगी जैसे-जैसे आगे बढ़ती है, उसका रचनात्मक विकास उसके साथ-साथ सफर करने लगता है । लेकिन यह भी सच है कि वह रचनात्मक रूप से चाहे किसी भी मंजिल पर पहुँच जाये, अतीत की जड़े लगातार उसका पीछा करती रहती हैं । निर्मल वर्मा की रचनाओं में प्रायः पहाड़ों की दुनिया बार-बार लौटती है । पहाड़ी धुंध, उदासी और अकेलेपन से वे अपनी रचनाओं में बार-बार उलझते दिखाई देते हैं । और तब लगता है यह पहाड़ी संसार ही उनके लेखन की वह दुनिया है, जिसके रस, रंग को वह अपनी रचनाओं में पकड़ने में बार-बार अतीत की ओर लौट रहे हों । निर्मल वर्मा के व्यक्तित्व की परख करनी है तो हमें अतीत की उस दुनिया में लौटना होगा, जहां उन्होंने जीवन को पहली बार स्वप्निल आंखों से देखा होगा । इस दृष्टि से उनके प्रारंभिक वर्षो से होकर क्रमशः आगे बढ़ते हुए, हमें उनके जीवन की परख करनी होगी ।

### ✦ *जन्म* :

निर्मल वर्मा के पिता श्री नन्दकुमार वर्मा पंजाब के एक ऐसे परिवार के उत्तराधिकारी थे, जो आर्थिक दृष्टि से बहुत सम्पन्न था । इस सम्पन्नता के कारण उनके पिता की शिक्षा इतनी संपूर्ण थी कि वे अपने जीवन में प्रायः बड़े पदों पर नियुक्त रहे । यह वह समय था, जब देश में अंग्रेजियत का बोलबाला था और शिक्षा एवं अफसरी उन लोगों के हाथ में थी - जो अंग्रेजी

संस्कृति के आसपास जीवन व्यतीत कर रहे थे । निर्मल वर्मा के पिता नन्दकुमारजी भी उन गिने–चुने भारतीयों में से एक थे, जिन्होंने लाहौर के चीव्स कॉलेज में वोर्डन की नौकरी से अपना जीवन आरंभ किया । और उसके बाद भारत सरकार के रक्षा मंत्रालय में महत्त्वपूर्ण पद पर कार्य करते रहे ।

उस नौकरी के दौर में श्री नन्दकुमार शासकीय ढ़ंग से शिमला में रहने लगे थे । जहाँ ३ अप्रैल १९२९ को निर्मल वर्मा का जन्म हुआ । अपनी उम्र से बड़ी चार बहनों और तीन भाईयों के बाद निर्मल अपने पिता की आठवीं संतान थे । स्पष्ट है कि भाई–बहनों की उस बड़ी संख्या में निर्मल वर्मा सबके स्नेह और प्यार के अधिकारी थे ।

## (२) बचपन :

एक और जहाँ सात भाई–बहनों से घिरे बालक निर्मल की दुनिया सबके बीच खिलौने जैसी थी, वहीं दूसरी ओर माँ–पिता और दादा के बीच उनके प्यार–दुलार में और भी बढ़ोतरी हुई । निर्मल उन सबके बीच एकमात्र उत्तराधिकारी थे, जिन्हें हर कोई दीक्षित कर सकता था । बड़ी बहन उन्हें अनेक पुस्तकों से परिचित करा रहीं थी, तो दादा कल्याण पत्रिका पढ़ने के लिए प्रेरित करते थे, जो हर महींने घर में आती थी । दादा उन्हें रिश्वत देते थे कि यदि वे एक पृष्ठ पढ़ेगे तो उन्हें एक चवन्नी मिलेगी । चवन्नी के लालच में निर्मल इतना ज्यादा पढ़ जाते थे कि उन्हें याद ही नहीं रहता था कि वे उस चवन्नी की मजदूरी से बहुत आगे बढ़ चुके हैं ।[१]

‘‘निर्मल के दादा महाविद्यालयीय शिक्षा के हिसाब से बहुत कम पढ़े–लिखे व्यक्ति थे, लेकिन अपने स्तर से वे पुस्तकों की एक बड़ी दुनिया से जुड़े हुए थे । उन्हें पता था कि बालक निर्मल को परंपरा के संस्कार किस तरह देने हैं । उन्होंने यह संस्कार उन्हें भरपूर मात्रा में दिया और कथा–कहानी और परंपरा के प्रति आकर्षण का एक बीज बो दिया ।’’[२]

दादा के अतिरिक्त उस परिवार में एक बड़ी बहन थीं, जो उन दिनों आठवीं कक्षा की छात्रा थी । वे बहुत मेघावी छात्रा थी, उन्हें हर साल

पुरस्कार में बहुत सी पुस्तकें मिलती थी; और उन पुस्तकों से निर्मल की आंतरिक दुनिया विकसित होती जाती थी । बहन उसके अतिरिक्त उन्हें बहुत–सी पुस्तकों और कथाओं के बारे में बताती चलती थी । बहन के कारण ही घर में वीणा, सरस्वती और माधुरी जैसी पत्रिकाएँ आती थी; जिनके प्रति निर्मल बेसब्री से प्रतीक्षित रहा करते थे ।

स्पष्ट है कि माँ–पिता और भाई–बहनों के बीच लगातार दीक्षित होते निर्मल ने दादा और उस बड़ी बहन से साहित्य के संस्कार ग्रहण किये । उसने उनके जीवन को गढ़ने में बहुत अहम् भूमिका निभायी, और इसका परिणाम हुआ कि उन्होंने बच्चों का साहित्य तो नहीं लिखा । लेकिन अपनी प्रौढ़ रचनाओं में बच्चों के बारे में बहुत आकर्षित रहे ।

निर्मल कहते है ''बच्चों ने मुझसे अपने प्रति आकर्षित किया है । मुझे हमेशा यह लगा है कि, हमारी अर्थात् जिन्हें हम वयस्क कहते हैं उनकी, एक सर्वसत्तावादी प्रवृत्ति बचपन पर एक अवधारणा के रूप में और बच्चों पर विशेष रूप से छायी रहती है । इस पर बहुत कम लोगों ने ध्यान दिया । हम बचपन को बड़े होने की सीढ़ी मात्र समझते हैं । मैं ऐसा नहीं समझता; बच्चे ऐसा नहीं समझते । बच्चे यह नहीं सोचते कि मैं जो समय बिता रहा हूँ, वह इसलिए कि मैं बड़ा हो जाऊँ । बचपन का समय बड़ा होने का माध्यम नहीं है, बड़ा होना बच्चे की लालसा अवश्य है ।''[३]

''निर्मल यह भी स्वीकार करते हैं कि बचपन का काल–बोध वैसा नहीं होता, जैसा कि वयस्क व्यक्ति का होता है, बचपन में आनेवाला कल बच्चे को किसी तरह की कोई सांत्वना नहीं देता । इसलिए बच्चा जब रोता है तो पूरे दुःख से रोता है । कोई भी उसे दिलासा नहीं दे सकता ।''[४]

स्पष्ट है कि एक ओर बचपन को ही निर्मल पूरे जीवन के अस्तित्व पर छाये हुए मौजूद पाते हैं और उसे मात्र जिन्दगी की निम्न सीढ़ी नहीं मानते । दूसरी ओर उन्हें यह भी लगता है कि बच्चों का जिया हुआ दुःख अपने समय की सबसे बड़ी सच्चाई है । उसमें कहीं कोई छिपाव, समझदारी या सांत्वना नहीं है । यह निश्छलता ही उनके लेखक को अपने बचपन के दिनों में

बार–बार लौटा ले जाती है । यह वापसी ही उनके उपन्यासों में बार–बार बचपन बनकर लौटती है । यहीं कारण है कि ''वे दिन'' का मीता उन्हें रायना रैमान से कहीं अधिक प्रभावित करता है । यह प्रभाव उपन्यास में जगह–जगह पर देखा जा सकता है – ''मीता उस जगह खड़ा था जहाँ कुछ देर पहले हम उसे छोड़ गये थे । वह अपने पाँव से एक–एक पत्थर को नीचे–पहाड़ी की ढ़लान पर लुढ़का देता था.. एक बोझिल सी गड़गड़ाहट होती थी, जिसे वह तन्मय होकर सुनता रहता, जब तक वह सुनायी देती रहती । जब उसने हमें देखा तो हड़बड़ाहट में उसने ही ठोकर से समूचे ढ़ेर को नीचे लुढ़का दिया ।''[५]

''मीता की आंखों में एक उजली सी मुस्कान उतर आयी । गोद में उढ़ाकर मैंने उसे टावर के बीच का वह सुराख दिखाया, जहाँ रस्सी के दोनों ओर वह घेरी एक पहिये की तरह घूम रही थी । हवा में उसके आँसू सूख चले थे, हाँलाकि आँखें अब भी गीली थी ।''[६]

सवाल यह उठता है कि चेकोस्लोवाकिया के शहर प्राग में पहाड़ी की यह सुबह–शामें क्या मीता की अपनी शामें हैं ? निश्चित रूप से यह निर्मल वर्मा की अपनी शाम और अपना बचपन है, जो शिमला के उस पहाड़ी शहर में भाई–बहनों के बीच पत्थरों को ठोकर मारते और खुशी से आँखें गीली करते हुए बीता होगा ।

## (३) माता–पिता :

निर्मल वर्मा एक ऐसे कथाकार रहे हैं जिन्होंने अपने जीवन और लेखन दोनों में आभिजात्य को जगह दी है । इस अभिजात्य से अलग जो कुछ भी रहा है, निर्मल उसे खामोशी से छिपा गये हैं । दूसरे शब्दों में कहें तो निर्मल अपने जीवन और लेखन में अपनी ही क्रमबद्धता को तोड़ते हुए चलते हैं । वे अपने जीवन और लेखन में कोई सूझ उपस्थित करना नहीं चाहते, जिसके सहारे आप उनकी साहित्यिक प्रगति और लेखन की सीढ़ियाँ एक झटके से चढ़कर उनके बारे में कोई अंतिम निर्णय ले ले ।

"प्रायः साक्षात्कार के अंतरंग क्षणों में भी निर्मल वर्मा ने अंग्रेजी संस्कृति के बीच स्थापित पिता नंदकुमार की चर्चा तो की है किन्तु वे चाँदनी चौक के खत्री परिवार की बेटी, अपनी माँ के नाम और पहचान से वह बच निकले हैं । ठीक इसी तरह उन्होंने दादा और बड़ी बहनों में से एक विशेष को अपनी प्रेरणा का स्त्रोत तो माना है, किन्तु उनके नाम के बारे में मौन ही रहे है । भाई-बहनों में केवल चित्रकार, कथाकार रामकुमार है, जिनका उन्होंने अपने जीवन में महत्त्वपूर्ण संग-साथ स्वीकार किया है ।"[७]

निर्मल के पिता नन्दकुमार वर्मा भारतीय होते हुए भी उन लोगों में से विशेष थे, जिन्हें अंग्रेजों के पास जीने और रहने का सुख प्राप्त था । यह विशिष्टता उनके मन में गहरे तक थी कि वे आम भारतीय नहीं हैं और उन्हें आम भारतीयों से विशिष्ट दिखना ही चाहिए । यही कारण है कि बचपन में कल्याण पढ़नेवाले निर्मल वर्मा पैतृक विरासत से अंग्रेजीयत के उपासक बने होंगे और आम भारतीय लेखकों से कहीं विशिष्ट बनने का मोह उन्हें नन्दकुमारजी से विरासत में मिली होगी ।

जहाँ तक माँ का प्रश्न है, भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के उस दौर में भी समाज में पर्दा-प्रथा इतनी तेजी पर थी कि किसी नारी को उसके नाम से नहीं, उसके पति के नाम से अथवा उसे उसके बच्चे की माँ के रूप में जाना पहचाना जाता था । नन्दकुमारजी का परिवार जिस अभिजात्यता के साथ था, वहाँ बहुत संभव है कि निर्मल वर्मा की माँ ने सारी जिन्दगी अनाम बनकर जी हो और उन्हें केवल उनके बच्चों की माँ के रूप में ही जाना-पहचाना गया हो ।

पर इतना तो तय है कि माँ-पिता के बीच उनके लाड़-प्यार में जी गयी जिन्दगी में निर्मल को उनकी माँ ने एक नारी के रूप में गहरे तक प्रभावित किया होगा । उनके लेखन में एक ओर जहाँ पिता का अभिजात्य जगह-जगह शीर्ष पर बढ़कर बोलता है, वहीं माँ की नारी सुलभ करुणा उन्हें उस नन्हेपन में खींच ले जाती है, जहाँ कोई स्वप्निल पंजोंवाली गोरैया अपने पंखों के संरक्षण और मातृत्व से अपने बच्चों को ढँक देना चाहती है । माँ

की याद में निर्मल बार–बार उस बचपन में लौटते हैं और इतने सरल, इतने सहज हो जाते हैं कि यूरोपीय साहित्य का बोझिल दर्शन उनसे छूट जाता है और वे पहाड़ी नदियों, ढलानों और चट्टानों में खेलने लगते हैं । माँ की याद ही उन्हें इस रूप में चित्रित करने को विवश करती है कि वे रायना रैमान और मीता की कहानी लिखने पर विवश हो जाते हैं ।

"माँ की याद ही है, जिसके कारण निर्मल अपने उपन्यासों में नारी चरित्र को प्रमुख रूप से उभारते हैं और पुरुष पात्र गौण हो जाते हैं । यहीं याद है जिसके पीछे उनका लेखक कहीं छिप जाता है, जिसे अंतरंग साक्षात्कार के क्षणों में कवि ध्रुव शुक्ल उनसे पूछ बैठते हैं और यह याद भी दिला देते हैं कि निर्मल उन नारी चरित्रों के पीछे अपने को छिपा रहे हैं ।"[८]

निर्मल की रचनाओं में जिस तरह यूरोपीय अभिजात्य है, उसके कारण उनके पिता नन्द कुमार की गहरी छाया है । और जिस तरह बचपन के अबोध दुःखो की गहरी परछाईयाँ और क्रीड़ा है वह उनकी माँ से उनकी विरासत में प्राप्त दिखाई देता है ।

## (४) शिक्षा–दीक्षा :

बालक निर्मल की शिक्षा जिन दिनों दिल्ली और शिमला के स्कूलों में चल रहीं थी, वे अपने दादा और दीदी से भी सुसंस्कृत हो रहे थे । उनके घर का वातावरण भी ऐसा था कि उन्हें चारों ओर से शिक्षित कर रहा था । इस बारे में स्वयं निर्मल वर्मा का कहना है कि "शिमला जैसे शहर में कई साधु–संन्यासी आते रहते थे और वे अक्सर हमारे घर आकर भी रहते थे । हम बच्चों के लिए वह एक गहरा और बड़ा चमत्कार होता था, विशेषकर जब वे नाचते हुए गाते थे और दूसरे अनुष्ठान किया करते थे । वे दृश्य आज भी मेरी आँखों के सामने जीवित हैं । इसके अलावा मैंने जिन बहन का जिक्र किया था, देवी काली के प्रति उसकी गहरी आस्था मुझ जैसे बच्चे के लिए हमेशा गहरे कुतूहल का विषय हुआ करती थी ।.... फिर माँ–पिता के साथ तीर्थ यात्राओं पर ऋषिकेश बनारस जाना यह भी साथ–साथ चलता रहा । इन

सबने मेरे भीतर कई चीजों को जगाया । मैंने जाना कि किस तरह साधना में एक व्यक्ति अपने को बिल्कुल भूल जाता है ।''[९]

स्पष्ट है कि निर्मल की शिक्षा–दीक्षा घर के धार्मिक संस्कारों वाले वातावरण में हो रही थी । साथ ही उन्होंने शिमला के आरकोट बटलर स्कूल से हायर सेकेन्डरी की परीक्षा उत्तीर्ण की । इसके बाद उन्होंने दिल्ली के सेन्ट स्टीफेन्स कॉलेज में प्रवेश लिया, जहाँ से उन्होंने १९४९ में स्नातक की उपाधि प्राप्त की । इसके बाद उन्होंने १९५१ में दिल्ली विश्व विद्यालय से एम.ए. किया और वहीं सेन्ट स्टीफेन्स कॉलेज में इतिहास विभाग के अध्यापक हो गये ।

किन्तु शिक्षा की अनंत कामना ने निर्मल को मात्र उस शिक्षा संस्थान से जोड़कर नहीं रखा । सन् १९५९ में निर्मल चेकोस्लोवाकिया के प्राग विश्वविद्यालय के प्राच्य विद्या संस्थान के आमंत्रण पर विदेश चले गये, जहाँ उन्होंने चेक भाषा का अध्ययन कर, वहाँ की कृतियों का हिन्दी में अनुवाद किया । इस बारे में निर्मल का कहना है कि – ''१९६१–६२ के दौरान जब मैंने चैक भाषा का अध्ययन समाप्त किया और प्राग की चार्ल्स युनिवर्सिटी में चैक साहित्य के लेक्चरर्स में शामिल हुआ तब मैंने पहली बार पाया कि जिसे हम एक अधिनायकवादी व्यवस्था के भीतर सेन्सरशिप का अस्तित्व कहते हैं वह कितना कमजोर और ढीला है ।''[१०]

स्पष्ट है कि निर्मल ने स्नातकोत्तर उपाधि के बाद चेक भाषा का अध्ययन किया और प्राग में प्राध्यापक के पद पर नियुक्त हुए । बाद के वर्षों में निर्मल प्राग और लन्दन में प्राध्यापक रहे और अध्ययन – अध्यापन के दौरान स्वयं को देशी–विदेशी साहित्य की शिक्षा से सम्पन्न करते रहे । इन यात्राओं का निर्मल के व्यक्तित्व पर गहरा प्रभाव देखा जा सकता है ।

इसके अतिरिक्त निर्मल वर्मा की शिक्षा–दीक्षा में मार्क्सवाद का गहरा प्रभाव दिखाई देता है । सेन्ट स्टीफेन्स कॉलेज के प्राध्यापक जीवन से ही वे मार्क्सवादी दल की बाकायदा सदस्यता स्वीकार कर ली । इस विषय में निर्मल ने तर्क दिया कि ''मुझे समझ में नहीं आता कि अगर हम अपने समय के

महज दर्शक नहीं बल्कि भोक्ता रहने का साहस रखते हैं तो राजनीति से कैसे पल्लाझाड़ सकते हैं ?... जिन लेखकों के लिए फासिज्म या कम्युनिज्म कोई अर्थ नहीं रखता, उनके लिए साहित्य भी कोई अर्थ रखता है, मुझे गहरा संदेह है ।''[११]

मगर यह भी सच है कि एक ओर निर्मल जहाँ मार्क्सवाद से गहरे प्रभावित थे, वहीं दूसरी ओर अपने लेखन में वे उसका व्यापक संदर्भ देख रहे थे । ''उनके दिमाग में यह सवाल बार-बार उठता था कि क्या उनकी यह भूमिका नहीं होनी चाहिए कि वे अपने वक्त से पूरी हिस्सेदारी करें ? क्या उन्हें बैठे रहना चाहिए कि आनेवाले वक्त में कोई लेखक अतीत को जीवित करेगा ?''[१२]

इस सच के विपरीत निर्मल इस बात के समर्थक रहे हैं कि वे ''राजनीतिक लेखक कभी नहीं रहे । उस वक्त भी नहीं, जब वे साम्यवादी दल के सदस्य रहे । किन्तु मानवीय दल के सदस्य रहे । किन्तु मानवीय स्थितियों को परखने में वे राजनीति का सामना करने से बचना नहीं चाहते थे और इन स्थितियों के लिए उन्होंने स्वयं को कुरुक्षेत्र बनाने का निर्णय लिया, जिससे वे अपनी भ्रान्तियों का दोष दूसरों पर आरोपित न कर सके ।''[१३]

किन्तु स्वयं के भीतर मार्क्सवाद की उपस्थिति में कुरुक्षेत्र की खोज करनेवाले निर्मल वर्मा ने जब यह पाया कि ''स्तालिन की साम्यवादी सरकार ने हंगरी में मजदूरों का दमन कर उनके संगठनों पर न केवल पाबंदी लगा दी, बल्कि उन्हें जेलों में बंद कर दिया तो निर्मल को लगा कि कम्युनिज्म फासीवाद का ही एक दूसरा नाम है ।''[१४] और उसका परिणाम यह हुआ कि निर्मल वर्मा ने साम्यवादी दल की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया ।

पिछले कुछ वर्षो में निर्मल वर्मा भारतीय धर्म, संस्कृति की आड़ लेकर हिन्दुत्व के गहरे संकट से प्रभावित रहे हैं और इस दिशा में अपनी शिक्षा-दीक्षा को सम्पन्न करते गये हैं । इसके बारे में उनकी शिकायत है कि - ''धर्म से मेरा संबंध ऐसा ही रहा जैसा कि हिन्दू परिवारों में लोगों का होता है । उसके प्रभाव बहुत परोक्ष रूप से हम पर पड़ते हैं । लेकिन हम

कभी सजग रूप से उनके बारे में नहीं सोचते ।''[१५] इस तरह स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालयों के बीच निर्मल वर्मा की जो शिक्षा–दीक्षा हुई, उसका गहरा प्रभाव उनके व्यक्तित्व पर देखा जा सकता है ।

## (५) विवाह एवं दाम्पत्य जीवन :

अपने व्यक्तिगत जीवन में निर्मल वर्मा जितने घुमक्कड़ और स्वतंत्र रहे हैं, उसके चलते उनके वैवाहिक जीवन की सफलता पर स्वयं संदेह होने लगता है । निर्मल इस बारे में स्वयं भी कुछ कहना नहीं चाहते । जैसा कि ध्रुव शुक्ल ने उनके रचनात्मक व्यक्तित्व पर छिपा जाने का संदेह किया है, निर्मल अपने दाम्पत्य के बारे में कुछ कहना उचित नहीं समझते । वे केवल इतना ही बताते है कि १९६४ में उनका विवाह हुआ था, जिससे वे एक लड़की के पिता हैं । लेकिन यह विवाह कहाँ और किस मोड़ पर असफल रह गया, निर्मल इसके बारे में कोई जानकारी नहीं देते । हाँलाकि इस दाम्पत्य के टूटने की अनुगूंज उनकी रचनाओं में जगह–जगह दिखायी देती है । यह अनुगूंज ''परिन्दे'' में लतिका और नेगी के माध्यम से है, जहाँ डॉक्टर मुकर्जी यह पूछते हैं कि तुम नियति में विश्वास करते हो ह्यूबर्ट ? और एक लम्बी उदासी वातावरण में फैल जाती है ।''[१६]

पारिवारिक टुटन की यह गूंज ''वे दिन'' की रायना रयमान में भी है, जिसे कथानायक के कुरेदने पर यह टाल जाती है और उस स्थिति की एक सार्थक व्याख्या करने लगती है । कथानायक पूछता है –

''तुम अलग क्यों हो गयी ?''

''मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझी ।''

''तुमने कल कहा था कि तुम अलग रहती हो ।''

''मैंने यह कहा था ?'' वह हँसते लगी,

''यह बिल्कुल ही सच नहीं है । हम अक्सर मिलते हैं । .... शनिवार की शाम को.... यह कभी सड़क पर चलते हुए । एक शहर में रहने का यह फायदा है । तुम अलग रहते हो और प्रतीक्षा करते हो । किसी खास चीज की नहीं, क्योंकि तुम किसी भी चीज को पूरी तरह खो नहीं सकते । वह

फिर शुरू हो सकती है.... जैसे शुरू में हुई थी । मुझे यह चमत्कार सा लगता है ।... तुम ऐसा नहीं सोचते ? एक हल्का सा विषाद उसके स्वर में भर आया था । कुछ ऐसा जो हमसे बाहर है... लेकिन इतना बाहर नहीं कि हमें अकेला छोड़ दे ।''[१७]

अपने दाम्पत्य में निर्मल मानते हैं कि अलगाव और उदासी जीवन की खोज करनेवाले एक आदमी की नियति भी होती है । यह नियति लतिका की भी है, रायना रयमान की भी, और इसी नियति से निर्मल वर्मा अपने जीवन में निरंतर संघर्ष करते दिखायी देते हैं ।

निर्मल के प्रथम विवाह की जो परिणति हुई हो, उन्होंने लगभग दस वर्ष पूर्व हिन्दी की प्रख्यात युवा कवियित्री गगन गिल से दूसरा विवाह कर लिया, जिसका दाम्पत्य सुख से अब तक भोग रहे हैं ।

## (६) प्रारंभिक साहित्य :

निर्मल के लेखकीय अंकुरण में एक ओर जहाँ दादा और बहन से प्राप्त ''कल्याण'' और अन्य भारतीय पुस्तकों का योगदान था, वहीं दूसरी ओर पिता से मिला अंग्रेजी परिवेश भी उनके भीतर गहरी तरह जड़े जमा रहा था । स्पष्ट है कि भारतीयता से स्वाद-पानी लेकर निर्मल विदेशी परिवेश और साहित्य की ओर अग्रसर हो रहे थे । यह वह समय था, जब दूसरा महायुद्ध अपना परिवेश रच रहा था, और सारी दुनिया का साहित्य उसके प्रभाव में गहरे तक डूबा हुआ था । विशेषकर कविता उस समय विश्व के कैनवास पर छायी हुई थी और उसके माध्यम से परंपरा को पूरी ताकत से नकारा जा रहा था । इस परिस्थिति ने निर्मल के युवा मन को बहुत आकर्षित किया । यहीं नहीं बाद में उनकी पीढ़ी के अंतर्गत पहचान बनाने वाले अधिकांश कहानीकार कविता के परिवर्तनों के प्रति बहुत उत्सुक नहीं थे, फिर भी निर्मल नरेश महेता, मनोहरश्याम जोशी, श्रीकान्त वर्मा के बहुत अधिक निकट थे । वे उनसे वैचारिक आदान-प्रदान करते रहते थे । निर्मल का कहना है ''तारसप्तक, दूसरा सप्तक और उसके बाद की कविताएँ मेरे लिए उतनी ही निकट की

साहित्यिक अनुभवों की संपदा थीं, जितनी कि उस समय के कहानीकारों की कहानियाँ ।"[१८]

निर्मल उन दिनों एक ओर अशोक बाजपेयी जैसे कवियों से प्रभावित थे, तो दूसरी और उन्हें यूरोपियन कवियों की कविताओं के प्रति गहरी सोच थी । उस कविता के समानान्तर बंगला या हिन्दी में जो कुछ लिखा जाता और अनूदित होता था, वह निर्मल के लिए गहरे आकर्षण का विषय था । निर्मल स्वयं भी उन दिनों कविताएँ लिख रहे थे । वे हिन्दी की बजाय उन दिनों अंग्रेजी में कविताएँ लिखते थे, और उन्होंने उन कविताओं से पूरी दो काँपियाँ भर डाली थी, जिन्हें वह अपने दोस्तों को सुनाया करते थे । निर्मल यह मानते हैं कि बचपन में अपने निजी एकान्त में ऐसी बहुत सी चीजें घटती हैं जिन्हें आप दूसरों को बताना नहीं चाहते और वही अंतर–संवेदना बाद में कविता का रूप ले लेती है । "निर्मल यह मानते हैं कि शुरू में जब हम लिखना शुरू करते हैं तो यह बहुत ही स्वाभाविक है कि हमारी संवेदनाएँ और अनुभव इतने अंर्तगुफित और जटिल होते हैं कि हमें सहज ही यह लगता है कि वे केवल काव्य विधा की सघनता में ही अभिव्यक्ति पा सकते हैं । वे एक ऐसा आत्मीय मुहावरा माँगते हैं जिसके अनुरूप केवल कविता ही जान पड़ती है ।"[१९]

इसी अंर्तमन के गुंफन से प्रभावित निर्मल वर्मा कविता की ओर आकर्षित तो थे, लेकिन उनका परिवेश बचपन से "कल्याण" का कथात्मक परिवेश था, जो उनके भीतर सिलसिलेवार कथा कहने के लिए छटपटा रहा था । एक ओर अंर्तमन का दबाव तो था, तो दूसरी और जड़ों से प्राप्त कथात्मक अभिव्यक्ति का संसार । इन दोनों के बीच जूझते निर्मल को बाद में पता चला कि "कविता की अपनी माँग है, उसकी अपनी एक विशिष्ट मर्यादा है ।"[२०] उन्हें आगे चलकर पता चला कि "जिसे हमे नेरेटिव अनुभव की शृंखला कहते हैं वह इतना व्यापक होता है कि हम सोच भी नहीं पाते कि जो हमारे बहुत ही सघन और निजी अनुभव हैं, उनके लिए किसी कहानी और उपन्यास का परिवेश बहुत जरुरी है ।"[२१] इस बिन्दु पर पहुँच कर उन्हें लगता

है, कविता लेखन के अंकुरण का एक साधन भर थी। वह स्वान्तः सुखाय थी और उन्हें अपने वक्त से रुबरु करने में एक सबल माध्यम थीं।

इस सत्य से साक्षात्कार कर लेने के बाद निर्मल पाँचवे दशक के उस दौर में कथासाहित्य की ओर मुड़ते हैं और पाते हैं कि एक ओर यशपाल जैन और उपेन्द्रनाथ अश्क का कथा संसार पीछे छूट रहा था तो दूसरी ओर मोहन राकेश, अमरकान्त और कमलेश्वर जैसे लेखक कहानी के नये शिल्प और कथ्य से भारतीयता को नये संदर्भो में रच रहे थे। निर्मल के लिए यह नयी सर्जना आशान्वित करनेवाली थी। इस सर्जना की ओर में निर्मल अपने कथाकार कृतित्व को रचने की शुरुआत में लग गये। निर्मल वर्मा पहाड़ों और पहाड़ी जीवन के प्रति शुरू से ही बहुत ही आकर्षित रहे हैं। उनके लिए शिमला की पहाड़ी बारिश हो नैनीताल की धुंध भरी सुर्खी, प्राग और लन्दन का ठंड़ से कँपा देने वाला शीत विस्तार। निर्मल उस अमानवीय प्राकृतिक सौंदर्य के प्रति निरंतर उत्सुक रहे हैं और उस उदास माहोल के प्रति उनमें निरंतर शिकायतें भी रहीं हैं। उनका यह आकर्षण बचपन से ही बहुत तेज रहा है। एक बार स्कूल के दिनों में मित्रों के साथ काश्मीर घूमकर लौटने के बाद वहाँ के पहाड़ी सौंदर्य पर उन्होंने दो लम्बी कहानियाँ लिखी। उन्हें उन दिनों बनारस से प्रकाशित होने वाले पत्र "जनवाणी" में प्रकाशन के लिए भेज दिया। तब निर्मल की उम्र चौदह-पंद्रह वर्ष के आस-पास थी। उनका अनुभव संसार भाषा के धरातल पर इतना सघन नहीं था कि वे कहानियाँ छप सकती। बाद में अपने समकालीन लेखकों के रचनात्मक अनुभवों से गुजरते हुए उनमें कहानी की सूझ-बूझ पैदा होने लगी और वे उनके आस-पास स्वयं को रचने में सक्रिय हो गये। इसका परिणाम यह हुआ कि सेन्ट स्टीफेंन्स कालेज के दिनों में उन्होंने जो कहानी लिखी, वह कालेज की पत्रिका में प्रकाशित हुई जिससे मित्रों संबन्धियों के साथ बड़े भाई रामकुमार को भी पता चला कि निर्मल कहानियाँ लिखने लग गये हैं। और उसके बाद उन्हें रामकुमार का लेखन संबंधी संरक्षण प्राप्त होने लगा।

कहानीकार के रूप में निर्मल वर्मा की प्रारंभिक कहानी भैरवप्रसाद गुप्त द्वारा संपादित कहानी पत्रिका में प्रकाशित हुई । भैरवजी उन दिनों हिन्दी कहानी को नयी परिभाषा देते हुए नये रचनाकारों से परिपूर्ण कर रहे थे । उन दिनों नामवरसिंह जैसे आलोचक उन प्रकाशित कहानियों पर ''कहानी नयी कहानी'' शीर्षक श्रृंखला लिख रहे थे । एक ओर जहां नये-नये कथाकारों की प्रस्तुति हो रही थी, वहीं दूसरी ओर उनकी व्याख्या से ''नयी कहानी'' आंदोलन की शुरुआत हो रही थी । अपनी पहली ही कहानी से निर्मल अपने इस अभियान में शामिल हो गये । उसके बाद निर्मल की कहानियाँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगी । वे कल्पना जैसी उस समय की प्रख्यात पत्रिका में प्रकाशित होने लगे । उस दौर में उन्होंने ''रिश्ते'', ''रात और दिन'', 'थिगलियाँ'' और ''लवलक्रासिंग'' जैसी कहानियाँ हिन्दी जगत को उपहार स्वरूप दी । उसके बाद सन् १९५८ में 'हंस' में 'परिन्दे' का प्रकाशन हुआ, जिसे 'नयी कहानी' के व्याख्याता डॉ. नामवरसिंह ने हिन्दी की पहली 'नयी कहानी' के रूप में स्वीकार किया और आज तक अपनी इस मान्यता पर अड़े हुए हैं । बाद में 'परिन्दे' नाम से ही सन् १९६० में निर्मल वर्मा का प्रथम कहानी संग्रह प्रकाशित हुआ, जिसने हिन्दी कथा साहित्य में उनके विशिष्ट लेखन को पूरी तरह स्थापित कर दिया ।

## (७) विदेश प्रवास :

निर्मल अपने परिवेश के कारण एक ओर जहाँ अंग्रेजियत से प्रभावित थे वहीं दूसरी ओर वे साहित्य को विश्व के धरातल पर रखकर देखने और परखने के पक्षधर होते चले गये । भारतीय परिवेश में रह कर भी उन्होंने पश्चिमी लेखकों से कविता का आरंभ किया । उन्हें यूरोपियन कवियों में गहरी दिलचस्पी थी । अपने शुरुआती दिनों को याद करते हुए निर्मल कहते हैं, ''उन वर्षो में मुझे रिल्के की कविताओं ने बहुत प्रभावित किया और केवल कविताएँ ही नहीं बल्कि उनके गद्य ने भी । उन्होंने जो चिठ्ठियाँ लिखी हैं, वे मैं समझता हूँ कला के बारे में सबसे सुंदर और गहरी जानकारी देने वाली है । इलियट भी उन दिनों मेरे बहुत निकट रहे । एक ''समय था जब

इलियट के" फोर क्वाट्रेटस मुझे उतनी ही शांति देते थे और आज भी देते है । जितनी शांति मुझे सुबह भगवद्गीता पढ़ते हुए मिलती है । इन कविताओं से मुझे बहुत गहरा स्थिर आलोक मिलता था । बाद में जब मैं रुसी कवियों के संपर्क में आया तो मुझे सबसे अधिक बोरिस पास्तरनाक, अन्न आख्मातोवा और बाद के वर्षो में मेरीना त्स्वेतायेवा की कविताएँ बहुत पसंद आयी । फ्रांस के सुर्रियलिस्ट कवि, विशेष रूप से पोल रलुआ की कविताएँ मुझे आकर्षित करती रही । लोर्का पर बहुत पहले मैंने एक लेख भी लिखा था । मुझे उनकी कविताएँ और नाटक दोनों ही अपनी संवेदना के बहुत करीब जान पड़ते हैं, शायद इसलिए कि उनका स्पेनिश परिवेश उनका मायावी मुहावरा हिन्दुस्तान से बहुत मिलता-जुलता था ।"[२२]

स्पष्ट है कि निर्मल अपने शब्द संसार की शुरुआत जिस वैश्विक वातावरण को सामने रखकर कर रहे थे, उसके भीतर भारतीय परिवेश उस बड़ी दुनिया का एक छोटा-सा अंग था, जिसके प्रति उनके हृदय में अपार श्रद्धा थी । निर्मल अपना उत्तराधिकार सूर, तुलसी, निराला, पंत, प्रसाद और प्रेमचंद से ग्रहण कर रहे थे । अतः बहुत स्वाभाविक है कि वे यूरोप सहित दुनिया के उन तमाम देशों को निकट से देखना चाहते थे, जिनके रचनाकारों का शब्द संसार उन्हें बड़े पैमाने पर आंदोलित किये हुए था । दिल्ली के सेन्ट स्टीफेन्स कोलेज में व्याख्याता की नौकरी छोड़कर निर्मल ने उस देश-परिवेश को देखने के लिए सन् १९५९ में चेकोस्लोवाकिया के प्राग प्राच्य विद्या संस्थान में प्रवेश किया, जहाँ उन्होंने चेक भाषा का अध्ययन आरंभ किया । १९६१-६२ के दौरान उन्होंने चेक भाषा का अध्ययन समाप्त कर प्राग की लेक्चरर की हैसियत से काम करना आरंभ किया । वे सात वर्षो तक चेकोस्लाविया में रहे । उस दौर में उन्होंने बहुत सारी चैक रचनाओं का हिन्दी अनुवाद किया । वे अनेक यूरोपीय साहित्यकारों के संपर्क में रहे । और उनके विचारों के आदान-प्रदान से वे साहित्य के वैश्विक धरातल को गहरे अर्थो से जोड़ते रहे ।

अपने चेकोस्लोवाकिया प्रवास को याद करते हुए निर्मल कहते हैं – ''यह वह समय था जब चेकोस्लोवाकिया में पुस्तकों पर पाबंदिया और हर तरह का दमन अपनी चरमसीमा पर था । मैं वहाँ ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट की ओर से आमंत्रित किया गया था । एक भारतीय होने के नाते मेरा यह भी सौभाग्य रहा कि मुझ पर सरकार या सेन्सरशिप अथोरिटीज की उतनी कड़ी दृष्टि नहीं थी, जितनी की युरोपीय और अमरिकी लोगों पर थीं ।.... मैंने पहली बार पाया कि जिसे हम एक अधिनायकवादी व्यवस्था के भीतर सेन्सरशीप का अस्तित्व कहते हैं वह कितना कमजोर और ढीला है ।''[२३]

अपने प्राग प्रवास के दौरान निर्मल ने यह जाना कि शब्द–शक्ति पर व्यवस्था के पहरे कितने भयानक हो सकते हैं और उन्हें कैसे निर्मूल किया जा सकता है । उस प्रवास के दौरान ही उन्होंने यह भी जाना कि मजदूरों और आम आदमी के पक्ष में लगनेवाली रुस की सरकार और कम्युनिस्ट पार्टियाँ, दूसरी व्यवस्था में जी रहे आम आदमियों के विरुद्ध कितनी खतरनाक और क्रूर होती है । वहीं से निर्मल का मन साम्यवादी विचारधारा के प्रति मोहभंग की ओर मुड़ गया ।

एक ओर जहाँ से साम्यवादी विचारधारा से अलग हुए, वहीं दूसरी ओर प्राग के उस दमित वातावरण ने भी उनका मोहभंग किया । निर्मल वहाँ से लंदन चले गये और टाइम्स ओफ इन्डिया के प्रतिनिधि रिपोर्टर की हैसियत से काम करने लगे । इस प्रवास के दौरान निर्मल ने एक ओर जहाँ ''चीड़ों पर चाँदनी'' और ''हर बारिश में'' जैसे वैचारिक संग्रहों में संकलित ललित निबंधों की रचना की, वहीं दूसरी ओर उन्होंने ''लंदन की एक रात'', ''लवर्स'' जैसी कहानियों की रचना की, वहीं उस प्रवास के फलस्वरूप उन्होंने ''वे दिन'' जैसा उपन्यास लिखा । उन दिनों को याद करते हुए निर्मल कहते हैं – ''यह मेरी पहली बार अकेलेपन और बेकारी के दिनों की स्थिति थी । मेरे पास पैसे भी नहीं थे और मैं बहुत ही लूटे–पिटे होटल में ठहरा हुआ था । शाम को मैं कॉफी पीने गया तो वहाँ मुझे इंग्लैंड की ही एक महिला मिली । मेरी उनसे बात–चीत होने लगी, क्योंकि इटली में अंग्रेजी बोलने वाले कम ही मिलते हैं ।

उन्होंने बताया कि वे एक ''टूरिस्ट ऑफिस'' में काम करती हैं और यहाँ पर एक टूरिस्ट गाईड के तौर पर आयी हुई हैं । बाद में उन्होंने मुझ से पूछा कि क्या आज शाम मैं खाली हूँ, तो मैंने कहा कि हाँ मैं खाली हूँ, लेकिन मैं गया नहीं, क्योंकि मेरे पास इतने पैसे नहीं थे कि मैं उनको ''एण्टरटेन'' कर सकता ।''[२४]

अपने लंदन प्रवास के दौरान निर्मल ने प्रवासी भारतीयों और विदेशियों की जिन्दगी को बहुत नजदीकी से देखा । उनकी यह परख एक लेखक से अधिक उस ''टूरिस्ट गाईड'' की परख है, जिसने पैसे के अभाव में एक विदेशी महिला को दिशा-निर्देश करने की जिम्मेदारी संभाली हो और बाद में संबंधों की परतों में उतरता चला गया हो । निर्मल के इस प्रवास ने उन्हें दुनिया के सारे देशों की सच्चाईयों के बहुत निकट पहुँचा दिया ।

## (८) स्वदेश वापसी :

लगभग बारह-तेरह वर्षो तक प्राग और लंदन में प्रवास करने के उपरांत १९७२ में निर्मल वर्मा भारत लौट आए और यहाँ आकर इन्डियन इन्स्टीट्युट शिमला में फैलो के रूप में मिथक चेतना पर काम करने लगे । पुनः १९७७ में वे आयोवा युनिवर्सिटी अमेरिका के इन्टरनेशनल राइटिंग प्रोग्राम में आमंत्रित हुए और उन्होंने एक महत्त्वपूर्ण लेखक के रूप में वहाँ हिस्सेदारी की । सन् १९८१ में मध्यप्रदेश साहित्य परिषद के आमंत्रण पर निराला सृजनपीठ भोपाल में नियुक्त हुए और निर्देशक के रूप में १९८३ तक कार्य करते रहे । और इसी तरह १९७८ में वे यशपाल सृजनपीठ शिमला के भी उपनिदेशक रहे । आजतक वे दिल्ली में स्वतंत्र रूप से रह रहे हैं, और लेखन में निरंतर कार्यरत हैं ।

अपनी यूरोप यात्रा के दौरान निर्मल ने साहित्य, समाज, इतिहास एवं परंपरा को जितने विशाल फलक पर देखा परखा वह उनके लेखन के अगले पड़ावों के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है । उन्हें लगता है यूरोप प्रवास के दौरान बिताए हुए वे क्षण जैसे किसी सपने की याद हों । जैसे कोई संगीत हो जो कुछ पलों के लिए उनके अंग-अंग में बस गया हो । जैसे रेकार्ड पर रुकी

हुई सुई हो, जैसे प्लेटफोर्म पर गुजारी गयी रात हो, उस प्रवास की मीठी–मीठी यादें उन्हें अब भी अपने मादक सौंदर्य से भर जाती है ।"[२५]

यह यूरोप प्रवास का ही प्रतिफल है कि निर्मल भारतीयता में गहरी रुचि लेने लगे । उन्हें लगने लगा कि इस देश के तीर्थ–स्थलों, मंदिरों और गुरुद्वारों को केवल आस्था की आँख से नहीं देखा जाना चाहिए, उनमें गहरे इतिहासबोध की उपस्थिति अनुभव की जा सकती है । उन पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है । जिसे संपूर्ण रूप में अंकित करने में मनुष्य की पूरी उम्र कम होगी । भारतीयता के इन बिखरे और लुटे–पिटे संदर्भों को निर्मल विराट सार्थकता में अनुभव करते हुए दिखायी देते हैं । यह यूरोप प्रवास का ही परिणाम है कि उन्हें भारतीयता के इतने विविध संदर्भ दिखायी देते हैं ।"[२६]

यूरोप के इस लम्बे प्रवास ने निर्मल वर्मा को एक और जहाँ विश्व, इतिहास और संस्कृति को नये अर्थ में परखने का अवसर दिया, वहीं दुनिया भर की परंपराओं, मान्यताओं, दुनिया भर के ईश्वर, प्रकृति और मनुष्य के संबंधों के बारे में वे सार्वदेशिक और सार्वकालिक समझ से परिपूर्ण हुए । उदाहरण के लिए "भारत में सदियों की गुलामी एक ओर जहाँ इस देश के लिए लज्जा का विषय ही है, वहीं दूसरी ओर आजादी प्राप्ति के बाद लगभग आधी सदी बीत जाने के बावजूद आज भी हम इस बात पर गौरवान्वित होते हैं कि हम अंग्रेजों के विरुद्ध लड़े थे और हमने बहादुरी का परिचय देते हुए इस देश को आजाद कराया । जब कि निर्मल यह मानते हैं कि अंग्रेजी सत्ता केवल साम्राज्यवादी शक्ति का प्रतीक भर नहीं थी, उसका लक्ष्य व्यवस्था से अधिक प्रकृति पर विजय प्राप्त करना था । अतः अंग्रेज संस्कृतियों को गुलाम बनाने से पहले प्रकृति को गुलाम बनाने की प्रक्रिया में लग गये थे ।"[२७] निर्मल यह मानते हैं कि "अंग्रेजों के आने के पूर्व इस देश का बुद्धिजीवी अपनी भारतीयता के घटाटोप में बंद होकर संकुचित हो गये थे । अंग्रेजों ने पहली बार उन्हें यह आत्ममंथन करने पर विवश किया कि उन्हें प्रगति और विकास का रास्ता अपनाकर ऐतिहासिक मनुष्य बनना है या अतीत से चिपके रहने के प्रति प्रयत्नशील रहना है । अंग्रेजों ने हमें यह सोचने का अवसर

दिया कि हम अपनी संस्कृति और जीवन पद्धति के उन स्त्रोतों को सचेतन ढ़ंग से संयोजित करें, जिससे हम पश्चिम की चुनौती का सामना अपनी ही शर्तो पर कर सकें ।"[२८]

इसी तरह निर्मल "मनुष्य और प्रकृति एवं ईश्वर के अन्र्तसम्बन्धों को भारतीय और यूरोपीय पद्धति में अलगाव की आँख से देखते हैं । उन्हें लगता है भारतीय सभ्यता में मनुष्य और संस्कृति एक-दूसरे से अलग नहीं है । उन्हें लगता है भारतीयता में मनुष्य का जीवन धार्मिक खण्डों में विभाजित नहीं है । जबकि यह विभाजन मनुष्य की संपूर्णता और प्रकृति की पवित्रता दोनों को ही दूषित करता है । यह दूषण आज पश्चिमी देशों में देखा जा सकता है ।" निर्मल को यह भी लगता है "यदि भारतीय समाज पिछले तीन हजार वर्षो में बहुदेववादी रहा है तो इसका कारण यह था कि उसके ये देवता और उसकी आस्थाएँ पश्चिम की तरह संग्रहालयों में बंद नहीं रहे हैं । यहाँ मनुष्य और देवता के प्रति आस्था एवं विश्वास साथ-साथ रहते रहे हैं । सैंकड़ो विश्वासों, आस्थाओं और संस्कृतियों का संगम होकर भारतीय संस्कृति यहाँ मनुष्य की परिकल्पना में संपूर्ण रूप से निहित रही है ।"[२६] निर्मल यह भी मानते हैं कि "पश्चिम में ईश्वर आज भी खंडहरों के बीच स्थित है । लेकिन भारतीयता में उपनिषदों में वर्णित ईश्वर अगोचर होता हुआ भी समूची सृष्टि में गोचर होकर चमक रहा है । जबकि पश्चिमी संस्कृति में ईश्वर अपने ही घर में उतना निर्वासित है, जितना कि मनुष्य ।"[३०]

इसी तरह निर्मल पश्चिम से लौटकर भारतीयता की उपलब्धियों को विश्व के संदर्भ में परखते हुए जगह-जगह उसे कालजयी आँख से देखते हैं और छोटी से छोटी चीजों को इतिहास बोध के गहरे धरापल पर ले जाते हैं । जबकि निर्मल के बारे में श्रीमती कृष्णा सोबती ने लिखा है कि "वे पश्चिम की जिंदगियों को बहुत खूबसूरत और कवितामय गद्य में रच-रचकर लिखते हैं । लेकिन उन्होंने अपने घर के चारों ओर थुंथन उठाये घूमते हुए सूवरों की ओर कभी नहीं देखा ।"[३१]

पर यह भी सच है कि अपने विदेश प्रवास की स्वप्निल क्षणों में जीते हुए निर्मल इस देश में लौटकर जिस तरह मनुष्य और प्रकृति का सही अर्थ निरुपित करते हैं और भारतीयता को दुनिया के शिखर पर पाते हैं उससे लगता है निर्मल की संवेदना को कहीं भारतीयता में गहरी रुचि है । यह रुचि उन्हें पश्चिम ने ही दी है, जहाँ भटककर उन्होंने यह जाना कि अपने देश की विरासत को उन्होंने कभी ठीक से देखा–परखा नहीं । निर्मल स्वदेश लौटकर अपने देश की बिरानियों में भटकना और उसे परखना चाहते हैं । वे देशों की सीमाएँ, नक्शे में खींची गई सीमाओं के आधार पर नहीं मानते । उन्हें लगता है कि देशगत सीमाएँ मनुष्य के अंतर में होती है । निर्मल अपनी डायरी ‘‘धुंध भरी सुर्खी में भारतीयता पर लम्बे–लम्बे अध्याय लिख जाते हैं । उन्हें रायपुर में गौहरबाई का मुजरा आकर्षित करता है तो दंतवाडा में अपनी सँपति न्यौछावर करनेवाले स्वामीजी बहुत आकर्षित लगने लगते है ।’’[३२] तब भी हम पाते हैं कि उन्हें प्राग का बर्फीला और धुंध भरा माहौल, जगह–जगह पानी, चंद बच्चे, कार्ल मार्क्स स्ट्रीट पर मिले पक्षी, वहाँ के गिरिजाघर, मिसेज रायना रैमान के साथ बितायी गई शामें और सेन्ट लारेन्सो के सामने प्रतीक्षा की घडियाँ ये सारे संदर्भ ‘‘महुए की मुस्कराहट’’ और गौहरबाई के मुजरे की तुलना में बहुत नीरस और अर्थहीन / निर्मल की यह डायरी भारतीयता के अनुभवों और आकर्षणों से भरी पड़ी है ।

‘‘यूरोप से लौटकर निर्मल जिस तरह भारतीय धर्म–दर्शन, तीर्थो और खंडहरों में खोये हुए ईश्वर और दूर–दराज छूटी हुई जगहों और जिन्दगीयों की आत्मीय परख करते हैं, उसी तरह वे भारतीय परंपरा में प्रेमचंद और रेणु जैसे ग्रामीण लेखकों को भारतीयता के गहरे इतिहास बोध से सम्पन्न करते हैं ।’’ उन्हें जितनी रुचि ‘‘पश्चिमी लेखकों में रिल्के, टॉमसमान, बोरिक–पास्तरनाक, हाइनरिख जैसे लेखकों में है, कहीं उससे अधिक रुचि प्रेमचंद से लेकर अज्ञेय, रेणु और मुक्तिबोध में होने लगी है ।’’[३३]

यह सच है कि अपने जीवन के आरंभिक दौर में अंग्रेजी संस्कृति के प्रति आकर्षित निर्मल ने यूरोप जाकर बहुत–कुछ देखा–परखा । लेकिन उस

परख ने भारतीयता के प्रति उन्हें दिव्य दृष्टि दी । उन्हें देश कालगत गहरे इतिहास बोध दिये कि वे न केवल वैश्विक धरातल पर देख सके, बल्कि उसे उस धरातल पर स्थापित कर सकें ।

## (६) पुरस्कार एवं सम्मान :

अपने लेखन के इन वर्षो में निर्मलवर्मा अनेकबार यूरोपीय विश्वविद्यालयों एवं संस्थानों द्वारा व्याख्यानों के लिए आमंत्रित किये गये । कई बार उन्हें रिसर्च फेलो और साहित्यिक कृतियों के अनुवाद के लिए चुना गया । उन्होंने कई बार विशिष्ट लेखक के रूप में लेखकीय समारोहों के रूप में हिस्सेदारी की और इसके अतिरिक्त उन्हें विदेशी लेखकों का संग-साथ उपलब्ध रहा ।

निर्मल वर्मा को न केवल विदेशी विश्वविद्यालयों ने बल्कि कई बार भारतीय विश्वविद्यालयों ने भी व्याख्यानों के लिए आमंत्रित किया । निराला सृजन पीठ और यशपाल सृजन पीठ पर अध्यक्ष की हैसियत से नियुक्ति भी उनके लेखन के प्रति एक बहुत बड़ा सम्मान रही है । साथ ही इन्डियन इन्स्टीट्यूट और एडवान्स्ड स्टडीज शिमला में उनके लेखकीय व्यक्तित्व के प्रति सम्मान व्यक्त करते हुए उन्हें मिथक चेतना पर कार्य करने को दिया गया था ।

इन आमंत्रणों के अतिरिक्त उन्हें सन् १९८५ में ''कव्वे और काला पानी'' शीर्षक कहानी संग्रह पर साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया । उन्हें उनके संपूर्ण कृतित्व के लिए सन् १९९३ ''साधना'' सम्मान से विभूषित किया गया । सन् १९९५ में उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ द्वारा संस्थान के सर्वोच्च सम्मान ''राममनोहर लोहिया अतिविशिष्ट सम्मान'' से अलंकृत किया गया । वे सन् १९९६ में युनिवर्सिटी ऑफ ओक्लाहोमा, अमेरिका की पत्रिका 'द वर्ल्ड लिटरेचर' के बहु सम्मानित पुरस्कार 'न्यूश्ताद अवार्ड' के लिए भारत से मनोनीत किये गये । सन् १९९७ में उन्हें भारतीय ज्ञानपीठ ने 'मूर्ति देवी' पुरस्कार देकर उनके कृतित्व को सम्मानित किया । और निर्मल को सन् १९९९ में इस देश के सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार ''ज्ञानपीठ'' से सम्मानित किया गया । हाल ही में उन्हें गणतंत्र दिवस २००२ को ''पद्मभूषण'' से राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित किया गया ।

लेखन की इस दीर्घ अवधि में ये गिने–चुने पुरस्कार हैं, जिन्होंने निर्मल वर्मा के लेखन को अंशतः प्रभावित किया होगा । लेकिन अपने विदेशी आमंत्रणों और सम्मान से वे जितने प्रभावित दिखायी देते हैं वह जीवन के आरंभिक वर्षो में यूरोपीय लोगों और उनकी संस्कृति के प्रति आकर्षित निर्मल वर्मा को एक ऐसी यात्रा की ओर ले जाता है, जिसके लेखन महत्त्वपूर्ण दिशाएँ निर्धारित की है । 'परिन्दे' कथा संग्रह से लेखन की यात्रा करनेवाले निर्मल जी यूरोपीय लेखकों के संपर्क में आकर जिस गहरी हिस्सेदारी से जुड़ जाते हैं, उसकी रोशनी में उनका साहित्य एक गहरी अर्थक्ता से सम्पन्न हो जाता है ।

## (१०) अभिरुचियाँ :

अपने लेखन, अध्ययन और चिन्तन के दौरान निर्मलजी जिन अभिरुचियों से बंधे दिखायी देते हैं उनमें जगह–जगह यूरोपीय लेखकों के प्रति आदर, पहाड़ी जगहों के प्रति निरंतर आकर्षण, संगीत और उदासी के प्रति बढ़ता हुआ लगाव और इतिहास की धरोहर कलाकृतियों के प्रति निरंतर शोध का भाव दिखायी देता है । इसके अतिरिक्त निर्मल ने अपने द्वारा लिखे गये लेखों और साक्षात्कारों में अपनी अभिरुचियों को बार–बार रेखांकित किया है । उनकी अभिरुचियों को हम निम्नलिखित वर्गो में बाँटकर देख सकते हैं ।

### *(i) भ्रमण संबंधी अभिरुचियाँ :*

एक लेखक के रूप में निर्मल वर्मा देश–विदेश में यायावर की तरह निरंतर भ्रमणशील रहे हैं । उन्होंने देशकाल के अतीत से हर कहीं अपनी रचना के आधारभूत सत्यों और तथ्यों को खोजने की कोशिश की है । वे लगातार उस माहौल की ओर आकर्षित रहे हैं जो दूर कहीं अकेले में वीरान पड़ा हो, जहाँ पहाड़ी धुंध हो, कहीं दूर से गिरिजाघर की आवाज सुनायी पड़े और पियानों का स्वर उभरने लगे । चारों ओर एक बोलती हुई उदासी निर्मल के आकर्षण का विषय रहीं है । निर्मल इन वीरान जगहों में निरंतर घुमते हुए

अपनी लेखकीय उदासी को अपेक्षाकृत और सघन करते रहे है, जिसके उदाहरण उनकी रचनाओं में जगह–जगह दिखायी देते हैं ।

पहाड़ी जगहें और बर्फ निर्मल के लिए हमेशा के लिए आकर्षण के विषय रहे हैं । उन्होंने अपनी कई रचनाओं के शीर्षक भी इन पहाड़ी जगहों के आधार पर चुने हैं । ''ढलान से उतरते हुए'' चीड़ों पर चाँदनी, धुँध भरी सुर्खी, हर बारिश में, जलती झाड़ी जैसे शीर्षक इसी पहाड़ी आकर्षण का बोध कराते हैं । यही बोध निर्मल वर्मा के प्रथम कहानी संग्रह परिन्दे में बार–बार उभरा है, जहाँ पहाड़ी छुटियों से पूर्व का माहोल है । मिसेज लतिका है, डॉ. मुकर्जी है, हयूबर्ट है और यह पूर्वाभास है कि अगली शाम छुट्टियाँ होने पर यह कस्बा वीरान हो जायेगा । 'परिन्दे' में पहाड़ी आकर्षण के बीच उदासी में बीती हुई लतिका और अन्य पात्र भी निर्मल के विषय हैं, जिसमें उस उदास माहौल में अंततः उड़ते हुए परिन्दे आशा की एक किरण जगाते हैं । उदाहरण के लिए कुछ संदर्भ देखे जा सकते हैं –

''लतिका ने कंधे से बालों का गुच्छा निकाला और उसे बाहर फेंकने के लिए वह खिड़की के पास आ खड़ी हुई । बाहर छत की ढ़लान से बारिश के जल की मोटी सी धार बराबर लोन पर गिर रही थी । मेघाच्छन्न आकाश में सरकते हुए बादलों के पीछे पहाड़ियों के झुंड कभी उभर आते थे, कभी छिप जाते थे, मानो चलती हुई ट्रेन से कोई उन्हें देख रहा हो ।''[३४]

''हवा तेज हो चली, चीड़ के पत्ते हर झोंके के संग टूट–टूटकर पगडंड़ी पर ढ़ेर लगाते जाते थे ।... अल्मोड़ा की ओर आते हुए छोटे–छोटे बादल रेशमी रुमालों से उड़ते हुए सूरज के मुंह पर लिपटे–से जाते थे, फिर हवा में बह निकलते थे ।''[३५]

''पियानो के सुर दबे, झिझकते से मिलने लगे ।... ''लॉयर'' में गाने वाली लड़कियों के स्वर एक दूसरे से गुंथकर कोमल, स्निग्ध लहरों में बिंध गये ।''[३६]

इस पहाड़ी आकर्षण को निर्मल वर्मा ने अपने निबंध चीड़ों पर चांदनी में इस तरह व्यक्त किया है –

''इन पहाड़ों के पीछे न जाने क्या होगा ? जब हम छोटे थे तो अपने घर के बरामदों में खड़े होकर अक्सर एक-दूसरे से यह प्रश्न पूछा करते थे । उन दिनों छुट्टी लेकर पहाड़ों पर जाने की जरुरत नहीं महसूस होती थी । वे हमेशा हमारे संग थे, हमारे खेलों में, हमारे सपनों में ।''[३७] ''खिड़की के सामने पुराना चिर-परिचित देवदार का वृक्ष था, जिसकी नंगी शाखों पर रुई के मोटे-मोटे गोलों सी बर्फ चिपक गयी थी । लगता था, जैसे वह सान्ताक्लाज हो, एक रात में ही जिसके बाल सन से सफेद हो गये हों ।''[३८]

''पहाड़ों पर चांदनी का यह अद्‌भूत मायाजाल मैंने पहली बार देखा था और एक अलौकिक विस्मय से मेरी आँखे मुंद गयी थी । उस रात मुझे लगा था कि पहाड़ों में भी साँप की आँख जैसा एक अविस्मृत जादुई सम्मोहन होता है, जो एक साथ हमें आतंकित और आकर्षित करता है ।''[३९] निर्मल की भ्रमणशीलता में यह पहाड़ी आकर्षण, यह उदासी और धुंध, दूर से आता हुआ संगीत और शहर की कहानियाँ उनके यूरोप प्रवास के दौरान लिखे गये साहित्य में है, प्रवास और भी तेज होता चला गया है । ''वे दीन'' में प्राग का पहाड़ी सौंदर्य जगह-जगह दिखायी देता है, जहाँ ''सारा स्कानयर पर टहलते हुए कथानायक मैं मिसेज रायना रयमान का हाथ पकड़ लेता है ।''[४०] ''जहाँ सदियों का मलिन आलोक है ।''[४१] ''जहाँ पहाड़ी के अंतिम चोट पर आकर ट्राम रुक गयी है ।''[४२] और एक चाकू की धार की तरह हवा, हवा को काटती हुई इस स्थिति में डाल देती है कि अपने पैरों की आहट भी परायी सी लगती है ।''[४३]

वास्तव में अपने देशकाल को खोजते हुए निर्मल वर्मा प्रवास के प्रति सतत उत्सुक रहे हैं । यह प्रभाव ही उनके साहित्य को निरंतर पुष्ट करता चलता है । प्रवास ही निर्मल की पहली अभिरुचि है, जिसका सिलसिला कहीं पर खत्म नहीं होता । जिसकी भूख उनके साहित्य में जगह-जगह देखी जा सकती है ।

## *(ii) अध्ययन संबंधी अभिरुचियां :*

कोई भी लेखक अपने देशकाल की पुष्टि उन लेखकों की रचनाओं से भी करना चाहता है, जो उसके पूर्ववर्ती और समकालीन होकर अपने वक्त की लड़ाई में कहीं–न–कहीं हिस्सेदार रहे हों । निर्मल वर्मा जिस गहरे इतिहासबोध से जुड़कर लेखन के प्रति समर्पित रहे हैं, वह पश्चिमी लेखकों में अपेक्षाकृत बहुत तेज दिखायी देता है । विशेषकर यूरोप ने दो–दो महायुद्ध देखे और महायुद्धों ने वहाँ के जन–जीवन और लेखन को बहुत प्रभावित किया । भारत में नयी कहानी और उसके बाद का लेखन इसी युद्धोतर मानसिकता का परिणाम है । इसलिए स्पष्ट है कि निर्मल वर्मा की प्रारंभिक अभिरुचि पश्चिमी देशों में बहुत ज्यादा रही है । उन्होंने अपनी रचनाओं और साक्षात्कारों में बार–बार मिलान कुंड़ेरा, चेखव, रिल्के, बोरिक पास्तरनाक, अन्ना आख्मानोवा, तुर्गनेव, टाम्सन आदि का नाम लिया है । उन्होंने जगह–जगह इनकी रचनाओं के उदाहरण दिये हैं । उन्होंने अपनी डायरी में इन लेखकों को बार–बार याद किया है । उदाहरण के लिए कुछ संदर्भ देखे जा सकते हैं – ‘‘मैं आन्द्रे जीव के जर्नल्स के अंतिम पृष्ठ पढ़ रहा था । जो उन्होंने अपनी मृत्यु से कुछ दिन पहले लिखे थे ।’’[४४]

‘‘रिल्के कहते थे – मैं मनुष्यों को नजरअंदाज कर सकता हूँ । किन्तु क्या यह एक उपन्यासकार के लिए संभव है ?’’[४५] ‘‘होमर के ओडेसी, रिल्के के पत्र, काम्पू का रैबेल और रात सोने से पहले बुंदरिंग हाइट्स ।’’[४६]

निर्मल वर्मा की अभिरुचियों में उनके सबसे पसंदगी का लेखक है चेखव । चेखव के पत्रों ने उन्हें लेखन के हर मोड़ पर बहुत–बहुत प्रेरित किया है । मोस्को में चेखव का घर देखकर बहुत रोमांचित हुए । उस अनुभव का बयान करते हुए कहतें हैं – ‘‘यह वह जीर्ण–जर्जरित कुर्सी है, जहाँ कलाबेर मछुए की समाधिस्थ एकाग्र मुद्रा में चेखव काँटा डाले बैठे रहा करते थे, ताकि भाषा की अतल गहराईयों में भीतर से एक ऐसे उपर्युक्त शब्द को बाहर निकाल सकें, जिसके बिना कोई वाक्य पिछले अनेक दिनों से अधूरा पड़ा है । हम एक कमरे से दूसरे कमरे में जाते हैं – मेज पर रखे कागजों

को छूते हैं, कुर्सी को सहलाते हैं और फिर खिड़की के बाहर फैले उदास उनींदे समुद्र को देखने लगते हैं । हम उन घड़ियों को पुनः जी लेना चाहते हैं, जो इन कमरों में रहनेवाले व्यक्ति की साक्षी थीं । वे अब नहीं रहे, किन्तु पत्रों में उनकी उपस्थिति सजीव लगती है, जितना कभी उनका व्यक्तित्व रहा होगा ।''[४७]

भारतीय लेखकों में निर्मल वर्मा एक ओर अशोक वाजपेयी और श्रीकान्त वर्मा की कविताएँ पसंद करते हैं तो दूसरी ओर प्रेमचंद, फणीश्वरनाथ रेणु, अज्ञेय और मुक्तिबोध उनके प्रिय गद्यकार हैं । अज्ञेय के ''शेखर एक जीवनी'' और आत्मपरख भाव से निर्मल गहरे तक प्रभावित दिखायी देता है । भारतीय लेखकों के बारे में निर्मल जिस तरह अपनी पसंदगी व्यक्त करते हैं, जिस तरह प्रेमचंद और रेणु जैसे नितांत ग्रामीण लेखकों को वे महत्त्वपूर्ण मानते है । उससे आश्चर्य होता है कि यूरोपीय जीवन की कहानियाँ लिखने वाले निर्मल वर्मा प्रेमचंद और रेणु की गँवई–गँवार भाषा में कैसे रुचि ले पाते होंगे । भारतीय लेखकों के बारे में निर्मलजी कहते हैं – ''प्रेमचंद मनुष्य की अच्छाई में विश्वास करते थे – एक सुरक्षित भारतीय लिबरल का आशावादी दृष्टिकोण उन्होंने अपने जीवन में सहज रूप में अपनाया था । लेकिन यह दृष्टिकोण एक उच्चवर्गीय यूरोपीय शिक्षित हिन्दुस्तानी से काफी अलग था ।''[४८]

''परती–परिकथा हिन्दी उपन्यासों की परंपरा से भिन्न है । उसके प्रति हमारा दृष्टिकोण भी पुरानी लींकों से हटकर होगा । समूचा उपन्यास पढ़ जाने के बाद लगता है जैसे हम किसी गाँव का अद्भूत विचित्र कार्नीवाल देख आये है ।''[४९] ''अज्ञेय अपनी पीढ़ी के उन कम लेखकों में हैं जिन्होंने साहित्य सृजन के बाहर स्वयं रचनात्मक सृजन को अपनी चिंता और मनन का विषय बनाया । इस संदर्भ में दूसरे लेखक जैनेन्द्र कुमार का नाम भी अनायास याद आता है, जो अपने समय की विडंबनाओं से जूझते रहें ।''[५०]

यूरोपीय लेखकों की तरह निर्मल की पसंद में भारतीय जीवन के सारे लेखक शामिल हैं, जिन्होंने या तो भारतीयता को उसकी, भाषा और जीवन शैली के आधार पर रचा हो अथवा वे लेखक जो भारतीयता को अंतर्राष्ट्रीय

परिधि से जोड़कर देखते रहे हों । यहीं कारण है कि रेणु और प्रेमचंद के साथ निर्मल वर्मा अज्ञेय मलयज और मुक्तिबोध में भी समान रुचि रखते हैं ।

## *(iii) समकालीन कलाओं के प्रति अभिरुचि :*

कोई भी रचनाकार लेखन के समानांतर उन सारी कलाओं के प्रति उत्सुक होता है, जो देशकाल को गहराई से रचते हुए उसे काल के पन्ने पर अंकित कर रही हो । "निर्मल साहित्येतर कलाओं में संगीत, फिल्म, और चित्रकला से भी गहरी हिस्सेदारी रखते हैं । उनकी रचनाओं में बार–बार उस लैंडस्केप का रेखांकन उभरता है, जिनमें सूनी सडकें, बर्फ से घिरे–गिरिजाघर दूर से आता हुआ कोई संगीत और उदासी की कहानी कहती हुई हवाएँ जिस्म को तेजी से चीर जाती है ।"[५१]

निर्मल बार–बार इन स्थितियों का अंकन करते हैं और पात्रों के बीच दो–तीन संवादों के बाद ही ये दृश्य उभरने लगते हैं । ये दृश्य जहाँ उस धनीभूत उदासी को संपूर्ण रूप में रचते हैं, वहीं दूसरी ओर यह प्रभावित करते हैं कि कोई भी लेखक अपने समय की साहित्येत्तर कलाओं से अलग और तटस्थ नहीं रह सकता । ये कलाएँ उसके साहित्य की कहीं पूरक हैं और उसे अपने होने से सम्पन्न करती है ।

निर्मल किशोरी अमोलकर भीमसेन जोशी और मल्लिकार्जुन मंसूर की गायकी में गहरी रुचि रखते हैं । "वे हुसैन, सैयद हैदर रजा, जे. स्वामीनाथन् और रोहिब के चित्रों के प्रति आकर्षण का भाव रखते हैं । उन्हें गुरुदत्त और विमलराय के द्वारा निर्देशित फिल्में पसंद हैं ।"[५२]

इसके अतिरिक्त निर्मल बच्चों का साहित्य पढ़ने में बहुत रुचि रखते हैं । उन्हें जंगलों और जानवरों की कहानियाँ पसंद हैं । उन्हें अंग्रेजी जमाने की व्यवस्था में काम करनेवालों की आत्मकथाएँ पसंद हैं । उन्हें कैथोलिक संस्कृति के कहानी कहते पुरातन अवशेष पसंद हैं । निर्मल को वह सब पसंद है, जो एक ओर अपने समय और समाज में उन्हें समकालीन बनाता हो और दूसरी ओर इस समकालीनता से पुरातन का रिश्ता जोड़ता हो ।

## ✦ निष्कर्ष :

उपरोक्त स्थितियों से स्पष्ट हो जाता है कि निर्मल वर्मा के व्यक्तिगत परिवेश और व्यक्तित्व के साधनों ने उनके लेखन को गहरे तक प्रभावित किया है । जब भी उनके लेखन पर बात की जायेगी, उनका व्यक्तित्व और परिवेश बार–बार रेखांकित किया जायेगा । चाहे निर्मल का पारिवारिक और अंग्रेजियत वाला परिवेश हो, उनका विदेश प्रवास हो अथवा भारतीयता में लौटकर अपनी रुचियों और अभिरुचियों के साथ जीने की निरंतरता, व्यक्तित्व और परिवेश का प्रश्न हमेशा निर्मल के लेखन का साक्षी रहेगा । उनकी रचनाओं में बीयर की बोतलों का बार–बार जिक्र आना उनके यूरोप प्रवास से एकाकार होने का परिचायक है, तो भारतीय पहाड़ों की धुंध में बचपन के बीते हुए दिनों में बार–बार लौट जाने की कोशिश है । निर्मलजी ने अपना जीवन एक सचेतन कलाकार की तरह जिया है और अपने जीवन की गहरी छाप अपने साहित्य में अंकित की है ।

## संदर्भ सूची :


| | |
|---|---|
| १ | निर्मल वर्मा के कथादेश में (अशोक वाजपेयी, मदन सोनी और ध्रुव शुक्ल द्वारा लिया गया साक्षात्कार) निर्मल वर्मा संपादक – अशोक वाजपेयी, पृ.२२ |
| २ | निर्मल वर्मा के कथादेश में (अशोक वाजपेयी, मदन सोनी और ध्रुव शुक्ल द्वारा लिया गया साक्षात्कार) निर्मल वर्मा संपादक – अशोक वाजपेयी, पृ.२२ |
| ३ | निर्मल वर्मा के कथादेश में (अशोक वाजपेयी, मदन सोनी और ध्रुव शुक्ल द्वारा लिया गया साक्षात्कार) निर्मल वर्मा संपादक – अशोक वाजपेयी, पृ.२३ |
| ४ | निर्मल वर्मा के कथादेश में (अशोक वाजपेयी, मदन सोनी और ध्रुव शुक्ल द्वारा लिया गया साक्षात्कार) निर्मल वर्मा संपादक – अशोक वाजपेयी, पृ.२३ |
| ५ | 'वे दिन', पृ. ६६–६७ |
| ६ | 'वे दिन', पृ. १०१ |
| ७ | निर्मल वर्मा, संपादक : अशोक वाजपेयी, पृ. १७, २०, २२, २५, २६ |
| ८ | निर्मल वर्मा, संपादक अशोक वाजपेयी, पृ. ५४ |
| ९ | निर्मल वर्मा, साक्षात्कार, ध्रुव शुक्ल, पृ. २५–२६ |
| १० | निर्मल वर्मा, साक्षात्कार, ध्रुव शुक्ल, पृ. ३३ |
| ११ | हर बारिश में, निर्मल वर्मा, पृ. ५० |
| १२ | निर्मल वर्मा, सपादक अशोक वाजपेयी, पृ. ३१ |
| १३ | दूसरी दुनिया, निर्मल वर्मा, पृ. ११ |
| १४ | दूसरी दुनिया, निर्मल वर्मा, पृ. २२–२३ |
| १५ | दूसरी दुनिया, निर्मल वर्मा, पृ. २५ |
| १६ | परिन्दे, निर्मल वर्मा, पृ. १२७ |
| १७ | 'वे दिन', निर्मल वर्मा, पृ. ६१ |

| | |
|---|---|
| १८ | निर्मल वर्मा, पृ. १८–१६ |
| १६ | निर्मल वर्मा, पृ. २० |
| २० | निर्मल वर्मा, पृ. २० |
| २१ | निर्मल वर्मा, पृ. २० |
| २२ | निर्मल वर्मा, पृ. २१ |
| २३ | निर्मल वर्मा, पृ. ३३ |
| २४ | निर्मल वर्मा, पृ. ४८ |
| २५ | बीच बरस में, निर्मल वर्मा पृ. ६ |
| २६ | पूर्वग्रह, अंक २७–२८, पृ. १७ |
| २७ | शताब्दि के ढ़लते वर्षों में, निर्मल वर्मा, पृ. १३२–१३३ |
| २८ | शताब्दि के ढ़लते वर्षों में, निर्मल वर्मा, पृ. १३३ |
| २६ | अक्षरा, जनवरी–मार्च, १६६८, पृ. ८ |
| ३० | अक्षरा, जनवरी–मार्च, १६६८, पृ. ८ |
| ३१ | पूर्वग्रह, १०७, पृ. १० |
| ३२ | हम हशमत, कृष्णा सोबती, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, पृ. १६ |
| ३३ | धुंध भरी सुर्खी, निर्मलवर्मा, पृ. ६८, पृ. १०२ |
| ३४ | शताब्दी के ढ़लते वर्षों में, निर्मल वर्मा, पृ. २०४, ३३४ |
| ३५ | शताब्दी के ढ़लते वर्षों में, निर्मल वर्मा, पृ. १४० |
| ३६ | शताब्दी के ढ़लते वर्षों में, निर्मल वर्मा, पृ. १३४ |
| ३७ | चीड़ों पर चांदनी, निर्मल वर्मा,र पृ. १३० |
| ३८ | चीड़ों पर चांदनी, निर्मल वर्मा, पृ. १३१ |
| ३६ | चीड़ों पर चांदनी, निर्मल वर्मा, पृ. १३२ |
| ४० | 'वे दिन', निर्मल वर्मा, पृ. ८५ |
| ४१ | 'वे दिन', निर्मल वर्मा, पृ. ८६ |
| ४२ | 'वे दिन', निर्मल वर्मा, पृ. ८७ |
| ४३ | 'वे दिन', निर्मल वर्मा, पृ. ८८ |
| ४४ | धुंध से उठती धुंध, निर्मल वर्मा, पृ. १४ |

| | |
|---|---|
| ४५ | धुंध से उठती धुंध, निर्मल वर्मा, पृ. २६ |
| ४६ | धुंध से उठती धुंध, निर्मल वर्मा, पृ. ३६ |
| ४७ | शताब्दी के ढ़लते वर्षों में, निर्मल वर्मा, पृ. २७८ |
| ४८ | शताब्दी के ढ़लते वर्षों में, निर्मल वर्मा, पृ. २०६ |
| ४९ | शताब्दी के ढ़लते वर्षों में, निर्मल वर्मा, पृ. २३४ |
| ५० | शताब्दी के ढ़लते वर्षों में, निर्मल वर्मा, पृ. २१४ |
| ५१ | हिन्दी उपन्यास, ममता कालिया, पृ. ५० |
| ५२ | कथाकार निर्मल वर्मा, नरेन्द्र इष्टवाल, पृ. २८ |


❋❋❋

# द्वितीय अध्याय
# निर्मल वर्मा का रचना संसार

(१) कहानी संग्रह :
- *(i) परिन्दे*
- *(ii) जलती झाडी*
- *(iii) पिछली गर्मियों में*
- *(iv) बीच बहस में*
- *(v) कव्वे और कालापानी*
- *(vi) सूखा और अन्य कहानियाँ*

(२) उपन्यास
- *(i) वे दिन*
- *(ii) लालटीन की छत*
- *(iii) एक चिथड़ा सुख*
- *(iv) रात का रिपोर्टर*
- *(v) अंतिम अरण्य*

(३) निबंध :
- *(i) शब्द और स्मृति*
- *(ii) कला का जोखिम*
- *(iii) ढ़लान से उतरते हुए*
- *(iv) भारत और यूरोप : प्रतिश्रृति के क्षेत्र*
- *(v) शताब्दी के ढ़लते वर्षों में*
- *(vi) दूसरे शब्दों में*
- *(vii) आदि, अंत और आरंभ*

(४) यात्रा संस्मरण :
- *(i) चीड़ों पर चाँदनी*
- *(ii) हर बारिश में*

(५) डायरी

(६) नाटक

(७) अनुवाद

# द्वितीय अध्याय
# निर्मल वर्मा का रचना संसार

## ✦ *प्रस्तावना :*

निर्मल वर्मा हिन्दी के एकमात्र कथाकार हैं, जिन्होंने भारतीय समाज को अंतर्राष्ट्रीय धरातल पर रखकर देखने-परखने का काम किया । दूसरी ओर यूरोपीय समाज को उन्होंने सारी दुनिया के संदर्भ में रखकर, उसकी समाजगत भूमिका को विश्व के केन्द्र में खड़ा कर दिया । निर्मल की यह कोशिश उनके प्रथम कथा-संग्रह से ही आरंभ हो गयी थी । उनकी कथा-यात्रा के विषय में नरेन्द्र इष्टवाल का कथन है, ''निर्मल वर्मा की कथा-यात्रा की शुरुआत १९५४-५५ में हैदराबाद से प्रकाशित कथा-पत्रिका 'कल्पना' में 'रिश्ता' कहानी से हुई थी । लेकिन निर्मल वर्मा को प्रसिद्धि 'परिन्दे' ने दिलवाई । १९५८ में अमृतराय ने 'हंस' के अर्धवार्षिक कहानी संकलन में निर्मल की कहानी 'परिन्दे' प्रकाशित की । 'परिन्दे' का प्रकाशन हिन्दी कहानी जगत् में एक महत्त्वपूर्ण घटना माना गया ।''[१]

परिन्दे से हिन्दी जगत् में प्रवेश करनेवाले निर्मल वर्मा ने अपनी प्रथम कृति से कहानी के क्षेत्र में वह प्रतिमान उपस्थित कर दिया । यह वह दौर था जब ''नयी कहानी के कथाकार उसके लिए नये-नये सूत्र गढ़कर उसे नयी पहचान देने में लगे हुए थे, ऐसे में परिन्दे द्वारा कहानी के क्षेत्र में एक सर्वथा नये भाषा शिल्प की शुरुआत ने जैसे 'पुरानी कहानी' और नयी कहानी के बीच एक सीमा रेखा खींच दी । इसका परिणाम यह हुआ कि उस समय कहानी के क्षेत्र में आलोचना से जुड़े डॉ. नामवरसिंह जैसे समीक्षक ने 'परिन्दे' को नयी कहानी की शुरुआत स्वीकार किया ।''[२] डॉ. नामवरसिंह का स्पष्ट मत है कि ''पढ़ने पर सहसा विश्वास नहीं होता कि ये कहानियाँ उसी भाषा की है जिसमें अभी तक शहर, गाँव, कस्बा और तिकोने प्रेम को ही लेकर जूझ रहे थे । 'परिन्दे' से यह शिकायत दूर हो जाती है कि हिन्दी कथा साहित्य अभी

पुराने सामाजिक संघर्ष के स्थूल धरातल पर ही मार्क टाइम कर रहा है । समकालीनों में निर्मल पहले कहानीकार हैं जिन्होंने इन दायरों को तोड़ा है ।"[३]

और इसके बाद निर्मल अपने कथा संसार में बहुत गहराई तक उतरते चले गये । उन्होंने कई कहानी संग्रह दिये उपन्यास भी दिये । उन्होंने साहित्य तथा भारतीय एवं यूरोपीय संदर्भो के बारे में ज्यादा निबंध लिखे और उसे अपने संग्रहों में संपादित किया । निर्मल वर्मा एक घुमक्कड़ प्रवृत्ति से भरपूर लेखक रहे हैं । उन्होंने देशी-विदेशी स्थानों और जिन्दगियों को अपनी लेखनी में उतारकर बहुत गहराई से यात्रा-संस्मरण लिखे हैं । निर्मल वर्मा ने ऐसी कहानियाँ भी लिखी हैं, जिनका नाट्य रूपांतर कर उनका मंथन किया गया । उन्होंने चेक भाषा की कृतियों का हिन्दी में रूपांतर किया । इस तरह कुल मिलाकर निर्मल ने साहित्य की एक लंबी यात्रा की है, और जीवन के विविध रंगों से अपने कृतित्व को एक व्यापक आयाम में ढ़ालने की कोशिश की है । स्पष्ट है कि निर्मल वर्मा का यह प्रयास परख की गहरी हिस्सेदारी और समझदारी की माँग करता है ।

निर्मल ने न केवल वातावरण के धरातल पर बल्कि भाषा और शिल्प के धरातल पर अपनी रचनात्मकता को बिल्कुल नये ढ़ंग से स्थापित करते हुए, अपने लेखकीय व्यक्तित्व की एक अलग छाप छोड़ दी है । उसका रचना संसार केवल कुछ पुस्तकों का संसार नहीं है, बल्कि अंतराष्ट्रीय धरातल पर संस्कृति की मार खायी हुइ जिंदगियों का आकलन है । उनके कथा-संसार से व्यापक रूप से परिचित होने के लिए उनकी रचना के अलग-अलग संदर्भो से हमें गुजरना होगा ।

## (१) कहानी संग्रह :

'परिन्दे' से अपनी यात्रा आरंभ करनेवाले निर्मल वर्मा ने उसके बाद जलती झाड़ी, पिछली गर्मियों में, बीच बहस में, कव्वे और काला पानी, सूखा तथा अन्य कहानियाँ, जैसे कथा-संग्रह दिये । उनकी कहानियों के विविध संग्रहों से "मेरी प्रिय कहानियाँ", प्रतिनिधि कहानियाँ और दूसरी दुनिया जैसे

कथा–संग्रह संपादित किये गये । इन कथासंग्रहों में संग्रहित कहानियों पर दृष्टि डालें तो निर्मल वर्मा के कथा–संसार से हम अंतरंग हो सकते हैं ।

### *(i)* परिन्दे :

'परिन्दे' संग्रह में कुल मिलाकर सात कहानियाँ संग्रहित हैं । 'डायरी का खेल', 'माया का मर्म', 'गवाह', 'अँधेरे में', 'पिक्चर पोस्टकार्ड', 'सितम्बर की एक शाम', और 'परिन्दे' । इस संग्रह की प्रथम कहानी 'डायरी का खेल' कथानायक बब्बू की स्मृतियों पर आधारित है, जिसमें बब्बू यह स्वीकार करता है कि हमारे भीतर एक अनंत संसार निरंतर चलता रहता है और जिसे बाहर के कार्य व्यापार से हम कभी खंड़ित नहीं कर पाते । भीतर की इस यात्रा में बब्बू को बिट्टो याद आती है । जिसके लिए एक लड़का देख लिया गया है, किन्तु उसकी मानसिकता विवाह की नहीं है । वह अँधेरी रातों में बब्बू को उठाकर काली मंदिर और मेरी की मूर्ति के सामने खड़ा कर देती है । बब्बू यह समझ नहीं पाता कि वह उसे इस तरह मंदिर क्यों ले आयी है । बिट्टो में एक तरह जीने की प्रबल आकांक्षा है तो दूसरी ओर मृत्यु का भय उसे अपने भीतर जकड़ता चला जाता है । इन दोनों धरातलों पर घिरी हुई बिट्टो जीवन और मृत्यु के बीच जी रहे मनुष्य की मानसिकता को बहुत सजीव ढ़ंग से रेखांकित करती है । इस देश के बीच वे डायरी का खेल खेलते हैं । इस खेल में जो अंततः कुछ नहीं लिख पाता वह हार जाता है । बिट्टो को अंततः कानपुर भेजना तय हो जाता है कि लड़के वाले विवाह से पहले उसकी बीमारी के बारे में न जान पाएँ । जाने से पहले बिट्टो यह लिख जाती है कि वह कहाँ चल जायेगी, और बब्बू की इस लिखावट के जवाब में कि वह स्वस्थ होकर लौट आयेगी । बिट्टो लिखती है कि उसे क्या मालूम ? और इस प्रश्नवाचक काव्य के उत्तर में बब्बू कुछ नहीं लिख पाता और अपनी पराजय स्वीकार कर लेता है । डायरी का खेल इस संवेदना की कहानी है, जिसमें मनुष्य मृत्यु से लड़ते हुए भी जीवन के प्रति लगातार अनुरक्त है । वह क्षण–क्षण पराजय बोध की ओर आगे बढ़ रहा है । फिर भी खेल के प्रति तन्मय है । यह खेल ही अंततः जीवन का खेल है, जिससे दुनिया का

हर व्यक्ति जुड़ा है । लेकिन इस जुड़ाव के पार बहुत कुछ शेष रह जाता है, जो मनुष्य के खालीपन में तेजी से अनुभव होता है । यहीं खालीपन कथानायक बिट्टो के जाने के बाद अनुभव करता है । वह कहता है – "आज सोचता हूँ, जाने से पहले बिट्टो कुछ ऐसा कहती जिसमें कोई विचित्र चमत्कार उद्घाटित हो पाता और शायद मुझे उनकी कहानी को फिनिसिंग टच देने की सुविधा मिल पाती । लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ । वह जिस तरह अचानक कमरे में घुस आयी थी, वैसे ही सहज भाव से चली गयी ।"[४]

इस संग्रह की दूसरी कहानी है "माया का मर्म" । यह एक ऐसे युवक की कहानी है जिसके पास जीवन जीने का साधन नहीं है । वह बारिश की एक सुबह घर से बाहर निकलता है और कीचड़ में गिरी एक बच्ची को उठाता है । बच्ची उसे धन्यवाद देती है और उसे लगता है कि वह इस बच्ची के सामने अपने हृदय का दुःख खोलकर रख सकता है । वह उसके सामने खुलता चला जाता है और अपने जीवन की तमाम कमजोरियों को, कमियों को इस तरह बयान कर देता है, जैसे वह बच्ची उसकी परेशानियों का कोई दुर्लभ हल ढूँढ़ ले आयेगी । उसे ऐसे में अपनी बड़ी बहन याद आती है, जो उसे परियों की कहानियाँ सुनाया करती थीं । उन परियों की जो उपलब्धियों की दुनिया से भरपूर थी और जिन्हें किसी भी उपलब्धि के लिये कोई काम नहीं करना पड़ता । वहाँ हर रोज छुट्टियाँ रहती है । बच्ची सवाल करती है कि सात समुन्दर पार उस विचित्र देश में कौन पहुँच पाता होगा ? और कथाकार जवाब देता है कि किसी न किसी दिन वे अपने देश में जरुर बुलायेगे ।"[५] अंततः कहानी परियों की इस कहानी से खत्म होती है कि "सात समन्दर पार एक छोटा सा देश है ।"[६]

माया का मर्म वास्तव में उस मनुष्य की कहानी है, जो जिन्दगी के रिक्त क्षणों में भी उपलब्धियों के प्रति आशान्वित होता है और अपने कथन की पुष्टि के लिए उन अबोध और अबुध चेहरों की खोज करता है जो सरलता से उन कथनों को स्वीकार करते चले जाएँ ।

''तीसरा गवाह' भी कुछ ऐसे युवकों की कहानी है, जो अपने-अपने कोणों से प्रेम में उलझे हुए है । क्लब में शराब पीते हुए दो मित्र अपने प्रेम की कहानी एक-दूसरे को सुना रहे हैं कि तभी एक तीसरे मित्र रोहतगी साहब अपनी प्रेम कहानी सुनाने लगते हैं कि किस तरह नायिका की माँ की बीमारी के कारण नायिका से उन्हें प्रेम हो गया । उन्होंने कोर्ट मैरेज करना उचित समझा । बड़ी मुश्किल से उन्होंने गवाह जुटाये, लेकिन तीसरा गवाह कोर्ट में उपस्थित नहीं हो पाया । अंततः निरजा भयग्रस्त होकर कोर्ट से चली गयी । रोहतगी शाम को घर लौटते है तो पाते हैं कि नायिका के घर ताला लगा हुआ है और वे हमेशा के लिए मकान छोड़कर चले गये हैं ।

संपूर्ण कहानी में अंततः प्रेम एक ऐसे मोड़ पर पहुँचता है, जहाँ मनुष्य को रिक्तियों के अतिरिक्त कुछ भी हाथ नहीं लगता । लेकिन इस रिक्त तक पहुँचने की यात्रा ही अंततः मनुष्य की सबसे बड़ी उपलब्धि है । कहानी के अंत में इसी उपलब्धि से भरे हुए रोहतगी साहब कहते हैं, ''मैं यहीं सोचता था कि नीरजा को मुझसे प्रेम नहीं था, किन्तु मेरे मन में बार-बार एक विचार आता है ... । ''इस कथन के साथ रोहतगी साहब चुप हो जाते हैं और मित्र लोग उन्हें प्रश्नवाचक निगाह से देखने लगते हैं ।''[७] रोहतगी के वे अनकहे तथ्य और सत्य ही अंततः इस कहानी के मर्म को उद्‌घाटित करते हैं ।

संग्रह की अगली कहानी है ''अंधेरे में'' । यह कहानी पारिवारिक संबंधों पर आधारित कहानी है, जिसमें माँ, चाचा, बाबू, नानो और बच्चों के साथ कथानायक भी हैं । परिवार में माँ-पिता के बीच तनाव है और माँ से वीरेन चाचा के संबंध गहरे होते चले गये हैं । वह पिता की अनुपस्थिति में माँ के साथ फोटो खिंचवाते हैं । वीरेन चाचा उसे एक पुस्तक देते हैं । इस पुस्तक को बरसों बाद वह पढ़ता है तो अंधेरे में सारी स्थितियाँ स्पष्ट होने लगती है । इस कहानी में भारतीय परिवारों में नारी की प्रेम संबंधी पीड़ा और छटपटाहट को गहरे तक रेखांकित किया गया है ।

'परिन्दे' संग्रह की अगली कहानी 'पिक्चर पोस्टकार्ड' महानगर के पाँच ऐसे छात्रों की कहानी है, जिसमें परेश, नीकी, सी.डी., प्रभा और नीलू है । परेश, सीडी और नीकी, एम.ए. हैं और उनके पास कोई काम नहीं है । प्रभा और नीलू अध्ययनरत हैं । नीकी नाटक में काम करता है और परेश अखबारों में सांस्कृतिक गतिविधियों से जुड़ी समीक्षाएँ लिखता है । वह खाली समय में विश्वविद्यालय में जाकर प्रभा और नीलू से मिलता है । नीलू को 'पिक्चर पोस्टकार्ड' जमा करने की धुन है । वह चाहती है कि परेश विदेश चला जाये और वहाँ से पिक्चर पोस्टकार्ड भेजे । कहानी में बेकार होते युवकों की अंर्तमुखी दुनिया और निरर्थक संवेदनाओं और अनुभूतियों का गहरा चित्रण है ।

''सितम्बर की एक शाम'' ऐसे परिवार की कहानी है जिसमें कथानायक बेरोजगार है और घर से विद्रोह कर अपना शहर छोड़ आया है । वह अपने वर्तमान से निराश केवल क्षण मात्र की वकालत करता है । उसके लिए न कोई वर्तमान है न भविष्य । उस शहर में उसकी बहन रहती है, जो उसे किराये का पैसा देकर घर लौट जाने का पैसा देती है । लेकिन उन पैसों से वह एक वैश्या के साथ रात गुजारकर, उस क्षण–विशेष को सुखमय ढ़ंग से जीने की कोशिश करता है । जेब खाली होने के बाद उसे याद आता है कि बहन ने कहा था कि उसके आगे पूरी जिन्दगी पड़ी है । इस जिन्दगी से ऊबा हुआ कथानायक उस चौराहे पर खड़ा है, जहाँ से आगे के रास्ते बंद हो चुके हैं ।

संग्रह की सबसे अंतिम कहानी है 'परिन्दे' । इस कहानी की नायिका लतिका है, जो मेजर नेगी से प्रेम करती है और नेगी के मर जाने के बाद भी उसकी छाया से ग्रस्त है । शिमला से उस स्कूल में छुट्टियों का माहौल है, जहाँ लतिका अध्यापिका है । वहाँ डॉ. मुखर्जी हैं, मिस्टर ह्यूबर्ट हैं और चारों ओर उदास होता हुआ वातावरण है । उस वातावरण के बीच मिस्टर ह्यूबर्ट एक बार फिर लतिका से प्रेम निवेदन करते हैं, जबकि वे बीमार हैं और शायद उनकी जिन्दगी की कहानी पूरी होनेवाली है । ऐसे में डॉ. मुखर्जी ह्यूबर्ट

को रोकते हैं और पूछते हैं, ''ह्यूबर्ट क्या तुम नियति पर विश्वास करते हो ?''[८] इस प्रश्न पर ह्यूबर्ट चौंक जाता है और एक बार फिर लतिका के जीवन में उदासी का विस्तार छा जाता है । मौसम के परिन्दे देखती हुई लतिका पाती है कि ये मौसम के बाद उड़कर यहाँ से बहुत दूर चले जायेंगे । लतिका सोचती है – ''हर साल सर्दी की छुट्टी से पहले ये परिन्दे मैदानों की ओर उड़ते हैं, कुछ दिनों के लिये बीच के इस पहाड़ी स्टेशन पर बसेरा करते हैं, प्रतीक्षा करते हैं, बर्फ के दिनों की जब वे नीचे अजनबी अनजाने देशों में उड़ जायेगें ।''[९] 'परिन्दे' प्रेम की प्रतीक्षा, खालीपन, उदासी और नियति भोगती एक नारी की मर्मस्पर्शी कहानी है ।

## *(ii) जलती झाड़ी :*

निर्मल वर्मा का दूसरा कहानी संग्रह है 'जलती झाड़ी' । जिसमें 'लवर्स', 'माया दर्पण', 'एक शुरुआत', 'कुत्ते की मौत', 'पहाड़', 'पराये शहर में', 'जलती झाड़ी', 'दहलीज', 'लंदन की एक रात' और 'अंतर' शीर्षक से दस कहानियाँ संग्रहीत हैं । इन कहानियों में निर्मल के उन्हीं पात्रों की व्यथा कथा कुछ दूसरे दृष्टिकोण से उभरकर सामने आयी हैं, जो उनकी यात्राओं में शामिल रहे हैं ।

'लवर्स' ऐसे युवकों की कहानी है, जिनके बीच प्रेम का अहसास अचानक कुकुरमुत्ते की तरह उगता है और खो जाता है, जिसे वे जीवन भर अपनी नियति मानकर ढ़ोते रहते हैं । कथानायक निन्दी ने एक लड़की को पत्र लिखकर, उसे अपने प्रेम का अहसास कराया है । लेकिन वह लड़की सामने आकर उसके प्रेम को इन्कार कर देती है । इस इन्कार को निन्दी जीवन भर अपनी त्रासदी मानकर जियेगा और इसे अपनी नियति मान लेगा । इस नियति से विरुद्ध निर्मल वर्मा कहानी की संरचना करते हैं ।

''माया दर्पण'' एक ऐसी युवती की कहानी है जो रिटायर्ड पिता के घर में इस तरह रह रही है कि उसकी उम्र एक मोड़ पर ठहर गयी है, जहाँ अंजुरी में आकर खिसकने वाली रेत के सिवा कुछ भी नहीं ठहरता । उसके जीवन में सहसा एक इन्जीनीयर प्रवेश करता है, लेकिन उसे रेतीले माहौल में

वह भी नायिका 'तरन' की प्यास को तृप्ति नहीं दे पाता । तरन भाई के पास आसाम जाना चाहती है और वहाँ से अपनी जिन्दगी शुरू करना चाहती है, जैसे भाई पिता से लड़कर चला गया था । लेकिन वह पाती है कि उदास झुर्रियो, रुखे बालों और देह से झाँकती नसों वाले पिता के पास रहना ही उसकी जिन्दगी की सबसे बड़ी नियति है ।

''एक शुरुआत'' एक भारतीय और एक यूरोपीय व्यक्ति की कहानी है, जिसमें एक हवाई सफर के दौरान दोनों मिलते हैं । विदेशी भारतीय व्यक्ति से 'इन्डिया' की उपलब्धियों की बात कहता है और भारतीय व्यक्ति यूरोप के प्रति अपना दृष्टिकोण बताता है । वह बातों ही बातों में स्पष्ट करता है कि यूरोपीय समाज युद्धों का समाज है और जहाँ हर वक्त मौत की एक छाया सी मंडराती रहती है । उसके उत्तर में विदेशी व्यक्ति को अपने वे दिन याद आते हैं, जब उसके अपने ही देश में भूख, प्यास और भय की छाया में दिन काटे थे ।

''कुत्ते की मौत'' एक ऐसे परिवार की कहानी है, जिसमें हर पल मौत का भय धनीभूत होता चला जाता है । परिवार का एक सदस्य अपनी स्थितियों से ऊबकर घर छोड़ देता है, पिता इसी ऊब के शिकार होकर मरने की कोशिश करते है, घर में चिंतित भाई के विवाह की बातें होते होते अचानक रुक जाती है । फिर कोई नहीं जान पाता कि उनके विवाह की चर्चा अचानक क्यों रुक गयी है । सारा परिवार अपने खालीपन, भय, निराशा और मौत की छाया से जूझ रहा है । ऐसे में एक रात लूसी की मौत हो जाती है । मुन्नी उसे सीने से चिपकाये बैठी रहती है । नितिन भाई सोचते हैं कि वह मुन्नी को इस मरे हुए कुत्ते से अलग कर दे । लेकिन प्रश्न यह है कि परिवार के दूसरे सदस्य मृत्यु बोध से जिस तरह चिपके हुए हैं, उन्हें कैसे अलग किया जाये ।

''पहाड़'' एक ऐसे दम्पति की कहानी है, जो पहाड़ पर घूमने जाते हैं और उसी होटल के उसी कमरे में ठहरते हैं, जिसमें वे हनीमून के समय आये थे । किन्तु आज उनके बीच बच्चा भी है, जिसे वे अस्वीकार कर

अपनी उपस्थिति उसी तरह दर्ज करते हैं, जिस तरह उन्होंने हनीमून के समय दर्ज की थी । अंततः वे महसूस करते हैं कि उन्हें अपने साथ बच्चे को नहीं ले जाना चाहिए था । उन्हें प्यार करते हुए जोड़े चमत्कार से गुजरते. हुए मालूम पड़ते हैं । इस पहाड़ पर वे इसी चमत्कार की खोज में आये हैं । परतु इस कहानी के द्वारा निर्मल भारतीय परिवारों में टूटते–बिखरते सुख की खोज करते हुए दिखायी देते हैं ।

''पराये शहर में'' यूरोपीय वातावरण में एक भारतीय पर्यटक की कहानी है । कहानी में कथानायक वेनिस की एक शाम सेन्ट लोरेन्टो के पास घूमते हुए उस युवक से टकरा जाता है जो पिक्चर पोस्टकार्ड बेच रहा है । कथानायक पोस्टकार्ड देखता है । लेकिन उसे कुछ भी आकर्षित नहीं कर पाता । यहाँ तक की मैडोना की तस्वीर भी उसका ध्यान खींच नहीं पाती । बाद में वह एक औरत के पास जाता है, जो उसे पाँच सौ 'लीरा' लेकर अपने साथ रात गुजारने को आमंत्रित करती है । लेकिन वह वहां भी नहीं रुक पाता और अंततः महसूस करता है कि शहर में वह इतना अकेला है कि उसे अकेलेपन का बोध भी नहीं होता । इस कहानी में यूरोपीय समाज में एक भारतीय युवक की उपस्थिति और अकेलेपन का भरपूर चित्रण है ।

''जलती साड़ी'' का कथानायक सागर किनारे पहाड़ की चट्टान पर एक बूढ़े को मछली पकडते देखता है और पाता है कि कोई भी मछली उसके काँटे में नहीं फँसती । बाद में वह बूढ़ा वहाँ से चला जाता है और कथानायक उसी चट्टान पर उसी जगह बैठ जाता है । तभी उस चट्टान के पीछे झाड़ी से एक लड़की अपने कपड़े ठीक करते हुए निकलती है और कथानायक के पास आकर बैठ जाती है । लड़की ढ़ेरो सवाल करती है, जिसका जवाब वह नहीं दे पाता । उस रात वह शराब घरों में भटकता रहता है और अगली सुबह शहर छोड़कर चला जाता है । लेकिन ऐसे में भी उस लड़की के द्वारा पूछे गये सवाल उसके अस्तित्व पर टंगे रहते हैं । इस कहानी में एक जलता हुआ वर्तमान हर कहीं प्रश्नवाचक होकर उपस्थित रहता है ।

''दहलीज'' कहानी में शम्मी भाई जेली से प्यार करते हैं, लेकिन रुनी चाहती है कि वह उससे प्यार करें । हालांकि रुनी की उम्र बहुत कम है और वह कैशोर्य की दहलीज पर खड़ी है । लेकिन जेली के नाम किया गया हर प्यार, रुनी को अपना प्यार लगता है और वह उस प्यार के सपनों में खोई हुई है ।

''लंदन की एक रात'' इस संग्रह की एक बहुत महत्त्वपूर्ण कहानी है, जिसमें कथानायक के अतिरिक्त विली और जार्ज जैसे युवक है जो तीन–तीन दिनों तक काम न मिल पाने पर लंदन के एक पब में आकर बैठ गये हैं । पब का मालिक इटेलियन है । विली एक गोरी लड़की के साथ नाचता है, जिसे गोरे लोग बर्दाश्त नहीं करते । इस पर नीग्रो विली मारपीट करता है । इस कहानी में अंग्रेजी समाज के बीच रंग–भेद की नीति और काले लोगों के प्रति गोरो की घृणा को बहुत गहराई से अंकित किया गया है ।

इस संग्रह की अंतिम कहानी है 'अंतर' जिसमें एक युवक और युवती के प्रेम संबंधों का चित्रण है । नायिका अस्पताल में भर्ती होकर एबोर्शन कराती है और नायक उसके लिए ढ़ेर सारी चीजें ले आता है, जिसे उसके जाने के बाद वह बाहर फेंक देती है । जबकि वह एर्बोशन के बाद हल्का महसूस करती है, फिर भी वह पाती है कि उसके प्रेम–सबंधों में पहले से बहुत अंतर आ गया है ।

## *(iii) पिछली गर्मियों में :*

''पिछली गर्मियों में'' निर्मल वर्मा का सन् १९६८ में प्रकाशित तीसरा संग्रह है, जिसमें कुल आठ कहानियाँ हैं । संग्रह की पहली कहानी है ''धागे'' । इस कहानी में एक परिवार की दो बहने हैं – रुनी और मीनू । मीनू की शादी केशी से हो चुकी है । उसके साथ रहते हुए वह दाम्पत्य के संघर्षों में टूटकर बिखर चुकी है । रुनी विवाहित होती है और एक लड़की की माँ बनने के बाद अपना दाम्पत्य छोड़कर विमेन्स होस्टल में रहने लगती है । वह अपनी लड़की शैल को मीनू के पास छोड़ आयी है, जिससे मिलने के लिए वह अक्सर मीनू के घर जाती है । एक दिन केशी उससे पूछता है

कि वह कब तक अकेली जिन्दगी जीती रहेगी ? इस प्रश्न के जवाब में रुनी भी सवाल करती है कि क्या वे दोनों जिन्दगी को पा रहे हैं ? फिर उन्हें यह पूछने का हक कैसे मिल गया ? इस कहानी में भारतीय परिवारों की अंतरंग स्थितियों का भरपूर चित्रण है ।

इस संग्रह की दूसरी कहानी है ''पिता और प्रेमी'' । कहानी में एक युवक और युवती बहुत लम्बे समय बाद परस्पर मिलते हैं । युवती की गोद में एक बच्चा है, जिसकी उम्र अगले महिने दस माह हो जायेगी । युवक, युवती से बच्चे के पिता के बारे में पूछता है । वह उत्तर देती है कि वह जितने लोगों को जानता है, उनमें से कोई भी इसका पिता नहीं है । बाद में ट्राम का सफर करते हुए एक अन्य महिला बच्चे और उस युवक को देखकर अंदाज लगाती है, बच्चा बिल्कुल अपने बाप पर गया है । कहानी में एक टूटे हुए संबंध को समेटने की पूरी कोशिश की है ।

इस संग्रह की अगली कहानी है – ''डेढ़ इंच उपर'' । इस कहानी का कथानायक ''बार'' में बैठा हुआ है कि अपने सामने एक शराबी को बैठे हुए पाता है । शराबी बताता है कि उसकी पत्नी को ''गेस्टापो'' के पुलिस वाले पकड़ ले गये हैं और अब पता नहीं कि उन्होंने उसे मार डाला या वह जीवित है । वह यह भी बताता है कि वह अपनी पत्नी को बहुत प्यार करता था । लेकिन वह घर में जिन चीजों का संग्रह किये हुए थी, वह उन चीजों को रहस्यमय मानता था और उनकी उपस्थिति की सार्थकता से बिल्कुल अनजान था । लेकिन बाद में उसे भी पकड़ा गया और मृत्यु की सीमा तक उसे कष्ट दिये गये । इस कहानी में देश–काल के संदर्भ में विद्रोह को पूरी तरह दर्शाया गया है ।

''खोज'' कहानी में एक टूटे हुए परिवार की विसंगतियों पर दृष्टिपात किया गया है । पुतुल भाई विदेश से लौटने के बाद निरंतर शराब में डूबे रहने लगे थे । शराब ने अंततः उनके जीवन को बिल्कुल क्षीण कर दिया । घर में रोज उनकी मौत की प्रतीक्षा की जाती थी । बड़ी बहन काफी दिनों के बाद इस घर में लौटी है, और छोटी से सवाल करती है कि वह पुतुल भाई

के लिए कुछ कर सकती थी, जो उसने नहीं किया । छोटी बहन बन्नो जवाब देती है कि उसने अंतिम हद तक पितुल भाई का साथ दिया । यहाँ तक कि उसने बड़ी बहन की तरह विवाह कर इस परिवार से मुक्त हो जाना नहीं चाहा ।

''उनके कमरे'' एक ऐसे युवक और युवती की कहानी है, जिसमें लड़का छात्रावास में रह रहा है और लड़की म्यूजियम में पुरानी तस्वीरों में रंग भरने का काम करती है । लड़का उसे अपने साथ होस्टल नहीं ले जा सकता, और लड़की उसे कभी म्यूजियम में आने का आमंत्रण नहीं दे सकती । वे कल्पना करते हैं कि एक दिन रोम या पेरिस जायेंगे, जहाँ वे होटल के कमरें में अकेले होंगे, बिल्कुल अकेले । इस कहानी में भविष्य के सपनों का झिलमिलाता आलोक बहुत सघन रूप में उभरकर सामने आया है ।

''अमालिया'' विदेशी परिवेश की कहानी है, जिसमें कुल चार पात्र है – कथानायक ''मैं'', अरब, ब्राजीलियम और अमालिया । अमालिया एक ऐसी लड़की है, जो टूरिस्टों के साथ रातें बिताती है, जो उससे लौटने का वायदा कर कभी नहीं लौटते । अरब रात भर शहर में भटकता है और लौटकर उन्हें अपने कारनामें सुनाता है । एक रात वह अमालिया को लेकर उस कमरे में आता है, जहाँ कथानायक मैं और ब्राजिलियम रह रहे हैं । वे दोनों बड़ी अनिच्छा से कमरे के बाहर निकलते हैं । वे रातभर ठंड में ठिठुर रहे हैं और सुबह होने पर माँ की तस्वीर के सामने प्रार्थनाएँ करता हैं । विदेशी वातावरण में फँसे युवकों की उत्कंठाओं, आकांक्षाओं को इस कहानी में संपूर्ण रूप में चित्रित किया गया है ।

''इतनी बड़ी आकांक्षा'' में शराब घर में एक पति–पत्नी सुख की स्थिति में बैठे हुए हैं कि वहाँ दो फौजी प्रवेश करते हैं । उनमें से एक फौजी काउन्टर से आगे बढ़कर एक लड़की से प्रेम निवेदन करता है, जिसे वह इन्कार कर देती है । दूसरा फौजी टेलीविजन देखती हुई एक अधेड़ महिला से नाचने को कहता है, जो यह बताती है कि उसके जीवन में बहुत–सी आकांक्षाएँ हैं । उसने सुन रखा है कि बारिश में नंगे सिर चलो तो बुढ़ापे में

बाल सफेद नहीं होते । बाद में दोनों फौजी बाहर निकलते हैं तो पाते हैं कि लेम्पपोस्ट की रोशनी में एक अधेड़ औरत खड़ी है, वह नंगे सिर भीग रही है । कहानी में मनुष्य की अपनी अपनी आकांक्षाएँ दर्शायी गयी है ।

संग्रह की अंतिम कहानी है ''पिछली गर्मियों में'' जिसका कथानायक यूरोप से लौटकर पाता है कि भाई आर्मी में चला गया है और बहन बाबू और माँ को यूरोप जाने की सलाह देती है । लेकिन माँ पिता यह चाहते हैं कि यूरोप जाने के बदले कथानायक यहीं उनके साथ रह जाये, लेकिन कथानायक जानता है कि अगर वह इस घर में रह भी जाए तो भी इस घर में कुछ नहीं बदलेगा । अंततः वह यूरोप चला जाता है और घर में माँ–पिता अकेले रह जाते हैं । कहानी में विदेशीपन और भारतीयता के बीच फँसे हुए भारतीय स्थितियों को बहुत गहराई से अंकित किया गया है ।

### *(iv) बीच बहस में :*

यह निर्मल वर्मा का चौथा कहानी संग्रह है, जिसमें उनकी कुल चार महत्त्वपूर्ण कहानियाँ संकलित हैं । संग्रह की पहली कहानी है – ''छुट्टियों के बाद'' । यह कहानी पेरिस में रह रही एक विदेशी लड़की मार्था की कहानी है । पेरिस आने पर वह वहाँ एक युवक से मिलती है । दोनों के बीच परस्पर संबंध स्थापित होते हैं । जब वह अपने देश लौटने लगती है तो वह युवक उसे स्टेशन छोड़ने आता है । स्टेशन पर ही उसकी मुलाकात कथानायक से होती है, जहाँ मार्था की आँखे आँसुओं से डूबी हुई और वह युवक उसे बार–बार चूम रहा है । मार्था के साथ एक अन्य युवती भी है । कथानायक उनके साथ ही गाड़ी में बैठ जाता है । जब मार्था का स्टेशन आता है तो वह एक दूसरी ही मार्था बनकर उस युवक को लिपट जाती है । जिसे वह छुट्टियों में पीछे छोड़ आयी थी । इस कहानी में वर्तमान परिवेश में आदमी के क्षण–क्षण बदलते रिश्तों का चित्रण है ।

इस संग्रह की दूसरी कहानी है ''वीक एण्ड'' । यह कहानी एक ऐसी युवती की कहानी है, जो विवाहित है और एक लड़की का पिता है । वह लड़की हर रवीवार उससे अलग–अलग स्टेशनों पर मिलती है और अंततः यह

जानना चाहती है कि वह कब तक इस तरह मिलती रहेगी ? फिर भी उसे प्रसन्नता होती है कि पति-पत्नी के बासी होते संबंधों से अलग, वह हर हफ्ते अपने इस संबंध से मुक्त हो लेती है । और अगले हफ्ते पूरी ताजगी के साथ अपने प्रेमी से मिलती है । अँधेरे में रोशनी की तरह । इस कहानी में पहचानहीन संबंधों को रिश्तों से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण माना गया है ।

"दो घर" एक ऐसे व्यक्ति की कहानी है, जो अपना परिवार छोड़कर विदेश चला गया है और उसने वहाँ दूसरा विवाह कर लिया है । जहाँ उसके दो बच्चे भी हैं । वह युवक कथानायक से मिलने पर अपनी कहानी बताता है कि एक दुर्घटना के दौरान वह महिला उसे नर्स के रूप में अस्पताल मिली थी । एक अरसे बाद उस महिला से मुलाकात होने पर वह बताती है कि एक दिन वह व्यक्ति घर से गायब हो गया । बाद में एक अस्पताल में मिला, जहाँ उसकी मृत्यु हो गयी । वे दोनों अविवाहित थे और साथ-साथ रहते थे । उस रात वह महिला कथानायक से "सुख" शब्द के बारे में जिज्ञासा रखती है, जिसे उसने कभी महसूस नहीं किया । इस कहानी में दो घरों के बीच फँसे संबंधों में सुख की तलाश को निरुपित किया गया है ।

संग्रह की अंतिम कहानी है – "बीच बहस में" । यह कहानी एक एसे बीमार पिता की कहानी है, जिससे उसकी पत्नी भी छुटकारा पाना चाहती है । कथानायक को लगता है जैसे पिता के रूप में वह स्वयं है, जिससे उसका परिवार मुक्त होना चाहता है । पिता बीमारी के क्षणों में उठकर बिस्तर से उसकी माँ के पास जाना चाहते हैं । पिता उसके साथ बहस करते हैं और उसे लगता है कि जैसे पिता की जगह वह स्वयं बीमार होता जा रहा है । इस कहानी में आज की परिस्थिति में टूटते-ढ़हते संबंधों को अंतरंगता से व्यक्त किया गया है ।

## (v) कव्वे और काला पानी :

"कव्वे और काला पानी" सन् १९८३ में प्रकाशित निर्मल वर्मा का पाँचवाँ कहानी संग्रह है, जिसमें कुल सात कहानी संग्रहीत है ।

संग्रह की पहली कहानी है, ''धूप का एक टुकड़ा'' । इस कहानी की नायिका अपने अतीत और वर्तमान के बीच उलझी हुई गिरिजाघर के सामने बैठकर याद कर रही है कि इसी गिरिजाघर में पन्द्रह वर्ष पूर्व उसका विवाह हुआ था और पिछले सात वर्षो से वह अपने पति से अलग रह रही है । नायिका पाती है कि विवाह अकेलेपन को बाँटने की कोशिश भर था । नायिका अपनी असफलताओं की कहानी एक कल्पित नायक को सुनाती है कि उसने किस तरह अपने पति के साथ संबंधों के दिन जिये । आज चाहने के बाद भी वह उन क्षणों को नहीं भूल पायेंगे । उसे आश्चर्य है कि लोग आज भी इस बड़ी दुर्घटना से अनजान है, जबकि वे दुर्घटनाओं में ही जीते है और दुर्घटनाओं के छिलके उतारना ही उनकी दिनचर्या का सबसे बड़ा अंग है । इस कहानी में विवाह संबधों के अतीत और वर्तमान को व्याख्यायित किया गया है ।

इस संग्रह की दूसरी कहानी है ''दूसरी दुनिया ।'' इस कहानी में विदेशी वातावरण में बसे एक माँ–बेटी के अंर्तसंबंधों को चित्रित किया गया है । माँ नर्स है और उसकी बच्ची ग्रेता उससे जुड़ी हुई अकेलेपन की शिकार है । उसकी दुनिया में ढेरों कल्पनाएँ हैं, उसके साथी सहपाठी बच्चे हैं । वह इन्हीं बच्चों में से एक गरीब बच्चे का लगातार इन्तजार करती रहती है । ग्रेता उसके साथ भी वही खेल–खेलने लगती है, जो अपने अकेलेपन में खेला करती थी । कथानायक एक दिन ग्रेता की माँ से मिलता है और पाता है कि उस घर में ग्रेता के पापा की उपस्थिति हर कहीं मौजूद है । वहाँ ग्रेता हर कहीं अपने पापा को याद करती है कि एक दिन वे आयेंगे और उसके लिए डॉल्स हाउस बनायेंगे । लेकिन ग्रेता की माँ यह मानने को तैयार नहीं है और ग्रेता अपनी ही दुनिया में खोई हुई है । एक दिन कथानायक पैसे लेकर उस पार्क में जाता है, जहाँ वह ग्रेता और उसकी माँ की प्रतीक्षा करता है कि वह इन पैसों से उन्हें घुमायेगा । लेकिन उसे पता चलता है कि ग्रेता अपने पापा की दुनिया में लौट गयी है । कहानी में ग्रेता के सपनों की दुनिया को बहुत सुन्दर से चित्रित किया गया है ।

संग्रह की अगली कहानी है – ''जिन्दगी यहाँ और वहाँ'' । यह कहानी अतीत और वर्तमान के बीच के कालखण्ड को व्यक्त करती है, जिसमें कैटी का वह पुराना मकान है, जिसमें माँ–पिता की स्मृतियाँ हैं, स्मृतियों से जुड़े सामान हैं । और इरा चाहती है कि वह उससे विवाह कर एक नया घर बसाये । इरा कैटी से मिलकर अपने माँ–बाप की ओर लौटती है, जिन्होंने उसके लिए अनगिन सपने संजोए थे और उसने उनके सपनों की हमेशा उपेक्षा की थी । यहाँ तक कि इरा सोचती है कि वह अपने माँ–बाप की मृत्यु नहीं देख पायगी । वह घर छोड़कर अनजान लोगों के बीच चली जाती है । लेकिन कैटी अपने पुश्तैनी मकान से ऊबर नहीं पाता । इस कहानी में संबंधों के दो ऐसे दृष्टिकोण हैं, जिसमें मोह का केन्द्र बिन्दु एक ओर बंधन उपस्थित करता है, दूसरी ओर मुक्ति भी ।

''सुबह की सैर'' एक एसे रिटायर्ड फौजी की कहानी है, जो पत्नी की मृत्यु से बहुत अकेला हो गया है । कर्नल निहालचन्द का बेटा विदेश में है और रसोइया देवीसिंह, जो उनका एकमात्र साथी । कर्नल जब सैर पर होते हैं तो पुलिया पर रुककर व्यायाम करते हैं, हवामहल में नाश्ता करते हैं । यहाँ उनसे कट्टो नियमित मिलने आती है, जो उनके बचपन की दोस्त है । कट्टो अक्सर उनकी जेबे टटोलती है और कर्नल को लगता है जैसे यह कट्टो नहीं उनकी पत्नी है । एक बार जब कट्टो वहाँ नहीं आती तो उसकी प्रतीक्षा में व्याकुल निहालसिंह घर नहीं लौट पाते । देवीसिंह उन्हें ढूँढ़ने निकलता है तो पाता है कि सामने बरगद से देवीसिंह की लाश झूल रही है और गले में वह फँदा है, जिसे रस्सी बनाकर कट्टो अक्सर कूदा करती थी । इस कहानी में कट्टो का आधार लेकर जी रहे कर्नल की व्यथा का अंतरंग चित्रण किया गया है ।

''आदमी और लड़की'' शीर्षक कहानी में परिवार से अलग एक अन्य शहर में रह रहे एक ऐसे आदमी की कहानी है, जो किताबों की दुकान पर किताबें लेने जाता है और एक बीस बर्षीया लड़की से जुड़ जाता है । लड़की माँ बनने वाली है और पुरुष इस पाप–बोध से लगातार ग्रसित होता चला

जाता है । अंततः लड़की भी पाप बोध का शिकार होने लगती है । अंततः लड़की ही उसे सम्हालती है और उसे जीवन में पत्नी, प्रेयसी और माँ के रूप में संरक्षण देती है । इस कहानी में औरत के उदात्त चरित्र का संपूर्ण चित्रण हैं ।

संग्रह की अगली कहानी है, ''कव्वे और काला पानी'' । कहानी में अपने सुखमय परिवार को त्यागकर कथानायक एक ऐसी दुनिया में चला जाता है, जो संन्यास की दुनिया है । उस दुनिया में प्रसिद्धि पाकर जब वह अपने घर पत्र भेजता है तो घर के लोग उन दस्तावेजों पर उससे हस्ताक्षर कराने आते हैं, जो उसकी पुश्तैनी जायदाद के थे और जिसे अब वह अपने परिवार को दे देना चाहेगा । कहानी में एक प्रतीक कथा भी है कि जिस गाँव में वह सन्यासी रह रहा था, वहाँ श्राप था कि वहाँ के निवासी मृत्यु के बाद कौवे की योनि पाते हैं और उससे मुक्ति पाते ही मोक्ष प्राप्त करते हैं । भाई दस्तावेजों की पोटली लेकर उस मास्टरजी के घर ठहरा है, जो लौटने पर यह पूछते हैं, कि क्या उसने बाबा के दर्शन किये और अपनी मनोकामना पूर्ण होने का वरदान पाया ? भाई चुप रहकर अपने गाँव लौट जाता है । कहानी में एक ओर मुक्ति की अँधी कामना है तो दूसरी ओर मानवीय संबंधों से अलग स्वार्थ की गहरी अनुगूँज ।

संग्रह की अंतिम कहानी है, ''एक दिन का मेहमान ।'' इसमें पत्नी ईंग्लेन्ड में अपनी तेरह वर्षीया बेटी के साथ रह रहीं है, और पति भारत में रहता है । एक दिन जब वह विदेश में पत्नी के पास जाता है तो पत्नी को लगता है कि वह उस परिवार में मेहमान की तरह आया है और उसे मेहमान की तरह ही लौट जाना चाहिए । यहाँ तक कि उसके लिए होटल में कमरा बुक करा दिया जाता है और एक रात के लिए भी उसे माँ-बेटी के द्वारा स्वीकार नहीं किया जाता । इस कहानी में पारिवारिक संबंधों का एक ऐसा धरातल है, जिसमें जिन्दगी की एक बहुत बदसूरत तस्वीर उभरकर सामने आती है ।

## (vi) सूखा और अन्य कहानियां :

"सूखा तथा अन्य कहानियाँ" १९९५ में प्रकाशित निर्मल का अंतिम कहानी संग्रह है, जिसमें कुल नौ कहानियाँ संग्रहित हैं, जो पिछले दस–बारह वर्षो में पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर इस संग्रह में संग्रहीत की गयी हैं ।

इस संग्रह की पहली कहानी है "अंतराल" । यह दो ऐसे भाईयों की कहानी है, जिनके बीच उम्र का काफी अंतराल है । बड़ा भाई तपेदिक का मरीज है और छोटा उनकी देखभाल करते हुए जिन्दगी में उनकी रुचि पैदा करना चाहता है । लेकिन बड़े भाई मृत्यु से तनावग्रस्त होते चले जाते हैं और छोटा भाई इस बात की प्रतीक्षा करने लगता है कि वे कब मृत्यु का वरण करें गे और अपने इस तनाव से मुक्ति पायेंगे ।

संग्रह की दूसरी कहानी है "पहला प्रेम" । इस कहानी में कथानायक एक लड़की से प्रेम करता है और अंततः एक मोड़ पर उससे अलग हो जाता है । एक दिन वह उस लड़की को किसी अन्य युवक के साथ  पाते ही उनका पीछा करने लगता है । वह चाहता है कि लड़की फिर से उससे अकेले में मिले और उनका खोया हुआ प्यार लौट आये ।

इस संग्रह की अगली कहानी है – "सूखा" । जिसे कथाकार राजेन्द्र यादव ने सन् १९८४ में हँस पत्रिका में प्रकाशित किया था और निर्मल की अति महत्त्वपूर्ण कहानी मानते हुए, उस पर बहुत सी प्रतिक्रियाएँ प्रकाशित की थी । इस कहानी में डॉ. देव एक ऐसे लेखक हैं, जो प्रसिद्धि के शिखर पर हैं । उनकी जिन्दगी का एक दायरा तय हो चुका है – "लेखन, सेमिनार, वाद–विवाद और लोगों से मिलना–जुलना, सब कुछ यंत्रवत है । यह यांत्रिकता उनको उस अकेलेपन में खींच ले जाती है । यह उनकी जिन्दगी का सूखा है, जिसे कोई भी तरलता भिगो नहीं पाती ।

"बावली" एक ऐसी लड़की की कहानी है, जो माँ–पिता के टूटते संबंधों के बीच माँ को एक ऐसे पुरुष से जुड़ा पाती है, जो विवाहिता है । इन अलग–अलग संबंधों के धरातल पर बढ़ती हुई जिन्दगियो ने तोशी का बचपन

छीन लिया है । वह उस युवा अवस्था से भी भयग्रस्त है, जिसमें संबंधों का इस तरह टूटकर बिखर जाना मानव–जीवन की सबसे बड़ी सच्चाई है ।

"किसी अलग रोशनी में" विदेशी वातावरण के बीच जी रहे एक ऐसे व्यक्ति कोस्ता की कहानी है, जो बरसात की एक रात एक शराब घर में किसी भारतीय लड़की के साथ आता है और शराब घर में काउन्टर पर बैठी लड़की को भी अपने साथ शराब पीने के लिए आमंत्रित करता है । वह लड़की सोचती है कि यह दोनों पति–पत्नी होंगे, और आज इनमें से किसी एक का जन्मदिन होंगा । पर कोस्ता जब उसे बताता है कि वह अस्पताल से मुक्त होकर आया है, और डॉक्टरो ने उसकी जिन्दगी के बारे में जवाब दे दिया है, तो वह लड़की हैरान रह जाती है । उसे अपने जीवन की निजी समस्याएँ बहुत छोटी मालूम पड़ने लगती हैं । वह जिन्दगी को एक और रोशनी से देखने लगती है ।

"टर्मिनल" कहानी में एक युवक किसी स्टेज शो के दौरान किसी लड़की से मिलता है । दोनों में गहरा प्रेम पैदा होता है । पर भविष्य के सपनों और संशयों के बीच वह लड़की उसे अस्वीकार कर देती है । फिर वह उसे एक ऐसी महिला के पास ले जाती है, जो उनके संशय को विस्तृत कर, उन्हें एक–दूसरे से अलग करने में सहायक हो जाती है । लेकिन अलगाव के शिखर पर भी वे पाते हैं कि उनका प्रेम पहले से और सघन हो उठा है । वे केवल बंधन मुक्ति चाहते हैं । इस मुक्ति में ही उनका प्रेम विकसित हो सकता है ।

संग्रह की अगली कहानी है, "बुखार" । इसमें गाँव का एक युवक माँ–पिता से अलग रहकर किसी दूसरे गाँव में स्कूल अध्यापक है । उसके लिए लड़कियाँ देखी जा रही है । वह स्वयं एक लड़की देखने जाता है और पाता है कि उस लड़की के साथ वह बेहद सहज हो उठा है । अंततः उसे वह रिश्ता मंजूर हो जाता है । एक दिन वह लड़की स्कूल आकर उससे कुछ बताना चाहती है, लेकिन संकोचवश वह वापस लौट जाती है । फिर पता चलता है कि वह माँ के साथ किसी अन्य शहर चली गयी है । उनका विवाह

नहीं हो पाता, और वर्षो बाद उस स्टेशन से गुजरते हुए कथानायक को वे स्मृतियाँ पुरानी दुनिया में ले जाती हैं ।

''जाले'' एक ऐसे परिवार की कहानी है, जिसमे भाई अकेला रह रहा है । वह अकेलेपन से घबराकर उसे बड़े घर को बेचना चाहता है । वह अपनी तीनों बहनों को आमंत्रित करता है । लेकिन बहनों के आने के बाद उस परिवार में माँ-पिता की स्मृतियाँ ताजा हो उठती हैं । बहने स्वयं चाहती है कि वे मकान बेचने में भाई की मदद करें । लेकिन अतीत उनका पीछा नहीं छोड़ता और अंततः भाई अकेला रह जाता है ।

संग्रह की अंतिम कहानी है ''खाली जगह से'' । वास्तव में यह कहानी नहीं एक स्मृतिबोध है, जिसमें अजन्ता, इलोरा की गुफाओं को देखकर कथानायक को शोगी बाबा याद आते हैं । पहाड़ों की दुनिया याद आती है, शिमला वाली और झाँसी वाली जेठानियाँ याद आती है । अतीत की उन सारी स्मृतियों का ''लैंन्डस्केप'' उभरता है, जो बचपन के बीच देखे गये थे । यह कहानी एक लघुकथा जैसी है, जो छोटी होते हुए भी बचपन को थोड़े से चित्रों में लौटा ले आती है ।

निर्मल वर्मा की सारी कहानियाँ अतीत की इन्हीं यादों की कहानियाँ हैं, जिनमें ढेरों चित्रावलियाँ हैं, मौसम है, पहाड़ी जगहें हैं, गिरिजाघर हैं, दूर से आता पियानो का संगीत है, और इन सबके बीच फैले एक घूमिल आलोक की उपस्थिति सर्वत्र विद्यमान है । इन सबका इतनी बार दोहराव हुआ है कि कथाकार मार्कण्डेय एक ओर जहाँ इस दुहराव को निर्मल का अभाव मानते हैं वहीं ममता कालिया उसे, उनके लेखन का औजार मानती है । मार्कण्डेय कहते हैं, ''निर्मल की कहानियों में लेखकीय कथनों की एक कतार लगी हुई है । जहाँ जरा सी गर्मी-शर्दी लगी कि कमजोर बच्चों को छीक आने लगती है । यदि और सफाई से कहें तो जैसे रह-रहकर बैलगाड़ी के पहिए की हाल उतर जाती है, ठीक वैसे ही पात्र जरा सा संवेदनात्मक संकट पड़ते ही खिड़की के बाहर देखने लगते हैं - जहाँ कोई रेलिंग होती है, और लेखक अपनी कोई

उक्ति कोई काव्यात्मक प्रसंग या कोई चमत्कार पूर्ण वाक्य डालकर ही आगे बढ़ता है ।"[१०]

इसके विपरीत ममता कालिया कहती है, "सूनी सड़कें, सूखे पत्ते, अनजान दरख्त, बर्फ का गिरिजाघर, वक्त–बेवक्त पहाड़ी अकेलापन, बीयर की बोतलें और इस सबके बीच में बुनी एक उदास प्रेम कहानी – निर्मल वर्मा की वर्कशोप के ये अनिवार्य औजार हैं । इन्हीं गिनी–चुनी चीजों में निर्मल वर्मा हर बार एक अनजाना लेकिन बेहद प्रिय मोहक व मोहित संसार कर लेते हैं ।"[११] इस औजार को प्रख्यात आलोचक नामवरसिंह इतिहास से जोड़कर इन छाया–स्मृतियों का सार्वभौम स्वरूप स्वीकार करते हैं । नामवरसिंहजी कहते हैं, "व्यक्ति चरित्र वहीं हैं, जीवन स्थितियाँ भी रोज की जानी–पहचानी हैं, लेकिन निर्मल के हाथों वहीं स्थितियाँ इतिहास की विराट नियति बनकर खड़ी हो जाती हैं । उनके सम्मुख खड़ा व्यक्ति सहसा अपने को असाधारण रूप से अकेला पाता है और उसकी जबान से निकला हुआ मामूली सा वाक्य एक युग व्यापी प्रश्न बन जाता है ।"[१२]

वास्तव में निर्मल का कथा संसार देश–विदेश के धरातल पर प्रेमी युगलों का संसार है, जिसमें जीवन के वे अनंत रंग हैं, जो प्रकृति में हमें दिखायी देते हैं । यहीं कारण है कि निर्मल वर्मा जीवन को व्याख्यायित करने के लिए बार–बार इस प्रकृति में लौटते हैं । उन्हें वह संगीत, वह घूमिल आलोक बार–बार घेर लेता है, जो अंततः जीवन की परिणति है जिससे मनुष्य कभी छूट नहीं पाता । इसी संगीत और आलोक की शोध में मनुष्य पूरा जीवन गुजार देता है । निर्मल वर्मा जीवन के इसी प्रतिकृति की खोज में अपने लेखन में निरंतर सक्रिय रहे हैं ।

## (२) उपन्यास :

निर्मल वर्मा के उपन्यास भी उनकी उन लम्बी कहानियों का ही विस्तार है, जो संबंधों के धरातल पर जीवन को विविध रंगों में चित्रित करने में निरंतर रत हैं । ये उपन्यास भी राष्ट्रीय–अंतराष्ट्रीय धरातल पर जीवन को अपेक्षाकृत उस पूरे परिप्रेक्ष्य में व्याख्यायित करते हैं, जो इतिहास बोध के

धरातल पर मनुष्य के वर्तमान से सतत जुड़ा रहा है । इसी जुड़ाव को निरुपित करने में निर्मल अपने पात्रों की दुनिया के प्रति बेहद सजग रहें हैं । यह सजगता "वे दिन" के इन्दी से लेकर अंतिम अरण्य के मेहरा साहब तक दिखायी देती है । इस आकलन के लिए हमें उनके उपन्यासों से विस्तृत ढ़ंग से गुजरना होगा ।

## *(i) वे दिन :*

निर्मल वर्मा का पहला उपन्यास है "वे दिन" । यह उपन्यास १९६४ में उन्हीं दिनों प्रकाशित हुआ था, जब उनका प्रथम कहानी संग्रह प्रकाशित होकर चर्चा में था । उन दिनों निर्मल चेकोस्लोवाकिया के प्राग विश्वविद्यालय में प्राध्यापक थे और चेक भाषा की कृतियों से साक्षात्कार करते हुए साहित्य को अंतराष्ट्रीय धरातल पर परख रहे थे ।

उपन्यास का कथानायक मैं अर्थात् इन्दी प्राग में अध्ययन रत एक भारतीय विद्यार्थी है, जो अवकाश के दिनों में भी वहाँ इसलिए पड़ा है, कि उसके पास एक तो वापस जाने के लिए पैसे नहीं हैं, और दूसरे वह अपने परिवार के प्रति रुचि खो चुके हैं । उसका रहन-सहन लम्बा बदरंग कोट, बदरंग जूते, उसकी जिन्दगी की कहानी कह रहे हैं । बेकारी के उन्हीं दिनों में एक टूरिस्ट एजेन्सी के आमंत्रण पर वह गाइड बनने का काम स्वीकार कर लेता है । जर्मनी से आया हुआ एक डेलीगेशन पहाड़ों पर छुट्टियाँ बिताने चला गया है, और अपने पीछे छोड़ गया है रायना रैमान नामक युवती, और उसके आठ वर्षीय बच्चे मीता को । इन्दी इन दोनों को गाईड की हैसियत से प्राग घुमाता है और अंततः रायना के प्रति आकर्षित होता चला जाता है । रायना जर्मनी में जाँक से इसलिए अलग हो चुकी है, क्योंकि उसके साथ रहते हुए उसे लगातार इस बात की अनुभूति होती रही है कि जैसे वह शरणार्थी कैम्प में रह रही हो । दूसरे महायुद्ध के दौरान उन्हें ऐसे ही कैम्पों में रहना पड़ता था । अब वह नहीं चाहती कि पति के साथ उन शरणार्थी दिनों की याद करें । इन्दी को अपने से मानसिक रूप से जुड़ा पाकर वह स्पष्ट कर देती है कि वह अब भी अपने पति से जुड़ी है, और वे सप्ताह में एक बार जरुर

मिलते हैं । रायना इन्दी के प्रति आकर्षित नहीं हैं उसे अपने जीवन में एक पड़ाव की तरह स्वीकार करती है, जिसमें वह युद्ध की छाया से स्वयं को मुक्त करने के लिए देश–विदेश भटक रही है । यहाँ तक कि इन्दी उससे शारीरिक रूप से भी जुड़ जाता है, फिर भी रायना उसे प्राग में छोड़कर किसी अगले पड़ाव पर जाने के लिए अपने देश लौट जाती है ।

इन्दी उन दिनों की याद अतीत को अंजुरी में समेटे हुए है, जिसमें रायना की उपस्थिति है, मीता की दौड़ और निश्छल किलकारियाँ है और इन सबके उपर युद्ध की वह छाया है, जो उन मधुर क्षणों को सागर के ज्वार की तरह बहा ले जाती है । इस ज्वार में निरंतर गुस्से में रहनेवाले टी.टी. का चरित्र है, फ्रांज और मारिया का चरित्र है, जो आपस में इसलिए विवाह नहीं कर पाते कि फ्रांज को बर्लिन जाना है और वीजा की शर्तो पर मारिया का उससे विवाह करना अवैध है । महायुद्ध में इन दोनों को भी स्वयं में अकेला कर दिया है । उन्हें निरंतर अकेले रहने के लिए वीजा की शर्ते निर्धारित कर दी हैं ।

“वे दिन” में एक ओर जहाँ रायना और इन्दी की कहानी है, वहीं दूसरी ओर फ्रांज और मारिया के बीच उन्हें निरंतर तोड़ता हुआ प्रेम है । सारा अलगाव अंततः महायुद्ध की छाया के कारण है, जो अतीत होकर भी उनके बीच गहरे अँधेरे की तरह फैला हुआ है । इस अँधेरे से साक्षात्कार की कहानी है – “वे दिन” जिसे निर्मल वर्मा मनुष्य के इतिहास बोध को समर्पित करना चाहते हैं ।

### *(ii) लालटीन की छत :*

यह उपन्यास एक ऐसी लड़की काया की कहानी से परिपूर्ण है, जो कैशोर्य से निकलकर यौवन की दहलीज पर कदम रखने को तत्पर है । लेकिन न तो कैशोर्य उससे छूट पाया है और न वह यौवन के प्रथम सोपान को स्वीकार कर पायी है । काया अपने शिमला के घर में रह रही है जहाँ माँ है, छोटा भाई है, नौकर है और एक बुढ़िया है जोसुआ । काया की हमउम्र लड़की लामा थी, जिसे अच्छी लड़की न मानकर बुआ से कहकर उसकी शादी

करवा दी गयी । लामा ने बताया था कि रेल्वे लाईन के पास उसकी कुतिया गिन्नी जिस तरह तड़प रही थी, वह छुटकारा पाना चाहती थी । काया के लिए लामा का यह कथन रहस्यमय लगता है । काया अपनी माँ को गर्भवती देखती है और घर में प्रसव के रहस्यमय वातावरण से साक्षात्कार करती है । उस रात जब वह माँ की दशा देखकर बेहोश हो जाती है तो नौकर उसे उठाकर अपने कमरे में ले जाता है, जहाँ उसकी हरकतें काया को कुछ विचित्र सी लगती हैं ।

इस घटना के बाद काया अपनी बुआ के घर चली जाती है, जहाँ अपने चाचा के लड़के बीरेन के संपर्क में आती है । काया उसकी ओर खिंचती चली जाती है और एक सीमा के बाद उसे इस बात का अर्थ समझ में आ जाता है कि गिन्नी किस बात से छुटकारा पाना चाहती थी । चाचा की पत्नी मर चुकी है और वह एक जादूगरनी जैसी औरत से जुड़ गये हैं । एक ओर वीरेन उसे खींच रहा है, तो दूसरी ओर वह जादूगरनी उसे पीछे धकेल देती है । काया बड़ी हो गयी है । उसे होस्टल भेजने की तैयारियाँ हो रहीं हैं, लेकिन काया को लगता है कि जिन्दगी में हर कहीं धोखा है और एक दिन उसे बुढ़िया जोसुआ के मौत की सूचना मिलती है, जो गिन्नी की तरह ही नितान्त अकेली थी और छुटकारा पाना चाहती थी । इन रहस्यों के बीच काया रजस्वला होती है और उसे गिन्नी की तरह छुटकारा मिल जाता है । लेकिन काया को लगता है कि यह छुटकारा जीवन के उस पार कहीं बेहद रहस्यमय है, जिसे पाना ही आदमी की अंतिम नियति है ।

इस उपन्यास में संबंधों के छोर पर खड़े लोगों की अंतिम नियति को लेखक ने काया, लामा, जोसुआ, बीरेन, चाचा और गिन्नी के माध्यम से संपूर्णता से व्यक्त किया है ।

### *(iii) एक चिथड़ा सुख :*

इस उपन्यास की नायिका बिट्टी अपने थियेटर के आकर्षण के कारण इलाहाबाद से दिल्ली आ जाती है । जहाँ वह एक बरसाती में रह रही है और इलाहाबाद से उसकी सहायता के लिए उसके चचेरे भाई मुन्नू को भेज

दिया जाता है । बिट्टी देर रात तक थियेटर से छुट्टी पाकर घर लौटती है और उसके साथ थियेटर के मित्रों में डैरी, नित्तीभाई और इरा जैसे लोग होते हैं । देर रात तक खाना–पीना चलता रहता है । बिट्टी डेरी के प्रेम में बँधती चली जाती है तो इरा नित्तीभाई से जुड़ गयी । इन सबके बीच मुन्नु खामोश निगाहों से बिट्टी को देखता रहता हैं । बिट्टी संवेदनाओं की दुनिया में उतरती हुई इतनी अकेली होती चली जाती है कि हर कहीं आँसुओं के सैलाब में डूबती चली जाती है । जबकि इरा नित्तीभाई को छोड़कर उनसे निराश होकर लंदन लौट जाती है । उधर डेरी उस मुकाम पर पहुँच जाते है कि लगता है कि वे जिन्दगी को बहुत दूर छोड़ते हुए उसे अपने व्यक्तित्व से छोटा करने चले जाते है । इन सारी जिन्दगियों के बीच मुन्नु तटस्थ दर्शक की तरह सच्चाईयों को देखता है और संपूर्ण उपन्यास को कमेंट्री की तरह सुनाता चलता हैं ।

इस उपन्यास में जिन्दगी की अलग–अलग मरीचिकाएँ हैं जहाँ एक ओर असफलताओं का दौर है तो दूसरी ओर सफलता के शिखर चढ़ती हुई उपलब्धियों का सिलसिला । पर सबकुछ के बावजूद एक मरीचिका है जो जीवनभर हमारा पीछा नहीं छोड़ती । निर्मल इसी मरीचिका पर हमारा ध्यान केन्द्रित करते हैं ।

### *(iv) रात का रिपोर्टर :*

यह उपन्यास आपातकाल की भूमिका पर आधारित है । उपन्यास का नायक रिशी बस्तर के इलाके पर एक रिपोर्ट तैयार करता है और उस रिपोर्ट की सत्यता के जरिये इस मुश्किल में फँस जाता है कि उसे सरकार की आक्रमक स्थिति का सामना करना पड़े । वह कभी भी कैद किया जा सकता है । एक ओर उसकी बीमार पत्नी है तो दूसरी ओर उसके अस्तित्व के प्रति लगातार चिन्तित प्रेमिका बिन्दु है । इन सबको वह नजर अंदाज कर वह चाहे तो जोखिम मोल ले सकता है, चाहे तो गलत रिपोर्ट देकर अपनी भूमिका के प्रति अन्याय कर सकता है ।

रिशी दयाल साहब से मिलता है, जो उसे बताते हैं कि उसका नाम भी इटेलीजेन्स की सूची में हैं । दयाल साहब यह भी बताते है कि उनके एक मित्र अनूप भाई जेल में हैं । जेल में वे रिमान्ड पर लेकर कैसी–कैसी यातनाएँ देते है, कथानायक घोर संकट में है कि उसे क्या करना चाहिए ? वह तनाव की स्थिति में मजदूरों के बीच पहुँच जाता है और उसे लगता है कि वह फिर से बस्तर के उस जंगल में पहुँच गया है, जहाँ एक ओर उसका परिवेश है तो दूसरी ओर उसका पत्रकार का फर्ज । स्पष्ट है कि उसे अपने फर्ज के बीच ही होना चाहिए ।

यह उपन्यास देशकाल की कठिन परिस्थितियों के समय अपनी जिम्मेदारियों के प्रति सचेत होने की भावना से जूझने का हर महत्त्वपूर्ण उद्घोष हैं ।

## *(v) अंतिम अरण्य :*

यह सन् दो हजार में प्रकाशित निर्मल का अंतिम उपन्यास है, जिसमें मृत्युबोध के बीच जीवन के सतत संघर्ष को सर्वोपरि निरुपित किया गया है । उपन्यास में मेहरा साहब एक रिटायर्ड अफसर हैं, जो बुढ़ापे में अपनी पत्नी दीपा के साथ एक पहाड़ी कस्बे में रह रहे हैं । दीपा अखबार में विज्ञापन देती है कि उन्हें आत्मकथा लिखवाने के लिए एक लेखक की जरुरत है । इस विज्ञापन को पढ़कर कथानायक वहाँ आता है और उनके जीवन, अनुभवों को आत्मकथा के रूप में लिखने लगता है ।

इस बीच दीपा की मौत हो जाती है और मेहरा साहब भी निरंतर मौत की ओर बढ़ रहे हैं । उपन्यास के एक पात्र निरंजनबाबू कथानायक को इस बात के लिए सचेत करते है कि उसे मौत के इतने निकट नहीं रहना चाहिए, और ऐसे में जबकि मेहरा साहब की बेटी स्वयं उनसे दूर होती जा रही है । मेहरा मजबूत हृदय से डॉकटर से अपनी मृत्यु के बारे में पूछ लेते हैं और तटस्थ होकर जीवन के अंतिम क्षणों का उपयोग कर रहे हैं । जबकि डॉकटर सिंह और निरंजनबाबू इस बात से हैरान हैं । किन्तु कथानायक अंतिम समय तक मेहराजी के जीवन के अंतरंग क्षणों के प्रति तन्मयता से समर्पित है ।

"इस उपन्यास में जीवन के अंतिम पलों में मृत्यु की अपेक्षा जीवन से गहनता का साक्षात्कार है । अपने इस अंतिम उपन्यास सहित सभी उपन्यासों में निर्मल देश–काल को इतिहास बोध से जिस तरह जोड़ने में संघर्षरत रहे हैं, उसका प्रतिफल है कि उन्हें एक ओर आलोचक उपन्यास यात्रा के तीसरे महत्त्वपूर्ण पड़ाव से जुड़ा हुआ पाते हैं ।"[९३] "तो दूसरी ओर पाठक को उस उपन्यास के घटनाक्रम में कहीं हिस्सेदारी के लिए विवश कर देते हैं ।"[९४] और इन सबके उत्तर में निर्मल वर्मा यह स्वीकार करते हैं, जहाँ पशु और आदमी के बीच विभाजन रेखा बहुत घूमिल होकर हमारे भीतर के "बेसमेन्ट" में साँस लेती रहती है ।[९५]

वास्तव में निर्मल वर्मा का संघर्ष मनुष्य के भीतर की इसी पशुता से संघर्ष है, जिसकी अनुगूंज उनके उपन्यासों में हर कहीं देखी जा सकती है ।

## (३) निबंध :

निर्मल वर्मा मूलतः कथाकार है, किन्तु समकालीन जिन्दगियों को उन्होंने इतिहास के गहरे परिप्रेक्ष्य में रेखांकित कर उसे अंतराष्ट्रीय धरातल पर उसके देशकाल से जोड़ने का प्रयत्न किया है । इस कोशिश में एक ओर जहाँ उन्होंने अपने चिन्तन को कथानायकों की विराट दुनिया में समाहित किया है, वहीं दूसरी ओर सीधे–सीधे वैचारिक रूप से निबंधों की सर्जना कर उन्होंने अपने चिन्तन को शिखर पर साबित करने की कोशिश की है । इस प्रयत्न में वे देशकाल और समय संदर्भो के संपूर्ण उतार चढ़ाव से गुजरकर अपने चिन्तन धरातल स्थापित करते हैं । उनकी वैचारिकता से गुजरने के लिए हमें उनके निबंध संग्रहों पर दृष्टि डालनी होगी ।

### *(i) शब्द और स्मृति :*

यह निर्मल वर्मा का १९७६ में प्रकाशित हुआ प्रथम निबंध संग्रह है, जिसमें दश शीर्षकों के भीतर साहित्य के सौंदर्य, लेखक की आस्था, सृजन प्रक्रिया, सम्प्रेषण का संकट, संस्कृति, समय और भारतीय उपन्यास, समाज व्यवस्था, साहित्य और सिनेमा के रिश्ते से लेकर गद्य के पतन तक गहरी

दृष्टि डाली गयी है । इस निबंध संग्रह में साहित्य को अपने वक्त में परखने और उसकी भूमिका निरुपित करने का प्रयत्न किया है । इस कोशिश में उन्होंने देश–विदेश के अनेक साहित्यकारों के कथनों–उपकथनों का सहारा लिया है । उन्होंने फ्लाबेअर, तोलर्स्तोय, टी.एस. इलियट, दोस्तोयवस्की आदि लेखकों की विचारधाराओं को केन्द्र में रखकर न केवल समकालीन दुनिया की परख की है, बल्कि निरंतर बदलते जा रहे व्यापारिक समीकरणों के चलते लेखक की भूमिका और संप्रेषण के संकट को पूरी तरह जाँचने –परखने का काम किया है । उनका मानना है कि लेखक ऐसे वक्त में तब तक मुक्ति पा नहीं सकता, जब तक वह भाषा और शब्द के साथ खिलवाड़ करता रहेंगा । निर्मल कहते हैं – ‘‘लेखक शब्दों से मुक्ति नहीं पा सकता । वह अभिशप्त रूप से उनसे बँधा है । इससे एक विकट स्थिति उत्पन्न होती है । वह अपनी अभिशप्त स्थिति का अतिक्रमण करने की बजाय खुद शब्दों से बदला चुकाने लगता है । वह भाषा से खिलवाड़ करने लगता है । और कभी यह खिलवाड़ अपने में ही अजीब गहरी सार्थकता ग्रहण करने लगता है ।’’[१६]

स्पष्ट है कि निर्मल वर्मा इस खिलवाड़ को भी एक सार्थकता में बदलते हुए निरुपित कर लेखक को अपने वक्त की जिम्मेदारीयों से जोड़ देते हैं ।

### *(ii)* *कला का जोखिम :*

यह १९८१ में प्रकाशित निर्मल का एक और निबंध संग्रह है, जिसमें उन्होंने कला को मिथक और यथार्थ से जोड़कर उसमें इतिहास बोध की परंपरा निरुपित करते हुए पुरातन से बहुत कुछ लेकर, अपने वक्त के लिए संवाद की स्थितियाँ निर्धारित करते हैं । इस प्रक्रिया में निर्मल ने रेणु, अज्ञेय, मुक्तिबोध जैसे लेखकों की रचनाओं को परखकर उनकी रोशनी में लेखकीय विरासत सजोने का प्रयत्न करते हैं । निर्मल कला के लिए यह जोखिम का समय मानते हैं और इस जोखिम भरे समय में संवाद की स्थितियों को अपने समय के सारे संकटों से बचाने का प्रयत्न करते है । निर्मल सवाल करते है कि इस तेजी से बदलते वक्त में ‘‘कहानीकार की प्रेरणा का क्या उत्स है ? वह

कौन सा आत्मलोक है, जहाँ उसे अपने उपन्यास का पहला दृश्य दिखायी देता है ?"[१७]

इस संग्रह में "सुलगती टहनी" शीर्षक एक रचना खंड भी है, जिसमें निर्मल एक लड़की की कहानी कहते हुए दिखायी देते हैं ।

## *(iii) ढलान से उतरते हुए :*

इस संग्रह में निर्मल एक बार फिर साहित्य को अलग-अलग कोणों से परिभाषित करते हैं । संपूर्ण संग्रह कला और कलाकृति अवस्थाएँ, रास्ते पर जैसे तीन खंड़ो में विभाजित हैं । आरंभिक दो खंडों में कला और संस्कृति आलोचना की मर्यादा, कहानी विधा के ऊपर चिन्तन परक निबंध है, तो दूसरी ओर धर्म और राजनीति को शताब्दी के समापन के सिरे पर जाँचने और परखने का प्रयत्न किया गया है । इन दो खण्डों में प्रेमचंद और मलयज जैसे रचनाकारों की रचनात्मकता पर भी दृष्टि डाली गयी है ।

तीसरे खण्ड में लेखक की डायरी है, जिसमें जीवन के क्षण-क्षण बीतते संदर्भो को संरक्षणात्मक ढंग से देखने की कोशिश की गयी है ।

## *(iv) भारत और यूरोप : प्रतिश्रुति के क्षेत्र :*

इस निबंध संग्रह को लेखक ने दो खण्डों में विभक्त किया है। पहले खण्ड में लेखक ने भारतीय संस्कृति को अपने राष्ट्र के रूप में निरुपित किया है । साथ ही यूरोपीय स्थितियों पर दृष्टि केन्द्रित करते हुए, भारत और यूरोप की परस्पर वैचारिक विरासतों पर दृष्टि डाली है । दूसरे खण्ड में संस्कृति, साहित्य, कला, आलोचना और लेखक को अंतर्राष्ट्रीय समाज - संदर्भो से जोड़ते हुए निर्मल अंततः भारतीयता पर लौटते हैं । मूलतः इन निबंधों की रचना में निर्मल अपनी साहित्यिक वापसी को ही चरितार्थ करते हैं, जो उन्हें वापस न लाकर, रचनात्मक धरातल पर विकल्प की ओर ले जाती है । निर्मल वर्मा इस संग्रह की भूमिका में कहते हैं, "ये निबंध संग्रह मेरी विचारयात्रा के पड़ाव अंकित करते हैं... कहीं अधिक ठहरा हूँ, कहीं ज्यादा ठहरने के लालच

को दबाना पड़ा है, कहीं बिना ठहरे आगे बढ़ गया हूँ... इस आशा में कि कभी लौटने का मौका मिलेगा ।''[१८]

## (v) शताब्दी के ढलते वर्षों में :

यह १९९५ में प्रकाशित निर्मल वर्मा का एक अति महत्त्वपूर्ण निबंध संग्रह है, जिसमें ''कला, साहित्य, सृजनकर्म' और समाज संस्कृति, आधुनिक युगबोध जैसे दो खण्डों में निबंध संग्रहित किये गये हैं । और तीसरे खंड ''रचनाकार'' में भारतीय और यूरोपीय लेखकों की साहित्यिकता को समय की कसौटी पर कसने का प्रयत्न है ।

प्रथम खंड में कला की प्रासंगिकता, सत्य की अवधारणा, आलोचना की मर्यादा, कहानी विधा, उपन्यास की मृत्यु और पुनर्जन्म, संस्कृति, समय और भारतीय उपन्यास, साहित्य और लेखक की आस्था, सृजन में सौंदर्य और नैतिकता, साहित्य में प्रासंगिकता का प्रश्न जैसे विषयों पर विस्तार से चर्चा है । दूसरे खण्ड में भारतीय संस्कृति, राष्ट्र, धर्म, राजनीति, कला मिथक और संवाद की मर्यादाओं को परखते हुए शताब्दी को ढलते हुए मोड़ पर उसे लेखकीय जिम्मेदारियों से देखने का प्रयत्न किया गया है ।

रचनाकार खण्ड में प्रेमचंद, अज्ञेय, रेणु, मुक्तिबोध, नाबोकोव, चेखव के साहित्य की गहरी पड़ताल है । अंत में चेखव के वे पत्र है, जिन्होंने लेखक को वैचारिक रूप से बहुत प्रभावित किया ।

## (vi) दूसरे शब्दों में :

यह निर्मल का एक और निबंध संग्रह है, जिसमें मनुष्य से साक्षात्कार, सृजन का परिवेश, भाषा और राष्ट्रीय अस्मिता, लेखक की स्वतंत्रता, हमारी चुनी हुई चुप्पियाँ, मानसिक गुलामी का शब्द कोश जैसे शीर्षको में लेखक ने मनुष्य की शाश्वत अस्मिता को उठाते हुए उसे राष्ट्रीय–अंतराष्ट्रीय धरातल पर जाँचने परखने का प्रयत्न किया है ।

पुस्तक के अंतिम खण्ड में निर्मल वर्मा से समय-समय पर लिये गये साक्षात्कार संग्रहीत हैं, जिनमें देश-काल, राजनीति धर्म और लेखक की भूमिका पर गहरी दृष्टि डाली गयी है ।

इस संग्रह में लेखक ने ''मानसिक गुलामी का शब्दकोश'' के अंतर्गत तिब्बत की मुक्ति का प्रश्न उठाया है ।

### *(vii) आदि, अंत और आरंभ :*

यह सन् २००१ में प्रकाशित निर्मल का अंतिम निबंध संग्रह है । जिसमें ''भारत एक स्वप्न'', ''कथ्य की खोज'', ''दो स्वीकृतियाँ'' जैसे तीन खंडों के भीतर भारतीयता की खोज करते हुए, पूर्व और पश्चिम का संबंध निरुपित कर निर्मल वर्मा ने अंततः भारतीयता पर अपनी दृष्टि केन्द्रित की है । इसमें मेरे लिए भारतीय होने का अर्थ एक भारतीय बुद्धिजीवी की भूमिका, धर्म, लोकतंत्र और सांप्रदायिकता, भूमण्डलीकरण के दौरान भारतीय संस्कृति, धर्म निरपेक्षता, नर्मदा एक सांस्कृतिक परिक्रमा, हिन्दी का संघर्ष जैसे वे नूतन विषय हैं, जिन पर पिछले निबधों से हटकर निर्मल ने अपनी वैचारिकता केन्द्रित की हैं ।

इस निबंध संग्रह में लेखक ने रेणु की ''परती परिकथा'' और धर्मवीर भारती की कहानियों पर भी अपनी वैचारिकता केन्द्रित की है । जिससे इस बात का गहरा अहसास होता है कि निर्मल अपने समय के लेखकों में भारतीयता की गहरी छवि देखते हैं । उन्होंने भारतीय ज्ञानपीठ के ''मूर्तिदेवी पुरस्कार'' प्राप्ति के समय दिया गया व्याख्यान भी यहाँ संग्रहित किया है, जिसमें तुलसी, कबीर और रवीन्द्रनाथ के प्रति भी गहरी आस्था का परिचय दिया है ।

## (४) यात्रा संस्मरण :

निर्मल मूलतः एक घुमक्कड लेखक रहे हैं । उन्होंने भारत से लेकर यूरोप तक अनेक नगरों-महानगरों एवं पुरातात्त्विक स्थलों को एक पर्यटक की तरह देखा है । यहीं कारण है कि उनकी रचनाओं में शब्दों के ''लैंडस्केप''

जगह–जगह दिखायी देते हैं । निर्मल ने अपने यात्रा–संस्मरणों में इस दृश्यांकन को और भी धनीभूत ढ़ंग से व्यक्त किया है ।

### *(i) चीड़ों पर चाँदनी :*

यह निर्मल का १९६४ में प्रकाशित यात्रा–संस्मरण हैं, जिसमें ब्रेख्त और एक उदास नगर, रोती हुई मर्मेड का शहर, उभरी रोशनीयों की ओर, सफेद रातें और हवा, पेरिस एक स्टिल लाइफ, वियना जैसे यात्रा संस्मरणों के भीतर उन्होंने अपने यूरोप प्रवास के दौरान, महायुद्धोत्तर यूरोप ने देशकाल को सजगता से चित्रित किया है ।

किन्तु ''चीड़ों पर चाँदनी'' एकमात्र यात्रा संस्मरण है, जो नैनीताल और भीमताल पर लिखा गया है । जिसके बहाने निर्मल वर्मा का पहाड़ी आकर्षण यहाँ भी सजीव हो उठा है । इस निबंध में उनका पहाड़ी आकर्षण जगह–जगह देखा जा सकता है । ''इन पहाड़ों के पीछे न जाने क्या होगा ।''[१९] ''पहाड़ों पर चाँदनी का यह अद्भूत मायाजाल मैंने पहली बार देखा था ।''[२०] ''यह पहाड़ी छायाएँ एक–सी हैं, किन्तु हर जगह इनके पल–छिन बदलते रंगों को देखा है ।''[२१] ''वहाँ पहाड़ियाँ खामोश रहती है । शाम की उनींदी उदासी में केवल पहाड़ी चरवाहों को गीत स्वर हवा में उड़ता भटकता सुनायी दे जाता है ।[२२]

### *(ii) हर बारिश में :*

यह १९७० में प्रकाशित निर्मल का एक और यात्रा संस्मरण है, जो यूरोप पर ही केन्द्रित है । लेकिन यह भी सच है कि यूरोप के भटकते–वातावरण में निर्मल भारतीयता की पहचान हर जगह जीवित रखते हैं । वे यूरोप को अंतराष्ट्रीय धरातल पर परखते हुए अंततः उसे उस भारतीयता में लौटा ले जाते हैं, जो अपने उत्तराधिकार में सारी दुनिया के सामने कभी–दर्पण रहा होगा । केन्द्रीय मानव स्थिति, दो संस्कृतियों के बीच, यूरोप में भारतीय, अंग्रेजो की खोज में, अंधेरे में एक चीख, प्राग का आधुनिक रंगमंच, प्राग एक स्वप्न – जैसे निबंधों में लेखक ने यूरोप की संपूर्ण जिन्दगी

को पूरी तन्मयता से जाँचने की कोशिश की है । यहाँ तब की वह जिन्दगियों को देखने में यह भूल गया कि वह लेखक भी है । निर्मल कहते हैं – ''जब में दुबारा रेल में बैठा मुझे यह ख्याल कुछ अधिक विचित्र नहीं लगा कि इन दस दिनों में मैंने न साहित्य की चर्चा की, न साहित्यकारों की । जितने प्रश्न लेकर मैं लंदन से आया था, वे वैसे ही अनपूछे पड़े थे ।''[२३] ''मैं भयानक घड़ियों में प्राग लौटा था । मैं एक ऐसे देश में जा रहा था, जो एक अन्य समाजवादी देश की सेनाओं और टैंको से घिरा था ।''[२४]

## (५) डायरी :

निर्मल वर्मा देश–विदेश के अनुभव से जिस तरह गुजरते रहे हैं, उन्होंने जिस तरह अंतर्राष्ट्रीय वर्तमान को इतिहास और परंपरा से जाँचने का उद्योग किया है, उसमें उनकी डायरी का बहुत महत्त्वपूर्ण हाथ है । अपने भारतीय ओर यूरोपीय जीवन संदर्भों को उन्होंने धुंध से उठती धुन के अंतर्गत समाहित किया है, जो चार खण्डों में विभाजित है । प्रथम खंड में (धुंध से उठती धुन) दिल्ली, शिमला, रानीखेत, भोपाल और पंचवटी में बिताये गये क्षण है, जिनमें विदेश प्रवास के दौरान जिये गये स्थलों की उन्नत यादें हैं । दूसरे खण्ड (बहता पानी निर्मला) में रायपुर, अमरकंटक, मार्गपुर, नागालेन्ड, सिंगरौली और प्रयाग की स्मृतियाँ हैं, जिसमें बस्तर के जंगलों की महुए की महक है, स्वामीजी है, गौराबाई है, गौराबाई का मुजरा है और वह सब है, जो भारतीय परिवेश में उन्हें यूरोप की तरह आकर्षित करता है । तीसरे खण्ड (हार्वड डायरी) में हार्वड युनिवर्सिटी के दिनों की यादें है । चौथे खण्ड (रास्ते पर) में भारत यूरोप के वे क्षण हैं, जो एक–दूसरे से गुंथे हुए निर्मल वर्मा की जिन्दगी का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है, जिनकी यादे भुलाये नहीं भूलती ।

## (६) नाटक :

निर्मल मूलतः कथाकार हैं और उन्होंने कभी नाटक नहीं लिखा । पर उनकी ''माया दर्पण'' कहानी पर कुमार साहनी ने कला फिल्म का निर्माण किया, जिसे १६७३ का सर्वश्रेष्ठ राष्ट्रीय फिल्म का पुरस्कार प्राप्त हुआ ।

उनकी ''धूप का एक टुकड़ा'', ''डेढ़ इंच ऊपर'' और ''वीक एण्ड'' शीर्षक कहानियों को राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय दिल्ली ने मंचित किया, जिसे ''तीन एकांत'' शीर्षक से संग्रहीत किया गया है । ये नाटक अधिकांश अकेलेपन का एकालाप हैं, जिनमें अतीत व्यक्ति को वैसे ही प्रभावित करता है, जैसे कि निर्मल वर्मा की कहानियों में वह बार-बार उभरकर वर्तमान को सार्थक बना जाता है । पर यह भी सच है कि निर्मल वर्मा मूलतः कथाकार हैं और उनकी कथाओं में मनोविज्ञान जिस तरह उभरकर सामने आया है, वह नाटक जैसी दृश्य-विधा के माध्यम से संभव नहीं है । यह केवल एक प्रयोग है, जिसे उनकी साहित्यिक यात्रा में कहीं शामिल किया जा सकता है ।

## (७) अनुवाद :

निर्मल एक ऐसे कथाकार रहे हैं, जिन्होंने अपने लेखन को देश-विदेश के संदर्भो, इतिहास पुराण के साक्ष्यों एवं सत्यों से गुंफित करने का प्रयत्न किया है । उन्होंने देश-विदेश के लेखकों की रचनाओं का साक्ष्य भी पर्याप्त मात्रा में लिया है । विशेषकर उन-विदेशी लेखकों को उन्होंने जगह-जगह रेखांकित किया है, जिन्होंने इतिहास बोध के गहरे-धरातल पर जा कर अपने वर्तमान को आनेवाली पीढ़ियों के लिए रोशनी की तरह निर्मित किया है । इस कोशिश में उन्होंने न केवल चेक भाषा सीखी, बल्कि कारेल चापेक की कहानियों का अनुवाद किया । उन्होंने ''इतने बड़े धब्बे'' शीर्षक से यूरोप से महायुद्धोतर रचनाकारों में मिलान कुंडेरा, बोहुमिल, हार्बल, ईवान क्लीमा, जोसेफ स्कवोरेस्की, आनोश्चित लुस्तिका, मारोस्लाव की कहानियों का अनुवाद किया । उन्होंने ''रोमियो जुलियट और अँधेरा'' शीर्षक से यान आत्थे नाशेक के उस उपन्यास का अनुवाद किया जिसमें यूरोपीय समाज में बर्वर नस्लवाद का विरोध करते हुए यहूदियों के ऊपर जर्मन सेना के अत्याचार की कहानी कही गयी है । स्पष्ट है कि निर्मल इस उपन्यास के द्वारा यूरोपीय नस्लवाद से सारी दुनिया को परिचित कराना चाहते हैं । जिसके भूल में स्पष्ट है कि ज्ञान-विज्ञान की दुनिया में विकसित यूरोप अपनी अंतरंगता में ऐसी क्षुदताओं

से भरा हुआ है जो समकालीन दुनिया के लिए नितान्त अमानवीय है और जिससे मानवीयता की माँग की जानी चाहिए ।

### ✦ *निष्कर्ष :*

इस तरह हम पाते हैं कि 'परिन्दे' से अपनी रचना यात्रा प्रारंभ करनेवाले निर्मल वर्मा के पास अनुभूतियों का एक विशाल भंडार है, जिन्हें वे कहानी, उपन्यास, निबंध, यात्रा-संस्मरण, डायरी, नाटक और अनुवादों के माध्यम से व्यक्त करते हैं । उनके लिए स्वयं का सर्जन हो अथवा पूर्व सर्जित दुनिया को संदर्भों से जोड़ने का प्रश्न हो – निर्मल वर्मा अपने समय के मनुष्य और उसके आगत खतरों के प्रति निरंतर सावधान है । इन खतरों से मनुष्य की शाश्वत मुक्ति के लिए वे विविध विधाओं में प्रवेश करते हैं । लेकिन अंततः उनकी रचना का केन्द्र अपने समय और समाज का मनुष्य है, जिसे वे अंतर्राष्ट्रीय धरातल पर, अंतराष्ट्रीय इतिहास की परिधि में रखकर देखते हैं ।

## संदर्भ सूची :


| | |
|---|---|
| १ | कथाकार निर्मल वर्मा, नरेन्द्र इष्टवाल, पृ. ३५ |
| २ | कथाकार निर्मल वर्मा, नरेन्द्र इष्टवाल, पृ. ३५ |
| ३ | कथाकार निर्मल वर्मा, नरेन्द्र इष्टवाल, पृ. ३५ |
| ४ | परिन्दे, निर्मल वर्मा, पृ. ३० |
| ५ | परिन्दे, निर्मल वर्मा, पृ. ३८-३९ |
| ६ | परिन्दे, निर्मल वर्मा, पृ. ४० |
| ७ | परिन्दे, निर्मल वर्मा, पृ. ६१ |
| ८ | परिन्दे, निर्मल वर्मा, पृ. १२७ |
| ९ | परिन्दे, निर्मल वर्मा, पृ. १५३ |
| १० | कहानी की बात, मार्कण्डेय, पृ. १७ |
| ११ | हिन्दी उपन्यास : १९५० के बाद, ममता कालिया पृ. ५० |
| १२ | नयी कहानी की पहली कृति : परिन्दे, कहानी : नयी कहानी, नामवरसिंह, पृ.५२ |
| १३ | आधुनिक हिन्दी उपन्यास, डॉ. इन्द्रनाथ मदान, पृ. ७६ |
| १४ | ज्ञानोदय, अप्रेल, १९६५, संदर्भ : हिन्दी लघु उपन्यास, घनश्याम मधु, पृ.२०३ |
| १५ | निर्मल वर्मा, संपादक अशोक बाजपेयी, पृ. ५१ |
| १६ | शब्द और स्मृति, निर्मल वर्मा, पृ. ४६ |
| १७ | नाबोकोव : साहित्य शिक्षक के रूप में, कला का जोखिम, निर्मल वर्मा, पृ.१४१ |
| १८ | प्राक्कथन, भारत और यूरोप : प्रतिश्रुति के क्षेत्र, निर्मल वर्मा, |
| १९ | चीड़ों पर चाँदनी, निर्मल वर्मा, पृ. १३० |
| २० | चीड़ों पर चाँदनी, निर्मल वर्मा, पृ. १३२ |
| २१ | चीड़ों पर चाँदनी, निर्मल वर्मा, पृ. १३३ |
| २२ | चीड़ों पर चाँदनी, निर्मल वर्मा, पृ. १३४ |
| २३ | अँधेरे के खिलाफ, हर बारिश में, निर्मल वर्मा, पृ. ६६ |
| २४ | अँधेरे के खिलाफ, हर बारिश में, निर्मल वर्मा, पृ. ६६ |


❋❋❋

# तृतीय अध्याय
# उपन्यास : परंपरा और विकास

प्रस्तावना

(१) पाश्चात्य परंपरा

*(i)* धार्मिक परंपरा

*(ii)* रोमांटिक परंपरा

*(iiii)* गद्य-कथा परंपरा

*(iv)* आंदोलनात्मक परंपरा

*(v)* अंग्रेजी उपन्यास परंपरा

*(vi)* नवीनतम परंपरा

(२) भारतीय परंपरा

*(i)* वैदिक परंपरा

*(ii)* पुराण परंपरा

*(iii)* नीति-संबंधी कथाएँ

*(iv)* संस्कृत परंपरा

*(v)* अपभ्रंश परंपरा

*(vi)* प्रेमाख्यानक काव्य परंपरा

*(vii)* हिन्दी उपन्यास परंपरा

हिन्दी कथा धारा

हिन्दी उपन्यास : उद्‌भव और परंपरा

## उपन्यास युग और स्वरूप

### (१) प्रेमचंद पूर्व युग

(i) सामाजिक उपन्यास

(ii) तिलस्मी–ऐयारी उपन्यास

(iii) जासूसी उपन्यास

(iv) ऐतिहासिक उपन्यास

### (२) प्रेमचंद युग

*(i) सामाजिक उपन्यास*

*(ii) ऐतिहासिक उपन्यास*

### (३) प्रेमचंदोत्तर युग

*(i) मनोवैज्ञानिक उपन्यास*

*(ii) सामाजिक उपन्यास*

*(iii) प्रयोगशील उपन्यास*

*(iv) ग्रामीण और आँचलिक उपन्यास*

*(v) ऐतिहासिक उपन्यास*

## उपन्यास के तत्त्व :

*(i) कथावस्तु*

*(ii) पात्र एवं चरित्र*

*(iii) कथोपकथन*

*(iv) देशकाल और वातावरण*

*(v) भाषाशैली*

*(vi) उद्‌देश्य*

## हिन्दी उपन्यास और निर्मल वर्मा :

# तृतीय अध्याय
# उपन्यास : परंपरा और विकास

## ❀ प्रस्तावना :

उपन्यास आज इक्कसवीं शती के आरंभ में जिस मोड़ पर है, उसमें भाषा, शिल्प और संवेदना के धरातल पर इतने विविध प्रयोग हुए हैं कि उपन्यास साहित्य अपनी अनेक उपलब्धियों से परिपूर्ण है । उपन्यासकार ने उपन्यास की धारा के बीच अपने काव्यात्मक स्पर्श से संवेदनाओं की ऐसी अछूती दुनिया उपस्थित की है जो इस उपलब्धि को बहुत ही महत्त्वपूर्ण बनाती है । लेकिन इस धारा तक पहुँचने के पीछे जो लंबी यात्रा है, वह उपलब्धियों के धरातल पर एक सतत विकसित परंपरा के रूप में मौजूद है और जिसे जाने-पहचाने बिना उपन्यास की कथागत उपलब्धियों की बात करना बहुत अर्थहीन होगा । उपन्यास विधा को पूरी तरह परखना है, तो हमें कथा-धारा की उस पूरी परंपरा से गुजरना ही होगा ।

## (१) पाश्चात्य परंपरा :

पाश्चात्य देशों में उपन्यास की धारणा एकाएक विकसित नहीं हो गयी । उसके पीछे सामाजिक प्रगति के समानांतर कथाओं का क्रमशः विकास होता रहा । यह विकास समाज के समानान्तर, उसकी विकसित परंपरा में समय की माँग बनकर उपस्थित हुआ ।

### *(i) धार्मिक परंपरा :*

जैसे-जैसे पाश्चात्य समाज विकसित होता गया वैसे वैसे वहाँ काव्यात्मक परंपराएँ विकास का स्थान लेती गयी । लेकिन तेरहवीं शताब्दी के आसपास धार्मिक ग्रंथों के प्रचार-प्रसार के लिए सतत विकसित कथाओं का आधार लिया गया । इन कथाओं में बाइबिल की कहानियाँ प्रमुख हैं । इनके अतिरिक्त *"Acts of Apposite"* (देवदूतों की प्रवृत्तियाँ) शीर्षक से प्रचलित कथाओं, पॉल,

मोजेस जैसे संतों की जीवनियों को फ्रेंच और अंग्रेजी साहित्य में बृहद रूप से लिपिबद्ध किया गया ।[१]

### *(ii) रोमांटिक परंपरा :*

धार्मिक परंपराओं के बाद पश्चिमी देशों में रोमांटिक परंपराओं ने जन्म लिया । इन कथाओं में विभिन्न देशों के राजकुमारों और राजकुमारियों के प्रेम का वर्णन है । साथ ही उनकी शौर्यपूर्ण जीवनियाँ भी लिखी गयी हैं । इन कथाओं में कुस्तुनतूनियाँ के राजकुमार की प्रेमकथा ***"Cliges"*** (क्लीजेज़), लैन्सलाट और गिनीविएट की कहानी के आधार पर फ्रांस और इंग्लैन्ड में अनेक दीर्घ कथाएँ रची गयी । इनके अतिरिक्त ग्रीक में हीलियोडोरस, अखिलिस ताशियस आदि की कथाएँ और ट्रॉय से संबंधित कथाएँ लिखी गयीं । साथ ही सिकन्दर तिमाएस, लूशियन, पाईथागोरस आदि की प्राचीन कथाओं ने यूरोपीय कथा-साहित्य को विविधताओं से भर दिया ।[२]

इन कथाओं के अतिरिक्त "कुस्तुनतूनिया का आक्रमण" उन ऐतिहासिक गद्य कथाओं का पहला नमूना है, जिनका फ्रेंच साहित्य में बहुत प्रचार हुआ । १३वीं शताब्दी की इस गद्य कथा में कुस्तुनतूनिया नगर और युद्ध के जंगी जहाज आदि का प्रभावशाली वर्णन है । १३वीं शताब्दी के अंत में जोहनविल की रचना ***'Vie-de Saint Louis'*** में लेखक ने अपने और अपने आश्रयदाता के चरित्र का चित्रण किया है ।[३]

### *(iii) गद्य-कथा परंपरा :*

तेरहवीं शताब्दी के बाद अंग्रेजी में गद्य कथाओं का विकास हुआ । मैलोरी ने सम्राट आर्थर के बारे में फ्रेंच में प्रचलित पद्यों का अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया, जिनमें "मोर्ट-डि-आर्थर" प्रमुख है ।[४] इस कथाकृति की विश्वसनीयता और शिल्प के बारे में आलोचकों ने विवाद प्रस्तुत किया है ।[५] उस समय तक कथा-कथन की परंपरा इतनी विकसित हो चुकी थी कि कई बार नायक-नायिका की मृत्यु के बाद भी कथाएँ चलती रहती थीं और अपनी

अतिश्योक्ति में कथा की विश्वसनीयता खो देती थी ।[६] स्पष्ट है कि उस समय के प्रचलित कथा–नायकों की लोकप्रियता के आधार पर समय–संगत परिवर्तनों और विकल्पों की खोज में इन कथाओं का विस्तार चलता रहता था । रोमांटिकता और जीवनियों की रोशनी में समाज को गढ़ने का प्रयत्न होता रहता था ।

१६वीं सदी के आरंभ में फ्रेंच साहित्य में पुनरुत्थान आरंभ हुआ । साथ ही अंग्रेजी में भी मौलिक कृतियाँ सामने आने लगीं । फ्रेंच में फ्रांसो रैवेले ने कथा साहित्य का एक नया रूप उपस्थित किया । उनके बृहद–ग्रंथ ***"Pantagrueline Prognastication"*** (पैन्टाग्रूएलिन प्रोग्नास्टीकेशन) में तीन पीढ़ियों के तीन वीर राजाओं की कहानी है । चार भागों के विशाल ग्रंथ में लेखक ने इन राजाओं की संपूर्ण जीवनी के अतिरिक्त उनके प्रेम–प्रसंग, शिक्षा खेलकूद, मनोविनोद, राज–प्रबंध नीति और धर्म को बृहद रूप से चित्रित किया है । इस ग्रंथ में अपने समय संदर्भों में देशकाल को संपूर्ण रूप में परखने और उसे दिशा देने का प्रयत्न किया गया है । साथ ही इस ग्रंथ में समाज की उन कुरीतियों पर भी दृष्टि डाली गयी है, जो समाज के विकसित होने में बाधक हैं ।[७]

### *(iv) आंदोलनात्मक परंपरा :*

सोलहवीं शताब्दी में विभिन्न चरित्रों को लेकर विकसित हुई भाषा–परंपरा ने १७वीं शताब्दी में आकर आंदोलनों का रूप ले लिया । एक ओर जहाँ रोमांटिक परंपरा फिर से अस्तित्व में आयी, वहीं दूसरी ओर इसके विरोध की प्रवृत्ति भी तेजी से एक धारा के रूप में विकसित होने लगी । इन दोनों धाराओं के टकराव के परिणाम स्वरूप यूरोपीय कथा–साहित्य ने विकास के कुछ और सोपान तय किये । रोमांटिक धारा सर्वप्रथम इंग्लैन्ड में आयी और उसके परिणाम स्वरूप फ्रेंच में ***"Honore de Urfe"*** (ऑनरे द उर्फे) की रचना ***"Artree"*** (अरत्री) पाँच भागों में सामने आयी, जिसमें चरवाहे की प्रेम कथा को केन्द्र में रखकर तत्कालीन फ्रांस के जीवन–जगत का वर्णन किया गया था । इसी रचना को केन्द्र बनाकर ***"Madeline de scudery"*** (मालदीन द

स्क्यूदरी) ने ***"Aretamene Ou Le Grand Gysas (Clelie)"*** (क्लेली) नामक दो उपन्यासों की रचना की ।[८] इन उपन्यासों में समान प्रवृत्तियों के द्वारा समाज के विकासशील तथ्यों पर दृष्टि केन्द्रित की गयी थी ।

इस आंदोलन के साथ ही फ्रांस और इंग्लैन्ड में स्वच्छदतावाद विरोधी धारा ने जन्म लिया और इसके परिणाम स्वरूप चार्ल्स सोरेल ने "ल बेर्जे – एकस्ट्राबगां" और फयूरेशिए ने "ल रोमन बुर्जुआ" जैसी रचनाएँ दी । इन रचनाओं में रोमांस पर तीखा प्रहार करते हुए, समाज को उसकी उन्मुक्त छाया में व्यवस्थित करने का प्रयास था । एक ओर फ्रांस में जहाँ स्वछन्दतावाद और रोमांटिकता का विरोध चल रहा था, वहीं दूसरी ओर इग्लैन्ड में जॉन बनियन और एफ्रा बेन जैसे लेखक रोमांस के विरुद्ध लेखन में सक्रिय थे । उन्होंने "प्रिलग्रेम्स प्रोग्रेस" जैसी रचना दी, जिसमें मनुष्य के लौकिक और पारलौकिक संसार के अतिरिक्त बाइबिल के उपदेशों का एक ईसाई परिवार की कथा के माध्यम से वर्णन है । जॉन बनियन की एक और रचना ने उन दिनों यूरोपीय समाज में अपनी गहरी उपस्थिति रेखांकित की । यह रचना थी ***"Life and Death of Mr. Badman"*** (लाइफ एण्ड डेथ ऑफ मि. बेडमेन), जिसमें एक व्यक्ति के पापमय संसार का वर्णन है, जो मरण की कगार पर आत्माहीन होकर असहाय स्थितियों का सामना करता है ।"[९]

इस रचना के अतिरिक्त मैडम एफ्राबिन की ***"The Unfortunate Bride"*** (अभागिन वधू) और ***"Oroonko"*** (औरुन्को) जैसी रचनाओं में जीवन के सुख–दुःख का आकलन करते हुए मानवीय समाज की कमजोरियों पर दृष्टि केन्द्रित कर यथार्थ के तीखे आलोक से अपने समाज को संपूर्णता देने की कोशिश की ।[१०]

इस तरह यूरोपीय कथा–प्रवृत्तियों को देखते हुए हम पाते हैं कि १३वीं शताब्दी के आसपास राजवंशों की रोमांटिकता की कहानी कहने वाले कथात्मक ग्रंथ, १७वीं शताब्दी तक अपनी उस सामाजिक जिम्मेदारी का पूरी तरह वहन करने लगे थे, जिसमें सामाजिक भूमिकाओं को लेकर उन पर विवाद भी खड़े

होने लगे थे । वस्तुतः इन रचनाओं को समय–संदर्भों में परखते हुए एक आलोचक दृष्टि भी उनका पीछा करने लगी थी ।

## (*v*) अंग्रेजी उपन्यास परंपरा :

फ्रांस के उपन्यासकारों ने उन दिनों अपनी कृतियों से अंग्रेजी को गहरे तक प्रभावित किया । उन्होंने एक ओर जहाँ फ्रेंच साहित्य का अनुवाद कर अंग्रेजी साहित्य को उपलब्धियों से भरने की कोशिश की, वहीं सन् १७१४ में रॉबिन्सन् क्रूसो द्वारा लिखा गया ''डेनिवल डीपो'' अंग्रेजी का पहला उपन्यास साबित हुआ, जिसमें न केवल वर्णन है, बल्कि चरित्रों को भी व्यापक ढ़ंग से विकसित करने का प्रयास किया गया है । क्रूसो के समकालीन जोनाथन स्विफ्ट ने ''गुलिवर्स ट्रेवल्स'' नामक रचना दी, जिसमें पर्याप्त मात्रा में समुद्री यात्रा का वर्णन है ।[११] इस उपन्यास के द्वारा काल्पनिक दुनिया की परिक्रमा करते हुए एक ऐसी कथात्मक प्रवृत्ति को जन्म दिया गया है, जिसने मनुष्य के विराट और लघु से लघुतर स्थितियों में उसके अस्तित्व को परखने का प्रयास किया है ।

१८वीं शताब्दी तक आते ही उपन्यास अंग्रेजी में और भी परिस्कृत हो चुका था । अंग्रेजी में रिचर्डसन्, फील्डिंग, स्मोलेट और स्टर्न जैसे लेखक अपना अस्तित्व बनाने लगे थे । रिचर्डसन् ने 'पमीला' जैसा उपन्यास दिया और उसके माध्यम से चरित्र प्रधान उपन्यासों का आरंभ किया । इस कथा–परंपरा को फील्डिंग, स्मोलेट और स्टर्न जैसे लेखकों ने आगे बढ़ाया और ''गोल्ड स्मिथ'', ''विकाट ऑफ वालफील्ड'' जैसे उपन्यास देकर उन्होंने पारिवारिक उपन्यासों की परंपरा शुरु की ।[१२]

१९वीं शताब्दी के आरंभ में सर डबल्यू स्कोट ने एक ओर जहाँ ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की, वहीं दूसरी ओर ''जैन ऑस्टिन'' ''प्राईड एण्ड प्रेज्यूडिस'' और ''सेन्स एण्ड सेन्सबिलिटी'' जैसे उपन्यासों की रचना कर मनुष्य के सार्वभौम धर्म और व्यवहार की सीमाएँ निर्धारित की । १९वीं शताब्दी में चार्ल्स डिकिन्स और थैकरे जैसे लेखकों ने ऐसे उपलब्धिपूर्ण उपन्यास दिये, जिनमें न केवल चरित्रों की प्रधानता थी; बल्कि सामाजिक जिम्मेदारियों के प्रति

नैतिकता का पूर्ण उद्घोष था । १६वीं शताब्दो के अंत तक उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक चित्रण का भी प्रमुख पक्ष हो चला था, जिनमें जार्ज इलियट, जार्ज मेरेडिथ, थोमस हार्डी, मिसेज हम्फरीबार्ड जैसे लेखकों ने खुलकर हिस्सेदारी की और अपने लेखन कौशल से उपन्यास विधा को समृद्ध किया ।[१३]

इन उपन्यासकारों के साथ उपन्यास विधा अपने संपूर्ण अस्तित्व में आ चुकी थी, जिसमें चरित्र, घटना, मनोविज्ञान और समाजोन्मुख समाज पूरी तरह निखर कर सामने आने लगे थे ।

### *(vi) नवीनतम परंपरा :*

बीसवीं शताब्दी के आरंभ के साथ–साथ प्रथम महायुद्ध के प्रभाव सारी दुनिया के मानव पर जिस तरह अपना रूप–रंग विकसित करने लगे थे, उसकी छाया में मनुष्य की नैतिकता और वासनाओं का एक अलग ही रूप विकसित होने लगा । वह अपने चरित्रगत रूप में उतना आदर्श नहीं रह गया, जितना कि परंपरा से उसे आदर्श प्राप्त था । इन स्थितियों को अंग्रेजी साहित्य में डी. एस. लॉरेन्स ने अपने उपन्यासों में पूरी तरह चित्रित करने की कोशिश की । और इसे अलग–अलग रंगों में हक्सले, वर्जीनिया वुल्फ, जेम्स जाईस जैसे लेखकों ने और गहरे तक अंकित किया ।[१४] इसके बाद अंग्रेजी उपन्यास पहले महायुद्ध से लेकर दूसरे महायुद्ध तक की छाया में अपनी टूटी हुई आस्था और व्यक्तिवादी सुखों के साथ निरंतर विकसित होते गये । महायुद्धों से लेकर समकालीन दुनिया के बाजारवाद और यांत्रिकता ने यूरोप को जितनी तेजी से प्रभावित किया है, उसका स्पर्श न केवल वहाँ के साहित्य पर पड़ता रहा है, बल्कि वह सारी दुनिया को भी प्रभावित करता रहा है ।

पाश्चात्य देशों में उपन्यास लेखन की यह परंपरा चरित्र–लेखन से आरंभ होकर १६वीं–१७वीं शताब्दी में ही अपने लेखन की जिम्मेदारियों से घिरती चली गयी, जिसे २०वीं शताब्दी तक अनेक शैलियों एवं कथ्य के सुनियोजित रूपाकार से परिपूर्ण कर दिया गया ।

## (२) भारतीय परंपरा :

भारतीय कथा–परंपरा में उपन्यास का अस्तित्व उतना पुराना नहीं है, जितना कि पाश्चात्य परंपरा में । भारतीय परंपरा में हिन्दी उपन्यास का प्रारंभ उन्नीसवीं शताब्दी के बीच हुआ, लेकिन कथा–कथन की परंपरा में इसकी धारा किसी न किसी रूप में बहुत प्राचीनकाल से विकसित होती चली आ रही है, जिसकी उपस्थिति के बिना १९वीं शदी में उपन्यास का उत्स अलग करके नहीं देखा जा सकता । स्पष्ट है कि हमें अपने प्राचीन वाङ्मय की कथाधारा से गुजरकर ही समकालीन औपन्यासिक परंपरा को देखना–परखना होगा ।

### *(i) वैदिक परंपरा :*

भारतीय वाङ्मय के सबसे प्राचीन स्वरूप वेद, ब्राह्मण, उपनिषद आदि में मिलता है । लेकिन इन कथाओं का ध्येय जीवन के गूढ़तम रहस्यों का अन्वेषण कर तत्त्व संहिताओं को प्रकाश में ले आना रहा है । वेदों में इन्द्र, वरुण, सविता, मरुत, अग्नि की स्तुतियों में संवेदात्मक कथोपकथन मिलते हैं, जिनके माध्यम से इन देवताओं की महत्ता प्रतिपादित की गयी है । ये कथाबीज आगे चलकर ब्राह्मण और उपनिषद ग्रंथों में विकसित हुए हैं, जिनमें प्राचीन ॠषियों और राजाओं की मनोरंजक एवं शिक्षाप्रद कथाएँ वर्णित की गयी हैं । इन ग्रंथों में ''बृहद देवता'' (सन् ११८४ ई.) और ''नीतिमंजरी'' (१४६४ ई.) में वैदिक कहानियों का उल्लेख कर उनसे समाज की दिशा एवं नीति–नियमों का उल्लेख किया गया है ।[१५]

इन वैदिक कहानियों का उद्देश्य तप, यज्ञ और जीवन की महत्ता प्रतिपादित करना रहा है । इनके आदर्श पात्र राजा, ॠषि और विप्र रहे हैं । नचिकेता की कथा है कि जिसने पिता द्वारा बूढ़ी गायों को दान में देने पर सत्याग्रह किया और पिता द्वारा यम को दे दिया गया । इन्हीं कथाओं में महर्षि च्यवन की पत्नी सुकन्या की पति निष्ठा से प्रसन्न होकर ॠषि को अलौकिक यौवन प्राप्त होता है । इन्हीं में उर्वशी और पुरुरवा की कथा है ।[१६]

स्पष्ट है कि कथा–कथन की यह परंपरा वैदिक काल से ही किसी न किसी रूप में आरंभ हो गयी थी और उसका विकास निरंतर रचे जानेवाले धर्मग्रंथों में होता रहा है ।

## *(ii) पुराण परंपरा :*

वैदिक परंपरा से आगे बढ़कर देखे तो अनेक पुराणों और रामायण तथा महाभारत जैसे महाकाव्यों में कथा–कथन की परंपरा विकसित होती चलती है । अनेक ग्रंथों में प्रश्नोत्तर रूप में एक कथा से दूसरी कथा का सूत्रपात होता है और वैदिक साहित्य की कथा–परंपरा अनेक रूपाकारों में विकसित होती हुई धर्म–दर्शन, जीवन और मोक्ष की अवधारणा प्रस्तुत करती है । इसके अतिरिक्त महाभारत और रामायण जैसे महाग्रंथ हैं, जिन्होंने काव्यात्मक रूप से कथाएँ देकर जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में मनुष्य को दिशा देने की कोशिश की है । ये ग्रंथ यद्यपि काव्य में लिखे गये हैं, लेकिन इनमें कथा का जिस तरह विस्तार है, उसमें एक ओर वैदिक परंपरा का ठोस आधार है तो दूसरी ओर अपनी पूर्व परंपरा से लिये गये कथा–सूत्र भी यहां मौजूद हैं । वाल्मीकि के महाकाव्य ''रामायण'' में जिस तरह परंपराओं का समावेश किया गया है, उससे आभास होता है कि रामकथा उनके पूर्व भी प्रचलित रही होगी । वास्तव में वाल्मीकि का अवतरण जिस युग में हुआ था, वह देव–संस्कृति के अवसान का युग था । स्पष्ट है कि ऋषि ने युग संधि की उस बेला में देव संस्कृति से ही यह परंपरा ग्रहण की होगी ।[१७]

## *(iii) नीति संबंधी कथाएँ :*

वेद, उपनिषद और ब्राह्मण ग्रंथों से लेकर रामायण और महाभारत जैसे ग्रंथों में जिस तरह रीति–नीति की परंपराओं का सूत्रपात किया गया, ये परंपराएँ जातक कथाओं, पंचतंत्र और हितोपदेश में एक अलग तरह से मनुष्य को संपूर्ण रूप से शिक्षित करती हुई सामने आयीं । बौद्ध जातक कथाओं की परंपरा लगभग दो हजार वर्ष पुरानी है ।[१८] इन कथाओं में बुद्धत्व प्राप्त करने के पूर्व बौधिसत्व को पाँच सौ सैतालीस जन्मों और उनकी कथाओं का वर्णन

है, जिसमें भगवान बुद्ध द्वारा विशिष्ट अवसरों पर कही गयी कथाएँ उस देश–काल, वातावरण और चरित्रों के साथ मौजूद है ।[१९] स्पष्ट है कि बुद्ध के मुख से कथा की प्रामाणिकता का सूत्रपात करते हुए एक कथा से दूसरी कथा उत्स सुदीर्घ कथा कहने की परंपरा में एक महत्त्वपूर्ण मोड़ है ।

इसी तरह ईसा की चौथी या पाँचवी शताब्दी के लगभग पंचतंत्र की रचना की गयी । जिससे दक्षिण के महिला रोप्य नामक नगर के राजा अमरशक्ति के तीन मूर्ख राजकुमारों को नीतिशास्त्र का ज्ञान कराने के लिए पंडित विष्णु शर्मा ने इस ग्रंथ की रचना की । इस ग्रंथ में पशु–पक्षियों की कथाओं के आधार पर जीवनोपयोगी व्यवहारिक ज्ञान, आचार–नीति, राजनीति, अर्थनीति, समाजनीति और नागरिक शास्त्र का अनुभव समृद्ध उपदेश संकलित किया गया है ।[२०] इसी तरह बंगाल के राजा धवलचंद्र के दरबार में रहनेवाले नारायण पंडित ने चौदहवीं शताब्दी में हितोपदेश की रचना की । रचनाकार ने इस बात को स्वयं स्वीकार किया है कि इस ग्रंथ का आधार पंचतंत्र ही है । इसमें चार प्रकरण हैं और इन प्रकरणों में अड़तालीस कथाएँ हैं, जिनमें पशु–पक्षियों को आधार–बनाकर, उनके द्वारा रीति–नीति की कथात्मक बातें की गयी है ।[२१] यह ग्रंथ पंचतंत्र की अगली कड़ी बनकर सामने आया, जिसमें पंचतंत्र की तुलना में कहीं अधिक सरलता विद्यमान थी ।

### *(iv) संस्कृत परंपरा :*

जिस देशकाल में पंचतंत्र लिखा जा रहा था, उस समय संस्कृत परंपरा में बहुत से ग्रंथ रचे गये । विशाखदत्त का ''मुद्राराक्षस'', भारवी का ''किरातार्जुनीयम्'', शूद्रक का ''मृच्छकटिकम्'' तथा सुबंध की कृति ''वासवदत्ता'' उस समय की ही रचनाएँ हैं जिनमें सुदीर्घ कथाओं की परंपरा किसी न किसी रूप में विद्यमान है ।[२२] इस काल में मनोरंजक, उपदेशात्मक और काव्यात्मक कथाओं का एक प्रवाह सा चल पड़ा था । दक्षिण के महाराज हाल के राजपंडित गुणादय ने पाँचवी शताब्दी में बृहद कथा की रचना की तो क्षेमेन्द्र ने ग्यारहवीं शताब्दी में ''कथा सरित्सागर'' जैसा ग्रंथ दिया, जिसमें मूलतः पार्वती–शिव की कथा है । मूल कथा कहनेवाला वररुचि है और श्रोता

विन्ध्याचल का एक आदिवासी काणभूति । श्रोता वक्ता से प्रश्न करता है और एक कथा से दूसरी कथा निकलती चलती है । इसी तरह शिवदास कृत ''वैताल पंचविंशतिका'' नामक ग्रंथ है, जिसमें महाराज विक्रमादित्य से संबंधित पच्चीस रोचक कथाएँ हैं । जिनमें विक्रमादित्य और वैताल के बीच संवाद और पुनः पेड़ पर लटक जाने की घटनाएँ हैं ।[२३]

संस्कृत परंपरा में उन दिनों ''शुक सप्तति'' जैसा ग्रंथ भी लिखा गया, जिसकी सत्तर कहानियों में एक सौदागर बार-बार व्यापार के लिए जाता है और अपना घर स्वामिमल तोते की जिम्मेदारी पर छोड़ जाता है । सौदागर मदनसेन की पत्नी कुमार्ग पर जाना चाहती है और तोता सत्तर रातों में, सत्तर कहानियाँ सुनाकर उसे कुमार्ग पर जाने से रोकता है ।[२४] संस्कृत परंपरा में एक और रचना है ''सिंहासन द्वात्रिंशिका'' जिसमें महाराज विक्रमादित्य की मृत्यु के उपरांत पृथ्वी के गर्भ में पड़े हुए सिंहासन को भोज द्वारा निकलवाने और उस पर बैठने के प्रयास ने बत्तीस पुतलियों द्वारा बत्तीस कहानियाँ सुनायी जाती हैं ।

स्पष्ट है कि संस्कृत परंपरा में उन दिनों एक से एक कथाओं की रचना की जा रही थी, जो न केवल मनोरंजन प्रधान थीं, बल्कि जिन्होंने जीवन को गहरे अर्थों में पारिभाषित करने की भी कोशिश की ।

### *(v) अपभ्रंश परंपरा :*

इन रचनाओं के अतिरिक्त आठवीं शताब्दी से लेकर पंद्रहवी-सोलहवीं शताब्दी तक मुक्तक और प्रबंध रूप में अपभ्रंश रचनाएँ लिखी गयी । जिनमें लोक कथाओं और लोक परंपराओं के बीच श्रृंगार और वीर रस से परिपूर्ण चरित्र सामने आये । इनमें अधिकांश ऐतिहासिक गाथाएँ हैं, जिनमें कल्पना का संपूर्ण रचनात्मक स्वरूप विद्यमान है । इन रचनाओं में स्वयंभू कृत ''पउमचरिउ'', 'पुष्पदंत कृत ''जसहरचरिउ'', हरिभद्र कृत ''सनलुमार चरिउ'' और हेमचंद्र कृत ''कुमारपाल चरित'' जैसी कृतियों का समावेश होता है । इन ग्रंथों की कथाओं में किसी न किसी राजा व सेठ की विदेश यात्रा, विवाह, युद्ध और वैराग्य की कहानियाँ मिलती है । इन कहानियों में कथा-कथन की

जो परंपरा है, वह जातक कथाओं से होकर आगे जाती हुई स्पष्ट दिखायी देती है ।[२५]

## *(vi) प्रेमाख्यानक काव्य परंपरा :*

अपभ्रंश साहित्य में लिखी गयी कथाएँ वास्तव में प्रेमाख्यानक कथाएँ हैं, जिनका परिष्कृत रूप संपूर्ण आध्यात्मिकता के साथ कुतुबन, मंझन, जायसी और नूरमुहम्मद जैसे सूफी कवियों पर काव्यात्मक रूप से लिखे गये प्रेमाख्यानक काव्यों में मिलता है । कुतुबन कृत ''मृगावती'' मंझन कृत ''मधुमालती'', जायसी कृत ''पद्मावती'' और नूर मुहम्मद कृत ''इन्द्रावती'' जैसी रचनाएँ प्रेम के रस से सराबोर हैं । ये रचनाएँ एक ओर जहाँ भाषा और शिल्प में अपभ्रंश साहित्य के बहुत निकट हैं, वहीं दूसरी ओर इनमें कथ्य के सूत्र भी अपभ्रंश से ही देखने को मिलते हैं ।[२६] इन कथाओं में प्रबंध का व्यवस्थित ढ़ंग से विस्तार है, जिसमें प्रेम की गहरी अनुभूति के द्वारा जीवन-जगत के आधारभूत तत्त्वों का गहराई से वर्णन है ।

## *(vii) हिन्दी उपन्यास परंपरा :*

हिन्दी उपन्यास आज अपने रूपाकार में जिस तरह संपूर्ण एवं प्रयोगों की विशिष्टता से सम्पन्न हैं, उसके पीछे सदियों की वह यात्रा शामिल है, जिसमें किसी न किसी रूप में सुदीर्घ कथा कहने की परंपरा थी । यह परंपरा न केवल भारत में बल्कि पाश्चात्य देशों में भी उतनी ही पुरानी रही है । पाश्चात्य देशों ने कथा-कथन की इस शैली को जितने सुनियोजित रूप में प्रस्तुत किया, उसका प्रभाव भारत में सबसे पहले अनूदित कृतियों के रूप में सामने आया । बाद में उसके समानांतर हिन्दी कथा-साहित्य एक सुनियोजित रूप में विकसित हुआ । ''आचार्य रामचंद्र शुक्ल इस विकास की यात्रा को रेखांकित करते हुए, इस पड़ाव तक पहुँचने को उपन्यास का द्वितीय उत्थान मानते हैं ।''[२७]

## ❀ हिन्दी कथा धारा :

हिन्दी में कथा–कथन की परंपरा संस्कृत के ग्रंथों से आयी । बाणभट्ट की ''कादम्बरी'' और दंड़ी के ''दशकुमार चरित'' ने तत्कालीन समाज पर इतना प्रभाव डाला कि कई आलोचक इन कृतियों को ही हिन्दी का पहला उपन्यास मानने को तैयार हो गये ।[२८] पर वास्तव में हिन्दी उपन्यास के प्रारंभिक काल में एक ओर जहाँ अंग्रेजी से उपन्यास अनूदित किये गये वहीं दूसरी ओर बंगला और उर्दू से भी औपन्यासिक कृतियों की धूम रही । हिन्दी में संस्कृत कथाओं के आधार पर लिखी गयी ''किस्सा तोता मैना'', ''सिंहासन बत्तीसी'' जैसी कथाएँ भी लोगों का मनोरंजन करती रहीं । वस्तुतः ये कथाएँ उपन्यास की धारा में एक विकास की तरह हैं । लेकिन साहित्यिक कथाओं का प्रारंभ मुंशी इंशाअल्लाखां की ''रानी केतकी की कहानी'' और सदल मिश्र के ''नासिकेतोपाख्यान'' होता है जो संवत् ६८६० के आसपास लिखी गयी ।[२६]

श्रीनिवासदास (संवत् १६०२–१६४४) के ''परीक्षा गुरु'' को हिन्दी का पहला उपन्यास मानते हैं । जिसमें हितोपदेश और पंचतंत्र की शैली में कथा कहीं गयी है । यह प्रवृत्ति पं. बालकृष्ण भट्ट (संवत् १६०१–१६७१) के ''सौ अजान एक सुजान'' में और भी धनीभूत दिखायी देती है । आगे चलकर राधाकृष्णदास (संवत् १६२२–१६६४) के ''निःसहाय हिन्दू'' को इस विकास क्रम की अगली कड़ी माना गया ।

आरंभिक उपन्यासों के उस दौर में लोकरुचि, तिलस्म और कौतूहलपूर्ण मोनरंजन का स्थान प्रमुख था । ये उपन्यास अधिकतर कल्पना प्रधान होते थे । इस धारा में बाबू देवकी नंदन खत्री के ''चन्द्रकान्ता'', ''चंद्रकान्ता सन्तति'' जैसे उपन्यासों ने पर्याप्त ख्याति पायी । ये उपन्यास ''अलिफ लैला'' जैसी कृतियों से प्रभावित रहे हैं और उनमें तिलस्म और ऐय्यारी का संसार बृहद रूप में सामने आया ।

हिन्दी उपन्यासों की दूसरी श्रेणी पंडित किशोरीलाल गोस्वामी (संवत् १६२२–१६८१) और अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध से होती है । हरिऔधजी ने ''ठेठ हिन्दी का ठाठ'' जैसी कृति दी, जिसकी बड़ी धूम रही । उस दौर

में पंडित लज्जाराम मेहता ने ''हिन्दू गृहस्थ'', ''आदर्श दंपत्ति'', ''बिगड़े का सुधार'' जैसी कृतियाँ दी, जिन्होंने कथा-धारा की परंपरा को आगे बढ़ाया ।

जिस समय बंगला से बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय के ''वंदे मातरम्'' और ''आनंदमठ'' की ख्याति हो रही थी, और हिन्दी में अनूदित होकर ये उपन्यास कीर्तिमान उपस्थित कर रहे थे । मुंशी प्रेमचंद (संवत् १९३७-१९९३) ने उपन्यास विधा में प्रवेश कर ''प्रेमाश्रम'', ''सेवासदन'', 'रंगभूमि'', 'कर्मभूमि'' जैसे उपन्यासों से हिन्दी कथाधारा की दिशा मोड़ दी । यह वह दौर था, जब जयशंकर प्रसाद जैसे महान रचनाकार ''कंकाल'' और ''तितली'' जैसे सांस्कृतिक उपन्यासों की रचना कर रहे थे, तो वृंदावनलाल वर्मा ''गढ़ कुंढार'', ''विराटा की पद्मिनी'' जैसे उपन्यासों से ऐतिहासिक दुनिया की सृष्टि कर उपन्यास को एक और रंग से परिपूर्ण कर रहे थे ।

इस तरह हिन्दी उपन्यास अपनी-अपनी कथा-धारा में वैदिक युग से निकलकर प्रेमचंद युग तक एक ऐसी परंपरा से सम्पन्न हुआ, जिसमें वेद-उपनिषद, पंचतंत्र, हितोपदेश, कादम्बरी, दशकुमार चरित की लम्बी उपलब्धियाँ हैं । भले ही ''परीक्षागुरु'' को हिन्दी का पहला उपन्यास माना गया हो, भले ही प्रेमचंद्र ने हिन्दी उपन्यास की पहचान स्थापित की हो, किन्तु पुराणकाल से चली आती हुई यह परंपरा कथा-कथन और सामाजिक सरोकारों से जिस तरह सम्पन्न है, उसके चलते हिन्दी उपन्यास की परंपरा में इस कथा धारा को विशिष्ट रूप से देखा जाता है ।

## ❀ हिन्दी उपन्यास : उद्भव और विकास :

''उपन्यास'' शब्द अपने शाब्दिक रूप में 'उप'+'न्यास' के योग से बना है, जिसका अर्थ है - समीप+आती । अर्थात् व्यक्ति के निकट जीवन-जगत की वह कृति, जिसमें परंपरा से प्राप्त मूल्यवान धरोहर का संपूर्ण अनुभव हो, उपन्यास कहलाता है ।[३०]

उपन्यास शब्द को अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने अलग-अलग ढ़ंग से परिभाषित किया है । अर्नेस्ट बेकर ने उपन्यास की परिभाषा देते हुए गद्यबद्ध कथानक के माध्यम से जीवन और समाज की व्याख्या का सर्वोत्तम साधन

बताया है । वैसे तो विश्वसाहित्य का प्रारंभ ही संभवतः कहानियों से ही हुआ है । ये कहानियाँ ही महाकाल युग से लेकर आज तक साहित्य का सबसे बड़ा आधार रही हैं । फिर भी उपन्यास को आधुनिक युग की देन मानना ही उचित होगा । साहित्य में गद्य का प्रयोग जीवन के यथार्थ चित्रण का द्योतक रहा है । साधारण बोलचाल की भाषा द्वारा लेखक के लिए पात्रों, समस्याओं तथा उसके जीवन की व्यापक पृष्ठभूमि प्रत्यक्ष संबंध स्थापित करना उपन्यास में अधिक सुविधाजनक है । जहाँ महाकाव्यों में कृत्रिमता और आदर्शोन्मुखी प्रवृत्ति दिखती है । आधुनिक उपन्यासकार जीवन की विश्रृंखलताओं का खुला चित्रण करने में अपनी सार्थकता सिद्ध करता है ।[३१]

इसी तरह डी.एच. लारेन्स का कथन है, ''उपन्यास जीवन की एक उज्जवल पुस्तक है । पुस्तकें जीवन नहीं है, वे सिर्फ हवा में थरथराहट पैदा करती हैं । लेकिन उपन्यास एक ऐसी थरथराहट है, जो समूचे जीवित मनुष्य को कंपा सकती है । कविता, दर्शन, विज्ञान तथा किसी भी पुस्तक की थरथराहट से कहीं जबरदस्त उपन्यास की थरथराहट है ।[३२] जोर्ज मूर के मतानुसार ''उपन्यास समकालीन जीवन का इतिहास है । हम जिस युग में जी रहे हैं, उपन्यास उसके सामाजिक परिवेश का पूर्ण और सहीं पुनर्निर्माण है ।''[३३]

उपन्यास के संदर्भ में यह सच है कि देशकाल का कोई ऐसा बिन्दु नहीं है, जहाँ से इसे परिभाषित रूप में देकर, उसके सिद्धांतों के अंतर्गत उपन्यास की रचना की गयी है । लेकिन समय के साथ यह जिस तरह विकसित होता गया और इसके सूत्र रचनाओं में निर्धारित होते गये, आलोचकों ने इसके रूप–स्वरूप के बारे में मान्यताएँ निर्धारित कर दी । हिन्दी शब्द सागर में प्रसादन, प्रसंग, संदर्भ, संकेत, नियम, विधान, कल्पित आख्यायिक कथा, धरोहर आदि शब्दों से उपन्यास का पर्याय देने का प्रयत्न है ।[३४] प्रख्यात कथाकार इलाचंद जोशी ने माना है कि उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में यह शब्द बंगाल से आयात हुआ । नॉवेल का अर्थ है नया और यह शब्द इटेलियन भाषा के ''नावेला'' शब्द से लिया गया है ।[३५] मुंशी प्रेमचंद ने इस बारे में कहा है – ''मैं उपन्यास को मानव–चरित्र का चित्र–मात्र समझता हूँ । मानव–चरित्र पर

प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है ।''[३६] कथाकार राजेन्द्र यादव का कहना है – ''उपन्यास मूलतः हिस्सेदारी की क्रिया है, सोश्यल एक्शन है । एक विशेष समय में आपसी संबंधों और व्यक्तित्वों को समझना और उनके बनते-बिगड़ते स्वरूप को विकसित होते हुए दिखाना ही उपन्यास है ।[३७]

उपन्यास के संबंध में एक ओर जहाँ इन रचनाकारों ने उसे परिभाषित करने की कोशिश की है, वहीं दूसरी ओर उसे आलोचकों ने भी कथ्य और शिल्प के संयम से बाँधकर, उसका स्वरूप निर्धारण करने का प्रयत्न किया है । बाबू गुलाबराय के मतानुसार ''उपन्यासकार विश्वामित्र की भ्रांति सृष्टि बनाता है, किन्तु ब्रह्मा की सृष्टि के नियमों से भी बँधा रहता है । उपन्यास में सुख-दुःख, प्रेम-ईर्ष्या, द्वेष, आशा-अभिलाषा, महत्त्वाकांक्षाओं, चरित्रों का उत्थान-पतन आदि जीवन के सभी दृश्यों का समावेश रहता है ।[३८] डॉ. सत्येन्द्र का कथन है कि – ''उपन्यास नये युग की नयी अभिव्यक्ति का नया रूप है । साहित्य के रूपों में उद्भव के संबंध में यह एक अखण्ड सत्य है कि वे व्यक्ति और युग के शाश्वत और सामयिक रसायन का परिणाम होते हैं ।[३९] इसी तरह डॉ. भगीरथ मिश्र कहते हैं – ''युग की गतिशील पृष्ठभूमि पर सहज शैली में स्वाभाविक जीवन की एक पूर्ण व्यापक झाँकी प्रस्तुत करनेवाला गद्य उपन्यास कहलाता है ।[४०]

इस तरह उपन्यास को ''परिक्षागुरु'' से लेकर अपने समसामयिक युग की कृतियों के आधार पर लेखकों और आलोचकों ने परिभाषित करते हुए उसके कथ्य और शिल्प की सीमाएँ निर्धारित की हैं । सभी रचनाकार इस बात पर सहमत हैं, जो देश-परिवेश के मूल्यगत प्रश्नों से परिपूर्ण होते हुए कथा और चरित्रों का वह संपूर्ण विकास दे सके, जिससे आगे पाठक की कोई अपेक्षा न रह जाए । पाठक रचनाकार द्वारा ही दी गयी परिधि में, रचना की संपूर्णता अनुभव करते हुए, उसके आस्वाद को संपूर्ण रूप से अनुभूत कर सके ।

## ❀ उपन्यास युग और स्वरूप :

हिन्दी में उपन्यास युग के आरंभ को आलोचकों ने अलग दो दृष्टियों से देखा परखा है । हिन्दी के प्रथम आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस उत्स और विकास को प्रथम उत्थान, द्वितीय उत्थान और तृतीय उत्थान कहकर संबोधित किया है । शुक्लजी ने प्रथम उत्थान में अन्य विधाओं को समाहित करते हुए परंपरा से चली आ रही भारतेन्दुयुगीन कृतियों को शामिल किया है । उन्होंने द्वितीय उत्थान में बंगला की, ''चतुचंचला'', ''मानमती'', ''नये बाबू'', ''देवरानी–जेठानी'', ''दो बहिन'', ''तीन पतोहू'' जैसी उन कृतियों को शामिल किया है, जो गोपालराम गहमरी आदि के द्वारा अनूदित की गयी थीं ।''[४१] शुक्लजी ने बाबू देवकीनन्दन खत्री के ''चंद्रकान्ता'' और ''चंद्रकान्ता संतति'' तथा किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यासों को द्वितीय उत्थान से पूर्व, प्रथम उत्थान में ही समाहित कर लिया है । शुक्लजी तृतीय उत्थान में प्रेमचंद और उनके युग के रचनाकारों को शामिल कर उपन्यास साहित्य का युग–निर्धारण करते हैं ।[४२] बाबू गुलाबराय ''कादम्बरी'' और ''दशकुमारचरित'' से आरंभ कर देवकीनंदन खत्री के उपन्यास के विकास की प्रथम श्रेणी मानते हैं । रायसाहब किशोरीलाल गोस्वामी से द्वितीय श्रेणी आरंभ करते हुए इलाचंद जोशी और यशपाल तक को इसके अंतर्गत रखने का प्रयास करते हैं ।[४३] आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी १९वीं शताब्दी से गद्य युग का आरंभ कर ऐतिहासिक धार्मिक और लोक परिप्रेक्ष्य में गद्य का विकास 'निर्धारत' करते हैं । द्विवेदीजी भारत में अंग्रेजी राज, वैष्णव परंपरा, ब्रजभाषा गद्य, स्वतंत्रगद्य, राजस्थानी गद्य, मैथिली गद्य से होकर खड़ीबोली तक पहुँचते हैं और मुंशी सदासुखलाल, ईंशा अल्लाखाँ, लल्लूलाल और सदलमिश्र से लेकर शिवप्रसाद सितारे हिन्द तक गद्य का सामूहिक विकास देखते हैं ।[४४] पुनः भारतेन्दु युग के उदय के साथ राष्ट्रीयता के परिप्रेक्ष्य में बंगला उपन्यासों के अनुवाद के साथ वे प्रेमचंद और प्रेमचंदयुग का आर्विभाव देखते हैं ।[४५] इसी तरह प्रख्यात आलोचक डॉ. नगेन्द्र रीतिकालीन गद्य के अंतर्गत ब्रजभाषा गद्य, खड़ीबोली गद्य, दक्खिनी

गद्य, राजस्थानी गद्य का समावेश करते हुए इस परंपरा में राष्ट्रीय आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में प्रेमचंद युग की अवधारणा करते हैं ।[४६]

आलोचकों ने उपन्यास साहित्य भारतेन्दु युग और प्रेमचंद युग के आधार पर भी जाँचने-परखने और उनके दिशा-निर्धारण की कोशिश की है । पर सच तो यह है कि भारतेन्दु और द्विवेदी युगीन प्रवृत्तियाँ जिस तरह काव्य के प्रति समर्पित रही हैं, उसके चलते उपन्यास परंपरा को उससे नहीं जोड़ा जाना चाहिए । उपन्यास का युग निर्धारण करना है तो उसके लिए प्रेमचंद मील के पत्थर प्रमाणित होते हैं और एक सीधा सा मापदण्ड तैयार हो जाता है । इस मापदण्ड के अंतर्गत हम हिन्दी उपन्यास के विकास को तीन सोपानों में बाँटकर देख सकते हैं – प्रेमचंद पूर्व युग, प्रेमचंद युग, प्रेमचंदोत्तर युग और इसके अंतर्गत संपूर्ण उपन्यास साहित्य की अवधारणा वैज्ञानिक ढ़ंग से की जा सकती है ।

## *(1) प्रेमचंद पूर्व युग :*

हिन्दी उपन्यास परंपरा का विकास वैदिक युग से लेकर भारतेन्दु युग (सन् १८५० ई. से १८८५ ई.) तक एक ओर जहाँ भारतीय कथा-कथन की परंपरा में विकसित होता रहा, वहीं दूसरी ओर अंग्रेजी, बंगला और उर्दू के प्रभाव से उसमे गति आती गयी । बंगला उपन्यासों का तो अनुवाद प्रस्तुत करने का एक दौर-सा चल पड़ा था, जिसे आचार्य रामचंद्र शुक्ल हिन्दी उपन्यास के विकास का प्रथम और द्वितीय उत्थान मानते हैं ।[४७] स्पष्ट है कि बंगला उपन्यासों की इस परंपरा ने हिन्दी रचनाकारों का ध्यान उपन्यास रचना की ओर बहुत अधिक खींचा । भारतेन्दु ने न केवल इन उपन्यासों का अनुवाद करवाया, बल्कि 'कादम्बरी' और दुर्गेशनन्दिनी को उन्होंने हिन्दी में पहली बार प्रस्तुत करने के लिए प्रोत्साहित किया । भातेन्दु ने ''एक कहानी, कुछ आपबीती कुछ जगबीती'' नाम से स्वयं भी एक उपन्यास की रचना की जिसके अंतर्गत वह अपना चरित्र लिखना चाहते थे, जो ''कवि-वचन-सुधा'' में क्रमशः प्रकाशित भी हुआ । किन्तु जीवन के अंतिम दिनों में इसकी रचना के लिए प्रस्तुत होने के कारण यह उपन्यास पूरा नहीं हो पाया ।[४८]

भारतेन्दुकालीन वह दौर नवजागरण का दौर था । एक ओर राष्ट्रीयता की लहर लोगों में तेजी से चल रही थी, तो दूसरी ओर समाज को विकसित करने की और चरित्रगत आदर्शो की सृष्टि की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी थीं । एक ओर जहाँ समाज को गढ़ने के लिए प्राचीन परंपरा के आदर्श थे, वहीं दूसरी ओर जीवन–जगत से संघर्षरत आदर्श नायकों की परिकल्पना भी उतनी ही तेजी से हो रही थी । इन आदर्शों की छाया में तत्कालीन युग में जो उपन्यास लिखे गये, उन्हें निम्नलिखित श्रेणियों में बाँटकर देखा गया –

*(i)* *सामाजिक उपन्यास*
*(ii)* *तिलस्मी–ऐयारी उपन्यास*
*(iii)* *जासूसी उपन्यास*
*(iv)* *ऐतिहासिक उपन्यास*

### *(i) सामाजिक उपन्यास :*

उपन्यास रचना का वह दौर राष्ट्रीयता के जिन भाँगों से जुड़ा था, उसमें एक ओर समाज की जर्जर हुई व्यवस्था थी, दूसरी ओर मिशिनरियों, आर्य समाज और ब्रह्मसमाज के सुधारवादी आंदोलनों की परंपरा में समाज को नूतन रूप से गढ़ने की प्रवृत्ति थी । इसी प्रवृत्ति का परिणाम यह हुआ कि हिन्दी के प्रथम माने–जाने वाले उपन्यास श्री निवासदास कृत ‘‘परीक्षा गुरु’’ एक ऐसे सेठ के लड़के के बिगडने और सुधरने की कहानी है, जो उस समय समाज में आदर्श रहा होगा ।

‘‘परीक्षा गुरु’’ के बाद बालकृष्ण–भट्ट कृत ‘‘नूतन ब्रह्मचारी’’, ‘‘सौ अजान एक सुजान’’, लोचन प्रसाद पांडे कृत ‘‘दो मित्र’’, लज्जाराम शर्मा कृत ‘‘आदर्श दंपति’’, गोपालराम गहमरी कृत ‘‘नये बाबू’’ जैसे उपन्यासों के द्वारा उस देशकाल में सुधारवादी प्रवृत्तियाँ स्थापित की जाने लगीं । जिन अन्य लेखकों ने इस आंदोलन को आगे बढ़ाया, उनमें अयोध्यासिंह उपाध्याय द्वारा ‘‘ढेढ़ हिन्दी का ठाठ’’ और राधाकृष्णदास कृत ‘‘निःसहाय हिन्दू’’ जैसी कृतियों और लेखकों का योगदान प्रमुख है ।

### *(ii) तिलस्मी–ऐयारी उपन्यास :*

राष्ट्रीयता की यह माँग केवल सामाजिक उपन्यासों से गतिशील रहने तक सीमित नहीं रही । उस युग में सन् १८६१ में बाबू–देवकीनंदन खत्री के 'चंद्रकान्ता'' एवं ''चंद्रकान्ता सन्तति'' जैसे उपन्यास प्रकाशित हुए । जिनके प्रकाशन के साथ ही लोगों में हिन्दी सीखने और उन उपन्यासों को पढ़ने की धूम–सी मच गयी । इन उपन्यासों का नायक तिलस्मी–ऐयारी की शक्तियों से भरपूर है वह अपार शक्ति सम्पन्न है । अपनी शक्तियों से वह किसी भी सीमा तक जाकर न केवल आदर्शों की सृष्टि कर सकता है, बल्कि छल–प्रपंच और तिलस्म की दुनिया से स्वयं को सहजता से मुक्त भी कर सकता है ।

खत्रीजी के ऐसे उपन्यासों ने मनोरंजन की वह दुनिया प्रदान की, जिसने उपन्यास लेखन, पठन–पाठन के धरातल पर एक आंदोलन सा स्थापित कर दिया ।

### *(iii) जासूसी उपन्यास :*

देवकीनंदन खत्री ने तिलस्मी दुनिया के उपन्यासों को जिस तरह से भारतीय जन–जीवन पर स्थापित कर दिया, उससे प्रभावित होकर गोपालराम गहमरी ने जासूसी उपन्यासों की रचना आरंभ की । ये उपन्यास वास्तव में यूरोप और इंग्लैन्ड की देन थे । स्काटलैंड यार्ड में पुलिस और जासूसों के साहस, निर्भयता तथा बुद्धिचातुरी को लेकर उन दिनों इंग्लैंन्ड में जासूसी उपन्यासों की भरमार सी हो चली थी । १८वीं शताब्दी के उतरार्ध में डाकुओं के दमन के लिए सरकार और पुलिस को जिस तरह जासूसों की सहायता ली, उससे प्रभावित होकर एडगर एलनपो और सर आर्थर कानन डॉयल जैसे लेखकों ने ढेरो जासूसी उपन्यासों की रचना की ।[४६] उन उपन्यासों के प्रभाव में गहमरीजी के उपन्यास वास्तव में जासूसी नायकों द्वारा एक अलग आदर्श की सृष्टि के प्रति उन्मुख हुए, जिन्हें हिन्दी उपन्यास यात्रा में महत्त्वपूर्ण ढ़ंग से देखा गया ।

### *(iv) ऐतिहासिक उपन्यास :*

भारत अपने ऐतिहासिक ऐश्वर्य से जिस तरह आक्रांत रहा है, स्पष्ट है कि उसकी छाया साहित्य में महत्त्वपूर्ण रूप से स्थान ग्रहण करे । विशेषकर सुधारवाद के उस दौर में, जहाँ आदर्शों और आदर्श नायकों की दुनिया की निरंतर खोज की जा रही थी । हमारे इतिहास–नायक ऐसी क्षमताओं से न केवल सम्पन्न रहे हैं, बल्कि उनके पीछे समय–संगत प्रामाणिकता स्वयंसिद्ध रही है । उस दौर में किशोरीलाल गोस्वामी ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण काम किया । परिणाम स्वरूप उन्होंने ''लवंगलता'', ''कुसुम कुमारी'', ''राजकुमारी'', ''तारा'', ''चपला'' जैसे महत्त्वपूर्ण उपन्यास दिये । इसके अतिरिक्त बलदेव प्रसाद मिश्र, गंगाप्रसाद गुप्त, जयरामदास गुप्त, बलभद्रसिंह आदि लेखकों ने उस देशकाल में औपन्यासिक रचना में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया ।[५०]

इन उपन्यासों के माध्यम से लेखक उस सांस्कृतिक विस्तार में लौट रहे थे, जिसमें वर्तमान के परे जाकर व्यक्ति अपनी जड़ों से अपने लिए जीवन की खोज करता है । हमारा देश सदियों से संस्कृति प्रधान देश रहा है और जब भी हमें संस्कृति की ओर देखना पड़ा है, हमने पुरातन की गहरी पहचान की है । यही कारण है कि हमारे लेखक रचनाशीलता के लिए बार–बार इतिहास में लौटे हैं और उन्होंने उन चरित्रों को एक बार पुनः परखने का प्रयास किया है, जो सदियों के देशकाल में भी अपनी चमक बनाए हुए हैं । यही कारण है कि लेखकों के लिए मनुष्य का वर्तमान जितना सघन होता गया है, यह इतिहास हमेशा उसका अनुगामी रहा है ।

## *(2) प्रेमचंद युग :*

हिन्दी उपन्यासों का उपरोक्त दौर सुधारवादी आंदोलनों के अतिरंजनावाद से संपूर्ण रूप से प्रभावित था, और इसका परिणाम यह हुआ कि उस दौर को परंपरा में महत्त्वपूर्ण मानते हुए विकास का एक आवश्यक सोपान माना गया । पर हिन्दी उपन्यास प्रेमचंद के साथ पहली बार जिस तरह अस्तित्व और पहचान में आया, उसके परिणाम स्वरूप आचार्य रामचंद्र शुक्ल एक ओर जहाँ इसे उपन्यास का द्वितीय उत्थान मानते हैं ।[५१] वहीं डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी

उन्हें वर्तमान का सबसे बड़ा मानवधर्मी व्यक्तित्व मानते है ।[५२] डॉ. नगेन्द्र जैसे आलोचक प्रेमचंद्र को विभिन्न मोड़ों से गुजरा हुआ उपन्यासकार कहकर उनके उपन्यास के दीर्घकाय कथा संसार का उद्घोष करते हैं ।[५३]

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है – "प्रेमचंद ने अतीत गौरव का पुराना राग नहीं गाया और न भविष्य की हैरत अंग्रेज कल्पना की । वे ईमानदारी के साथ अपनी वर्तमान अवस्था का विश्लेषण करते रहे । उन्होंने देखा कि बंधन भीतर का है, बाहर का नहीं । एक बार अगर ये किसान, ये गरीब यह अनुभव कर सके कि संसार की कोई भी शक्ति उन्हें दबा नहीं पा सकती तो वे निश्चय ही अजेय हो जायेंगे ।"[५४]

स्पष्ट है कि प्रेमचंद ने अपने समय की अनुगूंज को पात्रों के जीवित संसार से जोड़कर उपन्यास रचना की, जो दुनिया उपस्थित की, उसमें उपन्यास को हिन्दी साहित्य के धरातल पर कालजयी पहचान देकर, विश्वसाहित्य में स्थापित कर दिया । उस समय में प्रेमचंद के आसपास और जो रचनाकार लेखनरत थे, उन्हें प्रेमचंद युग के अंतर्गत समाहित किया जा सकता है । उस समय की विकास रचना को निम्नलिखित प्रवृत्तियों में बाँटकर देखा जा सकता है –

*(i) सामाजिक उपन्यास*
*(ii) ऐतिहासिक उपन्यास :*

### *(i) सामाजिक उपन्यास :*

प्रेमचंद का आर्विभाव बीसवीं शती के आरंभ में हुआ । यह वह समय था जब देश में चारों ओर भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन और "भारत छोड़ो" आंदोलन की धूम थी । प्रेमचंद का साहित्य उर्दू में जनता के लिए निषिद्ध कर दिया गया था, और वह "नवाबराय" से हिन्दी में प्रेमचंद होकर पाठकों के बीच अपना समय सत्य स्थापित करने में लगे हुए थे । प्रेमचंद ने गांधीवादी दृष्टि से समाज को देखने और परखने का काम किया । उन्होंने गांधीवादी सिद्धांतों के आधार पर समाज की हर विकृति को व्यवस्थित और आंदोलित करने का प्रयास किया । राष्ट्रीय आंदोलन के उस दौर में प्रेमचंद की दृष्टि

भी आम–जनता की तरह गांधीवाद पर थी, और गांधीवाद ही इस देश के किसानों, मजदूरों के लिए एकमात्र आदर्श था । प्रेमचंद ने कहा था – ''आनेवाला जमाना अब किसानों और मजदूरों का है । दुनिया की रफ्तार इसका साफ सबूत दे रही है । हिन्दुस्तान इस हवा से बेअसर नहीं रह सका । हिमालय की चोटियाँ उसे इस हमले से बचा नहीं सकती । जल्द या देर से, शायद जल्द ही हम जनता को केवल मुखर ही नहीं, अपने अधिकारों की माँग करनेवाले के रूप में देखेंगे और तब वह आपकी किस्मतों की मालिक होगी । तब आपको अपनी बेइन्साफियाँ याद आयेंगी और तब आप हाथ मलकर रह जायेंगे ।''[५५]

अपनी इस आस्था के चलते प्रेमचंद ने तत्कालीन सामाजिकता की नींव गढ़ने की कोशिश की, और अपने प्रथम उपन्यास ''देवस्थान–रहस्य'' (उर्दू में ''असरादे मआबिद'') से सन् १९०३ में आरंभ कर ''प्रेमा'' (१९०४), ''वरदान'' (१९१२), ''सेवासदन'' (१९१८), ''प्रेमाश्रम'' (१९२२), ''रंगभूमि'' (१९२५), ''कायाकल्प'' (१९२७), ''निर्मला'' (१९२७), ''गबन'' (१९३१), ''कर्मभूमि'' (१९३२) जैसे उपन्यासों से होते हुए ''गोदान'' (१९३६) और अपने अधूरे उपन्यास ''मंगलसूत्र'' तक की यात्रा की । इन उपन्यासों में भारतीय किसानों की दुनिया थी, मजदूरों का संसार था, मध्यवर्ग का जीवन था, विधवाएँ और सुधारवादी लोग थे, सरकार के आला–अफसर थे, जिनसे होकर यह समाज अपने आमूल रूप में संपूर्ण होता था ।

किन्तु लेखन के दूसरे सिरे पर प्रेमचंद ने पाया कि राष्ट्रीय आंदोलन में सुधार का छद्म पहनकर वे ही लोग आगे हैं, जो आज तक जनता के शोषक रहें हैं । उन्हें आशंका हुई कि यहीं लोग आजादी के बाद इस देश के पुनः कर्णधार बन जायेंगे । इसलिए प्रेमचंद ने उस तथाकथित आंदोलन के प्रति अपना विरोध प्रदर्शित किया । उनका कहना था – ''हमारे स्वराज के नेताओं में वकील और जमींदार ही सबसे ज्यादा हैं । हमारी कोन्सिलों में भी यहीं दो समुदाय आगे आगे दिखायी पड़ते हैं । आप स्वराज्य की हांक लगाईए, सेल्फ गर्वमेन्ट, जनता को इन चीजों से कोई मतलब नहीं है । कोई कारण नहीं है

कि वह दूसरे देशों के हाकिमों के मुकाबले में आपकी हुकूमत को ज्यादा पसंद करें ।''[५६]

ऐसे में प्रेमचंद ने मुड़कर रुसी क्रान्ति की ओर देखा । उन्होंने मार्क्सवाद की खुलकर वकालत की । उनका कहना था, ''मजदूरों और किसानों की जिन्दगी बदले, सँवरे, उनके कष्टों का अंत हो, यानि उनके शोषण का अंत हो, और चूँकि सोवियत–जन–क्रान्ति ने इस दिशा में एक एतिहासिक कदम उठाया है । इसलिए यह आदमी आगे बढ़कर उसका स्वागत–अभिनंदन कर रहा है ।[५७] इस धारणा के तहत प्रेमचंद ''कर्मभूमि'' और ''गोदान'' की रचना करते हुए गांधीवादी सुधारों के विपरीत अपने हक के लिए एक संपूर्ण संघर्षरत समाज की परिकल्पना करते हैं ।

प्रेमचंद अपने देशकाल में जिस तरह जनता पर छा गये थे, उसके कारण उस युग में बहुत से रचनाकार सामाजिक आदर्शों और आंदोलनों को लेकर रचनागत हुए । उन्होंने प्रेमचंद की तरह ही अपने देशकाल को चित्रित किया । उसका परिणाम यह हुआ कि रचनाकारों में प्रेमचंद स्कूल स्थापित हो गया । इन रचनाकारों में चंडी प्रसाद हृदयेश (मनोरमा, मंगलप्रभात), विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक (माँ, भिखारिणी), चतुरसेन शास्त्री (हृदय की परख, व्यभिचार, हृदय की प्यास, अमर अभिलाषा, आत्मदाह), श्रृषभचरण जैन (भाई, मास्टर साहब, वैश्यापुत्र, सत्याग्रह, मंदिरदीप, रहस्यमयी, दिल्ली का व्यभिचार, तीन इक्के), भगवती प्रसाद वाजपेयी (मीठी चुटकी, अनाथ पत्नी, प्रेमपथ, पतिता की साधना, त्यागमयी, निमंत्रण), पांडेय बेचन शर्मा उग्र (दिल्ली का दलाल, चंद हसीनों के खुतूत, बुधुआ की बेटी, सरकार तुम्हारी आंखों में ) जैसे महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर थे, जो उस समय और समाज के संदर्भों को बड़ी तेजी से रच रहे थे ।

जिस देशकाल में प्रेमचंद अपने समय के मजदूर–किसानों के जीवन–संघर्ष से लड़ रहे थे, उस युग में जयशंकर प्रसाद जैसे रचनाकार भी थे, जो भारतीय इतिहास की परिक्रमा कर सांस्कृतिक युग की वापसी के प्रति पूरी तरह तन्मय थे । वहीं दूसरी ओर नाटकों की रचना से अपने काव्यात्मक

संसार को अपेक्षाकृत और सम्पन्न कर रहे थे । ये दोनों विधाएँ निश्चित ही अभिजात्य वर्ग से संबंधित थीं । राष्ट्रीयता ने उपन्यास–रचनाकार को भी प्रभावित किया । परिणामतः उन्होंने काशी, प्रयाग, हरिद्वार, मथुरा और वृंदावन जैसे तीर्थ स्थानों को केन्द्र बनाकर ब्रह्मानंद में डूबी हुई भक्तमंडली के यौवन प्रेम और नैसर्गिक भूख को केन्द्र में रखकर ''कंकाल'' जैसे उपन्यास की रचना की । उन्होंने प्रेम के आदर्श स्वरूप और आत्मसंयम को दर्शाते हुए जमींदार द्वारा कर्मचारियों के शोषण, ग्राम संगठन, ग्राम सुधार पर आधारित ''तितली'' जैसे उपन्यास की रचना की । ''विषय की दृष्टि से प्रसाद ने इस उपन्यास में प्रेमचंद का मार्ग अपनाया ।''[५६] स्पष्ट है कि प्रेमचंद ने उस समूचे युग को अपने लेखकीय आंदोलन से प्रभावित किया । यहाँ तक कि प्रसाद जैसे रचनाकार भी उस प्रभाव से अछूते नहीं रह सके ।

### *(ii) ऐतिहासिक उपन्यास :*

जिस समय प्रेमचंद समकालीन मनुष्य के भीतर अपने देशकाल की पहचान ढूँढ़ रहे थे, लेखकों का एक संप्रदाय उस देशकाल को इतिहास की धरोहर से सम्पन्न करने में लगा हुआ था । इन लेखकों में आचार्य चतुरसेन शास्त्री और वृंदावनलाल वर्मा के नाम प्रमुख हैं । शास्त्रीजी ने हृदय की परख, व्यभिचार, हृदय की प्यास, अमर–अभिलाषा, आत्मदाह, वैशाली की नगरवधू, जैसे उपन्यास लिखकर भारतीय संस्कृति के इतिहास को वर्तमान के संदर्भ में परखने का प्रयत्न किया । शास्त्रीजी का विषय भी तत्कालीन भारत की विधवाएँ और धर्म रक्षा में लगे लोगों का चरित्र सुधार ही था । उन्होंने ''वैशाली की नगर वधू में मगध के राजगृह और वैशाली को केन्द्र बनाकर राजा–प्रजा के अंर्तसंबंध, सेना, संस्कृति, मनोरंजन की ओट में आर्यो की संपूर्ण वर्ण–व्यवस्था का ऐसा महत्त्वपूर्ण वर्णन किया है, जो भारतीय जीवन के आदि, अंत को अपने में समाहित किये हुए है । ''वैशाली की नगरवधू'' के उपरांत शास्त्रीजी ने ''पूर्णाहुति', ''रक्त की प्यास'', ''नर्मेध'', ''बहते आंसू'', ''अपराजिता'', ''मंदिर की नर्तकी'', ''दो किनारे', ''वयं रक्षामः'', ''सोमनाथ'', ''आलमगीर''

जैसे कई उपन्यास लिखे । जिन्होंने उस देशकाल में भारतीय धरोहर को समेटने का एक बड़ा काम किया ।

प्रेमचंद युग में ऐतिहासिक उपन्यासों के अनन्य लेखक वृंदावनलाल वर्मा ने लगभग दो दर्जन ऐतिहासिक उपन्यास लिखे, जिनमें ''गढ़कुंड़ार'', ''विराट की पद्मिनी'', ''झाँसी की रानी'', ''कचनार'', ''माधवजी सिंधिया'', ''मृगनयनी'', ''अहल्याबाई'' आदि उस देशकाल की बहुत बड़ी सांस्कृतिक धरोहर हैं । ''मृगनयनी'' हो या ''झाँसी की रानी'' इन उपन्यासों के द्वारा वर्माजी उस देश काल में ऐतिहासिक संदर्भो से एक ओर जहाँ राष्ट्रीयता की सृष्टि कर रहे थे, वहीं दूसरी ओर वे उसे समाज के समकालीन संदर्भो की परंपरा में रखकर अपने सोये हुए देशकाल को निरंतर जाग्रत करने में प्रयत्नशील थे ।

केवल इतिहास की परिधि में जाकर उसके तथ्यों और सत्यों के पुनर्लेखन से सीमाओं में बँधने के कारण यह नहीं कहा जा सकता कि ऐतिहासिक दृष्टियाँ प्रेमचंद स्कूल से कहीं अलग हो पायी । वास्तव में वह युग सांस्कृतिक उथल-पुथल के जिस बिन्दु पर था, वहाँ प्रेमचंद की तरह ही 'प्रसाद स्कूल' भी स्थापित था ।[६०] किन्तु हमेशा से इतिहास की परिधि में विचरण करनेवाले प्रसाद जी ने भी एक ओर जहाँ उपन्यास लेखन के लिए प्रेमचंद के निकट जाकर कल्पना का सहारा लिया, वहीं उस युग में ये लेखक इतिहास की ओर अग्रसर होकर प्रसाद-स्कूल के निकट जा पहुँचे । वास्तव में प्रसादजी के सांस्कृतिक अभियान के विरुद्ध यह प्रेमचंद स्कूल ही था, जो उस समय भारतीयता के शीर्ष पर उपन्यास को स्थापित कर रहा था ।

## *(3) प्रेमचंदोत्तर युग :*

प्रेमचंद युग ने हिन्दी में उपन्यास साहित्य को न केवल बृहद रूप में स्थापित कर दिया, बल्कि उसने आगामी उपन्यासकारों के लिए एक ऐसा द्वार खोल दिया, जिस पर आगे बढ़कर वे समर्थ औपन्यासिक परंपरा की रचना कर सकते थे । परिस्थितियाँ बदल रहीं थीं । दूसरा महायुद्ध हो चुका था और देश में ''भारत छोड़ो'' आंदोलन अपने अंतिम दौर में था । विशेषकर दूसरे महायुद्ध ने सारी दुनिया के रागात्मक संसार को इतना झिंझोड़कर रख दिया था

कि उसके प्रभाव में विश्व साहित्य अपनी परंपराओं से खंड़ित होकर, रचना के नये मापदंड़ों और नयी संवेदनाओं की ओर मुड़ गया था । ऐसे में हिन्दी उपन्यासकारों ने उपन्यास के जो मार्ग प्रशस्त किये उन्हें निम्नलिखित धरातलों पर देखा–परखा जा सकता हैं

*(i)* *मनोवैज्ञानिक उपन्यास*
*(ii)* *सामाजिक उपन्यास*
*(iii)* *प्रयोगशील उपन्यास*
*(iv)* *ग्रामीण और आँचलिक उपन्यास*
*(v)* *ऐतिहासिक उपन्यास*

## *(i) मनोवैज्ञानिक उपन्यास :*

दूसरे महायुद्ध ने दुनिया को जिस तरह प्रभावित किया, उससे मनुष्य से मनुष्य के संबंध नितांत आंतरिक हो चले थे । वह उस टूटी हुई मनःस्थिति में वासनाओं को ही अंतिम सत्य मानने लगा था । एक ओर उसकी आंतरिकता सारी दुनिया के शीर्ष पर चढ़कर बोल रही थी, तो दूसरी ओर वह वासनिक धरातल पर नितांत स्थूल होकर संसार को देख रहा था । ऐसे में हमारे कई भारतीय लेखक फ्रायड़ के मनोविज्ञान का सहारा लेकर मनुष्य के अंतर्तम को विश्लेषित करने में लगे हुए थे । इन उपन्यासकारों में इलाचंद जोशी ने ‘‘सन्यासी’’, ‘‘पर्दे की रानी’’, ‘‘प्रेत और छाया’’, ‘‘निर्वासित’’, ‘‘लज्जा’’, ‘‘सुबह के भूले’’, ‘‘मुक्तिपथ’’, ‘‘जिप्सी’’, ‘‘जहाज का पंछी’’, जैसे ढेरों उपन्यास दिये, जिनमें चरित्रों को प्रधानता देते हुए, उनके अंतर्मन के धरातल पर उन्हें देखा–परखा गया ।

इसी तरह जैनेन्द्रकुमार ने ‘‘परख’’, ‘‘तपोभूमि’’, ‘‘सुनीता’’, ‘‘त्यागपत्र’’, ‘‘कल्याणी’’, ‘‘सुखदा’’, ‘‘विवर्त’’, ‘‘व्यतीत’’ जैसे उपन्यासों में नारी के अंर्तकौशल को मानवीय धरातल पर सूक्ष्म से सूक्ष्म ढ़ंग से देखने का काम किया । जैनेन्द्र ने प्रेम को नैसर्गिक और स्वच्छ भावना की अभिव्यक्ति माना है ।’’[६१] स्पष्ट है कि ये लेखक मनोवैज्ञानिक दुनिया में सत्य का नया अन्वेषण कर रहे थे ।

## *(ii) सामाजिक उपन्यास :*

एक ओर जहाँ उस युग में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का प्रचलन हुआ, वहीं दूसरी ओर सामाजिक उपन्यास निरंतर नूतन संदर्भों में अपनी दृष्टि खोजते रहे । इन उपन्यासकारों में यशपाल, रांगेय राघव, उपेन्द्रनाथ अश्क, भगवतीचरण वर्मा अैर अमृतलाल नागर जैसे रचनाकार थे । यशपाल ने ''दादा कामरेड़'', ''देशद्रोही'', ''दिव्या'', ''मनुष्य के रूप'', ''अमिता'', ''झूठा-सच'' जैसे उपन्यासों में उस देशकाल में क्रांतिकारी स्थितियों को व्यक्त करते रहे । वास्तव में इन उपन्यासों के पीछे एक ओर यशपाल का स्वयं का क्रांतिकारी चरित्र था, तो दूसरी ओर मार्क्सवाद के प्रति गहरी आस्था ।

इसी तरह रांगेय राघव ने ''घरौंदा'', ''मुर्दो का टीला'', ''विषाद मठ'', ''चीवर'', ''सीधा सादा रास्ता'', ''हजूर'', ''कब तक पुकारुं'' आदि उपन्यास लिखकर एक बार पुनः सभ्यता की उस परिघि की ओर ध्यान आकर्षित किया, जिसमें मोहेंन्जोदडों है, सम्राट हर्षवर्धन का इतिहास है, और सांस्कृतिक विरासत का वर्तमान के संदर्भ में गहरा उपयोग है ।

प्रेमचंद का सूक्ष्म निरीक्षण और जीवनानुभव लेकर उपेन्द्रनाथ अश्क ने छोटे-छोटे अनुभवों और संस्कारों के बल पर मध्यमवर्ग को अपना विषय बनाया । अश्क ने अधिकतर इन उपन्यासों में ''सितारों के खेल'', ''गर्म राख'', ''गिरती दीवारें'', ''शहर में घूमता आईना'', ''निमिषा'' आदि प्रमुख हैं ।

इसी तरह भगवतीचरण वर्मा ने ''टेढ़े-मेढ़े रास्ते'', ''चित्रलेखा'', ''सबहिं नचावत राम गोसाई'' जैसे उपन्यासों में जहाँ सांस्कृतिक युग की वापसी को अपने उपन्यास लेखन का आधार बनाया है तो अमृतलाल नागर ने ''नवाबी मसनद'', ''सेठ बांकेमल'', ''बूंद और समृद्र'', ''मानस का हंस'' जैसे उपन्यासों के द्वारा इतिहास और संस्कृति की पुनर्रचना की है ।

## (iii) प्रयोगशील उपन्यास :

सामाजिक उपन्यासों की उस धारा में परंपरा को तोड़ते हुए अज्ञेय जैसे उपन्यासकार रचनारत हुए । उन्होंने ''शेखर एक जीवनी'', ''नदी के द्वीप'', ''अपने-अपने अजनबी'' जैसे उपन्यास दिये । इन उपन्यासों में जैसा कि नाम से ही प्रचलित है । उन्होंने कहीं जीवन का उपयोग किया है, तो कहीं डायरी का उपयोग करते हुए अपने पात्रों का संसार निर्मित किया । इन उपन्यासों में अज्ञेय का स्वयं का क्रांतिकारी चरित्र है, तो देश-विदेश के अंतर्राष्ट्रीय धरातल पर खंडित होते मनुष्य का आंतरिक विद्रोह भी ।

इसी तरह धर्मवीर भारती ने ''सूरज का सातवाँ घोड़ा'' जैसे उपन्यास में निठल्ले मालिक मुल्ला द्वारा गाय के माध्यम से एक ऐसी लड़की की कहानी कही है, जो भारतीयता में छूटकर रह गयी है और जिसका परिणाम भी आम भारतीय नारी की तरह विद्रूपता में होता है ।

## (iv) ग्रामीण उपन्यास और आँचलिक उपन्यास :

किस समय ये सारे उपन्यासकार भारतीय जन-जीवन को विविध रंगों से चित्रित कर रहे थे, नागार्जुन और फणिश्वरनाथ रेणु जैसे उपन्यासकार एक बार फिर खेतों और खलिहानों में लौटकर प्रेमचंद की परंपरा को पुनर्जीवित कर रहे थे । नागार्जुन ने ''रतिनाथ की चाची'', ''बलचनमा'', ''बाबा बेटसरनाथ'' जैसे उपन्यास दिये, तो रेणु ने ''मैला आँचल'', ''परती परिकथा'' के माध्यम से ''आजाद हिन्दुस्तान'' में भूमि समस्या को निरुपित करते हुए, भाषाई धरातल पर आँचलिक रचना के ऐसे मुहावरे दिये, जो ग्रामीण दुनिया को चित्रात्मक ढ़ंग से दृश्यमान कर देते थे । इस रूप में रेणु प्रेमचंद से एक कदम आगे बढ़कर रचनारत दिखायी देते हैं ।

## (v) ऐतिहासिक उपन्यास :

उपन्यासों के उस विविध प्रयोग के दौर में हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे उपन्यासकार एक बार फिर इतिहास को लेकर प्रामाणिक ढ़ंग से सामने आते हैं । द्विवेदीजी ने ''कादम्बरी'' और ''हर्षचरित'' के प्रणेता बाणभट्ट को नायक

बनाकर "बाणभट्ट की आत्मकथा" और "चारुचंद्र लेख" जैसे उपन्यास दिये। द्विवेदीजी ने बाणभट्ट को उन सारे पौराणिक, ऐतिहासिक संदर्भो से जोड़कर कथा कहने की कोशिश की है, जो उस देशकाल के साक्ष्यों से सम्मत और प्रामाणिक हो। साथ ही बाणभट्ट का वह चरित्र भी व्यक्त हुआ है, जो काल्पनिक होते हुए भी उसकी देशकाल सम्मत दुनिया के संपूर्ण अनुरूप हो।

## ❀ उपन्यास के तत्त्व :

आलोचकों ने उपन्यास के तत्त्वों पर विचार करते हुए कथावस्तु, पात्र और चरित्र–चित्रण, कथोपकथन, विचार और उद्देश्य, रस और भाव एवं शैली जैसे तत्त्वों की अवधारणा की है। इन तत्त्वों में भी बाबू गुलाबराय ने कथानक में गुण, मौलिकता, संभवता, संगठितता, रोचकता का समावेश किया है। इसी तरह चरित्र–चित्रण में चरित्र के महत्त्व, प्रकार, चित्रण की विधियाँ निरुपित की हैं। श्री राय ने वातावरण की आवश्यकता पर बल दिया है। उन्होंने उद्देश्य के अंतर्गत समसामयिक समस्याओं, आदर्श और यथार्थ, तथा शैली में गुण का समावेश किया है।[६२] इसी तरह डॉ. श्रीनिवास श्रीवास्तव ने वस्तु, चरित्र–चित्रण, कथोपकथन और देशकाल पर जोर देते हुए जीवन की व्याख्या, उपन्यास के सत्य और नीति की ओर ध्यान केन्द्रित किया है।[६३] डॉ. सत्यदेव चौधरी ने इन्हीं तत्त्वों पर बल देते हुए उपन्यास को रचनाकार के दायित्व पर अधिक निर्भर किया है।"[६४] डॉ. त्रिभुवन सिंह ने उपन्यास को अर्थवत्ता प्रदान करने के लिए भाषा पर ध्यान केन्द्रित किया है।[६५] तो डॉ. भगीरथ मिश्र ने चरित्रों को वास्तविक पृष्ठभूमि में चित्रित करने और विश्वसनीयता पैदा करने पर बल दिया है।"[६६] प्रख्यात आलोचक एवं "बाणभट्ट की आत्मकथा" तथा "अनाम दास का पोथा" जैसे उपन्यासों के लेखक हजारीप्रसाद द्विवेदी ने उपन्यास प्रक्रिया में शैली के महत्त्व को शीर्ष पर स्थान दिया है। उनका कहना है कि लेखक के भीतर अभिव्यंजना चातुरी होनी चाहिए। फिर वह उपन्यास में चाहे जैसी भी शैली का प्रयोग करे। उसकी

शैली डायरी, पत्र, इन्टरव्यू, संवाद अथवा आत्मकथा के रूप में भी हो सकती है ।''[६७]

किन्तु यह भी सच है कि आज के लेखक उपन्यास के लिए बंधनों से मुक्त है । उसके सामने प्राचीनता के सारे मापदंड अर्थहीन हैं । पर इतना तो है ही कि पाठक उससे एक ऐसे कथानक की माँग करता है जो देश–दुनिया का न केवल निजी संसार हो, बल्कि उसकी संपूर्ण विश्वसनीयता भी हो । वह यह भी मांग करता है कि कथानक एक ऐसे कौशल से बुना गया हो, जो जिज्ञासा पैदा करे और उसमें हर चरित्र आवश्यकतानुसार पूर्णता की अभिव्यक्ति करता हो और सबसे बड़ी बात यह है कि उपन्यास के पीछे एक सार्थक उद्‌देश्य निहित हो । अपने अनेक कथा–प्रयोगों के बीच भी हमारे समकालीन लेखकों ने इन स्थितियों को लगातार जीवित रखा है । प्राचीन युग से आज तक निम्नलिखित सर्वस्वीकृत तत्त्वों पर दृष्टि डाल लेना उचित होगा ।

## *(i) कथावस्तु :*

कथावस्तु एक एसा साधन है, जिसके माध्यम से लेखक अपने देशकाल की संवेदना को जनता के बीच संप्रेषित करवाता है । अतः यह बहुत आवश्यक हो जाता है कि लेखक अपनी रचना के लिए एक ऐसी कथा–भूमि का चुनाव करे, जो पूर्णतः प्रामाणिक हो, और उसके पीछे अविश्वसनीयता की किंचित आशंका न हो । कथा–प्रसंग जीवन से उठाया गया हो और उसमें जीवन का पर्याप्त विस्तार और उसकी पहचान समाहित हो ।

कथावस्तु के संबंध में यह भी सच है कि वह एक सिरे से आरंभ होकर क्रमबद्ध ढ़ंग से विकसित होती हुई, एक ऐसे मुकाम पर पहुँचे, जहाँ लेखक का उद्‌देश्य निहित हो । इस विकास में कहानी बहुत रोचक होनी चाहिए । यदि कथा रोचक नहीं होगी तो पाठक लेखक के निहितार्थ तक पहुँच नहीं पायेगा और उपन्यास को बीच में ही छोड़कर उसके प्रति अपनी अरुचि व्यक्त कर देगा । डॉ. शिवनारायण श्रीवास्तव वस्तु की दृष्टि से दो भेद करते हुए कहते हैं, ''कथावस्तु की दृष्टि से उपन्यासों के दो भेद किये जाते हैं – एक तो जिनकी कथावस्तु असंबद्ध या शिथिल होती है और दूसरा वे

जिनकी कथावस्तु संबंध या सुगठित । पहले में बहुत सी घटनाओं का घटाटोप मात्र होता है और दूसरे में असंबद्ध कथानक कथा–सौष्ठव को समाप्त कर देता है ।[६८]

पर वास्तव में ये दोनों प्रकार के कथानक पाठकों के अलग–अलग ढ़ंग से उपन्यास की पूर्णता में ले जाते हैं । कथानक का घटाटोप पाठक को बहुत सीधे–सादे ढ़ंग से स्थितियों से गुजारकर लेखकीय उद्देश्य की यात्रा कराता है, तो असंबद्ध कथानक उसे कथा के जरूरी विस्तार से रोकता हुआ एक कलात्मक रचना से निरंतर बांधे रखता है । जो भी हो यह सच है कि तात्त्विक दृष्टि से रचनाकार के लिए कथावस्तु सबसे शीर्ष पर स्थापित साधन है ।

## (ii) पात्र एवं चरित्र :

कथा के बाद उपन्यास में सबसे अधिक महत्त्व चरित्र का है । यह आवश्यक है कि चरित्र सहज, सजीव और स्वाभाविक हो, और न तो वे अलौकिक हो । वे हमारे जीवन से उठाये गये ऐसे लोगों के प्रतिनिधि हों, जिनके प्रति हमारे भीतर आवेगों का संसार निर्मित हो सकें । और वे हमारे हृदय के भीतर स्मरणीय रूप में चित्रित हो जाए । यह संभव है कि कथा पढ़ने के बाद हम घटनाओं को भूल जाएँ । जीवन से लेकर आवेगों द्वारा चित्रित किया गया चरित्र महत्त्वपूर्ण है तो उसकी याद हमारे मन पर रच–बस जायेगी । गोदान का होरी, धनिया, रायसाहब, मालती और मेहता जैसे चरित्र प्रायः ऐसी ही रचनात्मक अभिव्यक्ति हैं । इन चरित्रों का बाह्य और आंतरिक संसार होता है, जिसे लेखक बहुत गहराई से निर्मित करता है । ये चरित्र कभी व्यक्ति–प्रधान होते हैं तो कभी वर्ग प्रधान । ये कभी स्थिर होते हैं तो कभी अपनी सक्रियता में गतिशील । जो भी हो कथा की आवश्यकतानुसार इन चरित्रों का विकास बहुत महत्त्वपूर्ण होता है । चरित्रों के संबंध में प्रेमचंद का कथन है – ‘‘उपन्यास के चरित्रों का चरित्र–चित्रण जितना ही स्पष्ट, गहरा और विकासपूर्ण होगा, उतना ही पढ़नेवालों पर उसका असर पड़ेगा ।’’[६९] स्पष्ट है कि कथा की तरह उपन्यास में चरित्रों का भी उतना ही महत्त्व है ।

## (iii) कथोपकथन :

उपन्यास में वैसे तो लेखक कहानी कहता चलता है, किन्तु वहाँ पात्रों की विश्वसनीयता और उपस्थिति आवश्यक हो जाती है, जहाँ कथोपकथन बहुत आवश्यक हो जाता है । प्रेमचंद ने तो कथा–कथन को न केवल आवश्यक माना है, बल्कि उसकी अधिकता पर जोर दिया है । उनका कहना है, ''उपन्यास में वार्तालाप जितना अधिक हो, और लेखक की कलम से जितना ही कम लिखा जाये उतना ही उपन्यास सुंदर होगा । वार्तालाप केवल रस्मी नहीं होना चाहिए ।''[७०]

इसके विपरीत हमारे बहुत से लेखक प्रयोग के लिए संवादहीन कथानक की रचना करते हैं । पर ऐसे कथा–प्रयोग अपनी तमाम कलात्मक अभियक्तियों के बावजूद केवल संवेदनहीन कला बनकर रह जाते है । कुछ आलोचकों का यह भी मत है कि वार्तालाप बहुत सीधा–सादा और जीवन के निकट होना चाहिए । लेकिन यह भी सच है कि जीवन में किया गया हर संवाद लेखक के लिए कथानक का हिस्सा नहीं बन सकता । कथोपकथन ऐसे होने चाहिए जो सामान्य जिन्दगी को झटका देकर व्यक्ति को सीधी–सादी जिन्दगी से निकालकर कथा–विस्तार को वह आयाम देते हों, जो लेखक की रचनात्मक दुनिया तक हमें ले जा सके ।

## (iv) देशकाल और वातावरण :

उपन्यास की रचना में देशकाल का बहुत अधिक महत्त्व है । दूसरे शब्दों में यदि कहें कि देशकाल के लिए ही उपन्यास की रचना होती है, तो अधिक तर्कसंगत होगा । उपन्यासकार अपनी कहानी किसी ऐसे देशकाल और वातावरण से संबद्ध करता है, जो हमारी देश–दुनिया के बीच से चुना गया हो । उस देश–दुनिया की रीति–नीति, रहन–सहन, आचार–विचार, सुख–दुःख और अभावों को रचता हुआ वह देशकाल के लिए बेहतर विकल्पों की माँग करता है । इसके विपरीत यदि देशकाल किसी देश–दुनिया से प्रामाणिक ढ़ंग से नहीं लिया गया है तो पाठक उसका संबंध अपनी समकालीन दुनिया से निरुपित नहीं कर पायेगा और उपन्यास की कथा कृत्रिम बनकर रह जायेगी ।

डॉ. भगीरथ मिश्र का मत है कि – ''जितनी ही वास्तविक पृष्ठभूमि में चरित्रों को प्रगट किया जायेगा उतनी ही गहरी विश्वसनीयता का भाव जगाया जा सकता है । इस पृष्ठभूमि के बिना हमारी कल्पना को ठहरने की कोई भूमि नहीं मिलती और न हमारी भावना ही रमती और विश्वास करती है ।''[७१]

स्पष्ट है कि देशकाल की विश्वसनीयता उपन्यास की सबसे बड़ी शर्त है । इसके लिए भाषा, चरित्रों की पहचान, शब्दावली और रीति–रिवाज के वे सारे उपादान उस सच्चाई के निकट होने चाहिए, जो उस देश–काल की पहचान देते हुए उसे पूरी तरह विश्वसनीय बनाते हैं । अन्यथा बड़े से बड़े तथ्य और सत्य पर लिखा गया उपन्यास अंततः कृत्रिम दुनिया का आलोक बनकर रह जायेगा ।

## *(v) भाषा शैली :*

भाषा–शैली वह तत्त्व है, जिसके माध्यम कथा का शिल्प बुनता है । स्पष्ट है कि भाषा जिन्दगी के अत्यंत निकट होनी चाहिए । वह उन पात्रों के संसार से ली गयी होनी चाहिए, जिनकी कहानी लेखक कह रहा है । क्योंकि भाषा से ही लेखक एक ओर जहाँ कहानी को विश्वसनीय बनाता है वहीं दूसरी ओर वह उससे कहानी को विस्तार देता है । भाषा के ऊपर लेखक की पूरी शैली आधारित होती है । और शैली वह गुण है, जिसके आधार पर ही रचना अपने पाठकों तक पहुँचती है । बाबू गुलाबराय का कहना है कि खाद्य–सामग्री चाहे कितनी मूल्यवान क्यों न हो, किन्तु जब तक उसे सजा–सम्हालकर न रखा जायेगा वह ग्राह्य नहीं होगी । शैली का वही स्थान है, जो मनुष्य में उसकी आकृति और वेशभूषा का है ।[७२] स्पष्ट है कि उपन्यास का शिल्प पाठक को रचनाकार के उद्‌देश्यों तक ले जाता है । यह शिल्प वह भाषा के माध्यम से रचता है । इसलिए उपन्यास में भाषा–शैली का विशेष महत्त्व है ।

## *(vi)* उद्देश्य :

उपन्यास एक ओर अपनी कथावस्तु में आकर्षक, चरित्रों में प्रामाणिक, कथोपकथन, देशकाल और भाषा सम्मत होता है । तो दूसरी ओर उसकी रचना किस बड़े उद्देश्य के लिए की जाती है । इसके विपरीत यदि रचना सर्वगुण सम्पन्न हो और उसका उद्देश्य अर्थहीन हो, तो अपनी पूरी पठनीयता के बावजूद वह उपन्यास न अपने देशकाल को प्रभावित कर पायेगा और न हीं पाठकों के संसार में वह दीर्घायु प्राप्त कर सकेगा । प्रख्यात आलोचक डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी मानते हैं – "उपन्यास के भिन्न–भिन्न तत्त्वों को अलग–अलग मिलाकर भी किया हुआ सूक्ष्म चित्रण और सफलतापूर्वक निर्वाह ही उपन्यास को बड़ा नहीं बनाता, बड़ा बनाती है, उद्देश्य की महत्ता और उसकी सफल सिद्धि ।"[७३] स्पष्ट है कि उद्देश्य रहित उपन्यास अपने संपूर्ण शैलीगत निरूपण के बावजूद अर्थहीन रह जायेगा । भले ही वह उस देशकाल में मनोरंजन का शीर्ष साधन रहा हो ।

प्रायः हम पाते हैं कि मनुष्य अपने मनोरंजन के साधन भी अपने सुख–दुःख और कार्य–व्यापार की दुनिया से ही चुनना पसंद करता है । उसी के भीतर से जीने की सतत आकांक्षा उसे समय के विकल्पों की ओर ले जाती है । वह सोते, उठते–जागते हर समय विकल्प की तलाश में होता है । अतः विकल्पहीन जिन्दगी का रचाव कहीं से भी उसके लिए स्वीकार्य नहीं होगा । इसके विपरीत विकल्प की उपस्थिति और उसका बड़ा होना, उसके लिए निश्चय ही रचना का सबसे बड़ा आकर्षण है । यदि विकल्प बड़ा है तो रचना इतिहास के रचाव के कहीं अधिक निकट होगी और उसकी उम्र भी उतनी ही सुदीर्घ होगी ।

## ❀ हिन्दी उपन्यास और निर्मल वर्मा :

निर्मल वर्मा ने हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में जब कदम रखा, उस समय हिन्दी लेखन में एक ओर 'नयी कहानी' का दौर था तो दूसरी ओर राही मासूम रजा, मोहन राकेश, कृष्णा सोबती, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, भीष्म

साहनी, भैरव प्रसाद गुप्त और फणीश्वरनाथ रेणु जैसे रचनाकार उपन्यास लेखन में सक्रिय थे । "नयी कहानी" वास्तव में दूसरे महायुद्ध के बाद की रचनात्मकता के क्रम में जीवन को रचनात्मक रूप से परिभाषित कर रही थी । उसका परिणाम यह था कि नयी कहानी के कथाकार किस्सागोई के विपरीत उपन्यास के क्षेत्र में जीवन–जगत के बदले हुए मूल्यों को रचने की ओर उन्मुख हुए । परिणामतः उस दौर में आधा गाँव, टोपी शुक्ला, अंतराल, मित्रो मरजानी, एक सड़क सत्तावन गलियाँ, उखड़े हुए लोग, तमस, सती मैया का चौरा और परती परिकथा जैसे उपन्यास लिखे जा रहे थे । ये उपन्यासकार दूसरे महायुद्ध के बाद की दुनिया में भारतीयता की बदलती हुई स्थितियों और विकल्पों को रचने में सक्रिय थे । इन्होंने भारतीय उपन्यास परंपरा से बहुत कुछ लेकर अलग–अलग कथा प्रयोग भी किये ।

निर्मल के सामने न केवल भारतीय समाज था बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय धरातल पर टूटे हुए मानव के अस्तित्व का सवाल था । वे अंतर्राष्ट्रीय मनुष्य को इतिहास बोध की परिधि में रखकर देख रहे थे । यह इसलिए भी हुआ कि जीवन के आरंभ से अंग्रेजीयत के बीच पले–बढ़े निर्मल वर्मा ने यूरोप प्रवास के दौरान वहाँ के जीवन–जगत को तो निकट से देखा ही, उन्होंने वहाँ की कृतियों को भी अंतर्राष्ट्रीय धरातल पर परखते हुए उसे इतिहास बोध से जोड़कर रचना के प्रति अपनी सार्वभौम दृष्टि का निर्माण किया ।

अपनी रचनात्मकता के बारे में निर्मल कहते हैं कि – "हम अपने परिवेश का जिस तरह संहार कर रहे हैं, उसके प्रति सजगता हमारे आज के कितने साहित्य में है ? हम यह छोड़ दे कि बाद में क्या होगा, तो मैं यह कह रहा हूँ कि उसके प्रति एक सजगता – एक बौद्धिक सजगता की ओर सृजनात्मक स्तर पर इससे बर्ताव की कोशिश हमारे कितने साहित्य में है ?"[७४]

स्पष्ट है कि निर्मल वर्मा इसी संहार के विरुद्ध एक सजग मानसिकता का आलोक लेकर अपने उपन्यासों की दुनिया में प्रवेश करते है । उनके लिए यह अंतर्राष्ट्रीय धरातल पर की गयी सजगता है । "वे दिन" के रचनात्मक वातावरण को स्पष्ट करते हुए निर्मल कहते है – "यह अवश्य है कि जब

कोई अनुभव बहुत व्यक्तिगत स्तर पर मुझे त्रस्त करता है तो उस अनुभव को मैं हमेशा ठीक समझता हूँ, मैं कहानी या उपन्यास में यह जरुरी नहीं है कि उस 'स्पेस' को नाम दूँ जो एटलस में है । किन्तु अपने मानस के मानचित्र पर मैं उसे साफ देखना चाहता हूँ ।''[७५] स्पष्ट है कि निर्मल अपने उपन्यासों की दुनिया में जाकर एटलस की परिधि भूल जाते हैं और उस दुनिया का सृजन करते हैं जो ईश्वर ने किसी एटलस के सहारे नहीं बनायी होगी । लेकिन वह दुनिया सार्वदेशिक और सार्वजनिक है, अंतराष्ट्रीय है और भारतीय भी ।

अपने आरंभिक उपन्यास 'वे दिन'' में निर्मल वर्मा द्वितीय महायुद्ध की परिधि में खोये हुए मनुष्य को रचने में रायना, रयमान और प्राग का वातावरण लेते हैं । किन्तु 'लाल टीन की छत' में 'रात का रिपोर्टर' और ' अंतिम अरण्य' तक निर्मल भारतीयता में डूबे रहने के बावजूद कई पात्रों के माध्यम से यूरोप की परिक्रमा कर आते हैं । उनकी दृष्टि में भारतीय मनुष्य केवल भारतीयता का न होकर, वैश्विक मनुष्य है और वैश्विक मनुष्य भारतीयता के बहुत निकट है ।

अपने उपन्यासों की रचना में निर्मल कहानियों की तरह ही कथा के क्रम को तोड़ते हुए वातावरण से घटनाओं के प्रभाव को संपूर्ण रूप में रचते हुए आगे बढ़ते हैं । उनके लिए हर घटना मनुष्य के अंतर्मन को भीतर तक झिंझोडकर, उसे इतिहास की परिधि में ले जाती है । इसलिए एक घटना के बाद दूसरी को तटस्थ ढ़ंग से कहते जाना उनके लेखक के लिए बहुत अर्थहीन है । वह छोटी से छोटी स्थितियों पर रुक कर उसकी अनुगुंज को देशकाल के समानान्तर संपूर्ण रूप में रचते हैं । समय के प्रति एक लेखक को पूरी तरह केन्द्रीभूत करते हैं ।

अपने उपन्यासों में निर्मल वर्मा कथा को, कथा–कथन की शैली में नहीं रचते । वे जीवन की छोटी से छोटी घटना को उसके समग्र प्रभाव के साथ रचते हैं । उनके पात्रों का संसार संपूर्ण रागात्मकता और संवेदना का संसार है । वे देश काल और वातावरण को इतनी गहराई से चित्रित करते हैं कि

वह न केवल चित्रित होकर ध्वनित होने लगता है, बल्कि अपनी गूंज से पाठक को काव्यात्मक तरलता तक ले जाता है । स्पष्ट है कि निर्मल वर्मा की भाषा–शैली उन्हें इस तरलता की दिशा में निरंतर सक्रिय रखती है ।

निर्मल अंतर्राष्ट्रीय धरातल पर संघर्षरत मनुष्य की संवेदनाओं के प्रति सक्रिय कथाकार हैं । उनके उपन्यास एक बड़ी दुनिया का अंकन करते हुए समकालीन उपन्यास के विकास की दिशा में एक अद्वितीय कड़ी बनकर सामने आते है ।

# संदर्भ सूची :


| | |
|---|---|
| १ | See Baker : The Histoyr of English Novel, Volume I, Page 49 |
| २ | हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन, डॉ. गणेश, पृ. ३५ |
| ३ | हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन, डॉ. गणेश, पृ. ३५ |
| ४ | See Baker : The Histoyr of English Novel, Volume I, Page 163 |
| ५ | Church : The Grouch of English Novel, Pate No. 12 |
| ६ | हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन, डॉ. गणेश, पृ. ३६ |
| ७ | हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन, डॉ. गणेश, पृ. ३७ |
| ८ | A short History of French Literature, Page No. 125 |
| ९ | See Baker : The History of English Novel, Volume III, Page 15-32 |
| १० | See Baker : The History of English Novel, Volume III, Page 28 |
| ११ | काव्य के रूप, गुलाबराय, पृ. १७८ |
| १२ | काव्य के रूप, गुलाबराय, पृ. १७९ |
| १३ | काव्य के रूप, गुलाबराय, पृ. १७९ |
| १४ | काव्य के रूप, गुलाबराय, पृ. १७९ |
| १५ | संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव प्रसाद उपाध्याय, पृ. ३७७ |
| १६ | हिन्दी उपन्यास, शिवनारायण श्रीवास्तव, पृ. २,३ |
| १७ | भारतीय संस्कृति के आधार स्तंभ, डॉ. रामपाल वर्मा, पृ. ६ |
| १८ | जातक, भ्दन्त आनंद कौशल्याथ्न, प्रथम खण्ड, पृ. २५ |
| १९ | जातक, भ्दन्त आनंद कौशल्याथ्न, प्रथम खण्ड, पृ. १२ |
| २० | हिन्दी उपन्यास, शिवनारायण श्री वास्तव, पृ. ११ |
| २१ | संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव प्रसाद उपाध्याय पृ. ७८ |
| २२ | भारतीय संस्कृति तथा धर्म समन्वय की रूपरेखा, डॉ. स्वर्णकान्ता शर्मा, पृ. ११७ |
| २३ | हिन्दी उपन्यास, शिवनारायण श्रीवास्तव, पृ. १० |
| २४ | हिन्दी उपन्यास, शिवनारायण श्रीवास्तव, पृ. १० |
| २५ | हिन्दी उपन्यास, शिवनारायण श्रीवास्तव, पृ. १४ |
| २६ | विश्वभारती पत्रिका, खण्ड ५, अंक–२, अप्रैल–जून, १९७६ |
| २७ | हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल, पृ. ३६६ |
| २८ | काव्य के रूप, गुलाबराय, पृ. १८० |

| | |
|---|---|
| २९ | काव्य के रूप, गुलाबराय, पृ. १८१ |
| ३० | हिन्दी साहित्य कोश, संपादक धीरेन्द्र वर्मा, भाग–१, पृ. १२१ |
| ३१ | हिन्दी साहित्य कोश, संपादक धीरेन्द्र वर्मा, भाग–२, पृ. ६२ |
| ३२ | साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में राजनैतिक चेतना, कृष्णकुमार चंद्र, पृ. ११ |
| ३३ | हिन्दी उपन्यास, सुषमा प्रियदर्शनी, पृ. १३ |
| ३४ | हिन्दी शब्दसागर, द्वितीय भाग, डॉ. श्याम सुंदरदास, पृ. ६०५ |
| ३५ | आलोचना, वर्ष–३, अंक–३, अप्रैल १९५४, पृ. १० |
| ३६ | साहित्य का उद्देश्य, प्रेमचंद, पृ. ६० |
| ३७ | आलोचना, वर्ष–२६, अक्टूबर–दिसम्बर १९७८, पृ. १७ |
| ३८ | काव्य के रूप, गुलाबराय, पृ. १६३ |
| ३९ | साहित्य संदेश, आधुनिक उपन्यास, अंक जुलाई–अगस्त, १९५६, पृ. ५ |
| ४० | काव्यशास्त्र, डॉ. भगीरथ मिश्र, पृ. ७३ |
| ४१ | हिन्दी साहित्य का इतिहास, आधुनिक काल रामचंद्र शुक्ल, पृ. ३३७–३४२ |
| ४२ | हिन्दी साहित्य का इतिहास, आधुनिक काल रामचंद्र शुक्ल, पृ. ३६५–३६६ |
| ४३ | काव्य के रूप, बाबू गुलाबराय, पृ. १८०–१९१ |
| ४४ | हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. २०८–२२१ |
| ४५ | हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. २२६.२४५ |
| ४६ | हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, पृ. ४०२–४१२, पृ. ५११ |
| ४७ | हिन्दी सा'ित्य का इतिहास, आधुनिक काल, आचार्य रामच्रंद्र शुक्ल, पृ. ३३६–३४० |
| ४८ | हिन्दी उपन्यास, डॉ. शिवनारायण श्रीवास्तव, पृ. २०, |
| ४९ | हिन्दी उपन्यास, डॉ. शिवनारायण श्रीवास्तव, पृ. २५.२६ |
| ५० | काव्य के रूप, गुलाबराय, पृ. १८१–१८२ |
| ५१ | हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल, पृ. ३६५ |
| ५२ | हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. २५१ |
| ५३ | हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, पृ. ६७२ |
| ५४ | हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. २५० |
| ५५ | प्रेमचंद की प्रासंगिकता, अमृतराय, पृ. ३१ |
| ५६ | प्रेमचंद की प्रासंगिकता, अमृतराय, पृ. २८ |
| ५७ | प्रेमचंद की प्रासंगिकता, अमृतराय, पृ. ३२ |

| | |
|---|---|
| ५८ | हिन्दी उपन्यास, डॉ. शिवनारायण श्रीवास्तव, पृ. १७७ |
| ५९ | हिन्दी उपन्यास, डॉ. शिवनारायण श्रीवास्तव, पृ. १२३ |
| ६० | हिन्दी उपन्यास, डॉ. शिवनारायण श्रीवास्तव, पृ. १३० |
| ६१ | नया साहित्य नये प्रश्न, नन्ददुलारे बाजपेयी, पृ. २२ |
| ६२ | काव्य के रूप, डॉ. गुलाबराय, पृ. १५६–१७८ |
| ६३ | हिन्दी उपन्यास, डॉ. शिवनारायण श्रीर्वास्तव, पृ. ४४५–४५८ |
| ६४ | भारतीय तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र, डॉ. सत्यदेव चौधरी, ५१३ |
| ६५ | हिन्दी उपन्यास : शिल्प और प्रयोग, डॉ. त्रिभुवनसिंह, पृ. ३१५ |
| ६६ | काव्यशास्त्र, डॉ. भगीरथ मिश्र,पृ. ६३ |
| ६७ | साहित्य सहचर, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. ७६ |
| ६८ | हिन्दी उपन्यास, शिवनारायण श्रीवास्तव, पृ. ४४६ |
| ६९ | साहित्य का उद्‍देश्य, प्रेमचंद, पृ. ७७ |
| ७० | साहित्य का उद्‍देश्य, प्रेमचंद, पृ. ७८ |
| ७१ | काव्यशास्त्र, डॉ. भगीरथ मिश्र, पृ. ६३ |
| ७२ | काव्य के रूप, गुलाबराय, पृ. १७६ |
| ७३ | साहित्य सहचर, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. ७६ |
| ७४ | निर्मल वर्मा, अशोक वाजपेयी, पृ. ३१ |
| ७५ | निर्मल वर्मा, अशोक वाजपेयी, पृ. ४७ |



***

# चतुर्थ – अध्याय
# निर्मल वर्मा के उपन्यास

(१) 'वे दिन'
- *(१) कथावस्तु*
- *(२) पात्र और चरित्र*
  - *(i) मुख्य पात्र*
  - *(ii) गौण पात्र*
- *(३) देशकाल और वातावरण*

(२) 'लाल टीन की छत'
- *(१) कथावस्तु*
- *(२) पात्र और चरित्र*
  - *(i) मुख्य पात्र*
  - *(ii) गौण पात्र*
- *(३) देशकाल और वातावरण*

(३) 'एक चिथड़ा सुख'
- *(१) कथावस्तु*
- *(२) पात्र और चरित्र*
  - *(i) मुख्य पात्र*
  - *(ii) गौण पात्र*
- *(३) देशकाल और वातावरण*

(४) 'रात का रिपोर्टर'

*(१) कथावस्तु*

*(२) पात्र और चरित्र*

*(i) मुख्य पात्र*

*(ii) गौण पात्र*

*(३) देशकाल और वातावरण*

(५) 'अंतिम अरण्य'

*(१) कथावस्तु*

*(२) पात्र और चरित्र*

*(i) मुख्य पात्र*

*(ii) गौण पात्र*

*(३) देशकाल और वातावरण*

# चतुर्थ – अध्याय
# निर्मल वर्मा के उपन्यास

निर्मल वर्मा अपने उपन्यासों में जिस संसार का निर्माण करते हैं, वह एक ओर जहाँ अंतर्राष्ट्रीय संसार है, वहीं दूसरी ओर अपनी धुरी पर घूमता हुआ, कहीं न कहीं भारतीयता में लौट आता है । यह इसलिए है कि निर्मल वर्मा मूलतः भारतीय हैं और अपने देश–काल को अंतर्राष्ट्रीय द्वंद्वों की परिधि में रखकर देखना चाहते हैं । यह द्वंद्व संबंधों के विविध कोणों से अपने वर्तमान को संपूर्ण रूप से परिभाषित करने की कोशिश करता है ।

निर्मल वर्मा के अब तक पाँच उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें पीड़ा के अंतर को भेदने का, दुःखी मन को परखने का, एक अकेली पड़ गई संवेदना का और व्यक्ति मन–मस्तिष्क की अटल गहराईयों एवं मानसिक तनावों का यथार्थ चित्रण हुआ है । निर्मल वर्मा का प्रथम उपन्यास 'वे दिन' व्यक्तिवादी उपन्यास है जो मध्यमवर्गीय शहरी मानसिकता से युक्त है जिससे मुक्त होने के लिए व्यक्ति नैतिकता–अनैतिकता की परवाह नहीं करता । उनके दूसरे उपन्यास 'लाल टीन की छत' में बाल मनोवैज्ञानिक समस्या का चित्रण है, इसमें भी अकेलापन उभर कर आया है । 'एक चिथड़ा सुख' युवा वर्ग की पीड़ाओं को भेदता हुआ उपन्यास है जिसमें व्यक्ति सुख की तलाश में दर–ब–दर भटकता रहता है । उनका चौथा उपन्यास 'रात का रिपोर्टर' थीम की दृष्टि से एक अलगाव लिए हुए है । जिसमें राजनीतिक समस्या के साथ व्यक्ति–केन्द्रित विषमताओं का चित्रण है । उनका पाँचवा और अंतिम उपन्यास 'अंतिम अरण्य' है । यह उपन्यास जीवन और मृत्यु से संबंधित उन सवालों पर विचार करता है जो हर व्यक्ति के सामने आते हैं किन्तु जिनसे हम नजरें चुराकर दूसरी तरह निकल जाते हैं । इस प्रकार अब तक उनके पाँच उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं, जिनका परिचय यहाँ दिया जा रहा है ।

## (१) 'वे दिन' :

हिन्दी कथा–साहित्य में एक सफल लेखक के रूप में विख्यात और प्रथम नई कहानी के रचनाकार निर्मल वर्मा का प्रथम उपन्यास है – 'वे दिन' जो १८६४ में राज कमल प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित हुआ । इस उपन्यास के प्रकाशन को हिन्दी उपन्यास साहित्य में एक महत्त्वपूर्ण मोड़ माना गया । ''हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में कुल तीन मोड़ माने गये हैं । पहला प्रेमचंद कृत 'गोदान', दूसरा अज्ञेय कृत 'शेखर एक जीवनी' और तीसरा मोड़ है निर्मल वर्मा कृत 'वे दिन' ।''[१] वास्तव में 'वे दिन' एक ऐसा उपन्यास है जो आधुनिक बोध से उपजी नयी संवेदना, व्यक्ति केन्द्रित विषमताएँ – अकेलेपन की, उखड़ने की, निर्मलता की, परायेपन की और टूटने की भावना को उजागर करता है । उपन्यास का मुख्य विषय है अकेलेपन, खालीपन का अनुभव और उस खूंखार एकाकीपन से छुटकारा पाने का निरर्थक प्रयत्न । इसकी कथावस्तु निम्नप्रकार देखी जा सकती है ।

### *(I) कथावस्तु :*

'वे दिन' उपन्यास में भारतीय विद्यार्थी इण्डी, आस्ट्रियन टूरिस्ट रायना, मीता तथा प्राग में रहनेवाले इण्डी के अन्य विदेशी साथी फ्रांज, मारिया, थानथुन, मेलकोन्विच और सेंट पीटर आदि की कथा है । सभी पात्र बिलकुल अकेले हैं, स्वतंत्र हैं पर किसी की भी मदद करने में असमर्थ हैं । कथा का प्रारंभ अंत से होता है और फिर कथा स्मृत्यावलोकन में चलती है । इण्डी होस्टेल में रहता है, छुट्टियों के दिनों में जब स्कोलरशिप के पैसे नहीं मिलते, इन विदेशी विद्यार्थिओं को कुछ–न–कुछ काम करना ही पड़ता था । इण्डी को टूरिस्टों के गाईड और दुभाषियों का काम मिला, उसके टुरिस्टों में है, नायिका रायना रैमान और उसका बेटा मीता ।

इण्डी अपने घर से टूटा हुआ व्यक्ति है और तीव्र गृहवितृष्णा का शिकार है । वह जानता है कि अगर वह चाहे तो भी घर नहीं लौट सकता । रायना युद्ध से बहुत ज्यादा आतंकित है, यहाँ तक कि वह बेटे के खिलौने के तौर पर भी बंदूक सहन नहीं कर सकतीं । एक तरह से दोनों ही

मुख्य पात्र घर से कटे हुए हैं, अपने घर से आई हुई बहन की चिट्ठी खोलने तक की इण्डी को उत्कंठा नहीं होती । रायना घर छोड़कर शहर–दर–शहर भटकती है ।

उपन्यास की भूमिका में युद्ध का आतंक भयावह रूप से छाया हुआ है । हर चरित्र उसी आतंक से सहमा हुआ है, हर एक का अतीत उसी से जुड़ा है और चाह कर भी कोई पात्र उससे बाहर नहीं आ पाता है । रायना का चरित्र एक ऐसी वेदना को लिए हुए है, जो अंतःसलिला की भाँति उसके भीतर बहती रहती है । अपने–आप में वह बिलकुल अकेली है और कभी भी कोई साथ उसे अधिक समय तक बदला नहीं पाता । अपना अकेलापन बाँटने के लिए वह पुरुष–दर–पुरुष और शहर–दर–शहर भटकती है । वह इण्डी से कहती है कि वह ज्यादा दिन अकेली नहीं रह सकती । लड़ाई के दिनों में उन्हें कॉन्सेन्ट्रेशन केम्प में रखा गया था जहाँ जाक उसके साथ था । तब उनमें से किसी को भी नहीं लगता था वे बच सकेंगे । लेकिन फिर भी वे बच गए, अर्थात् उनमें जीवन का कोई स्पंदन नहीं था ।

रायना ने जॉक से शादी भी की, लेकिन वह उसके साथ घर में नहीं रह सकीं क्योंकि जाक के साथ वहाँ रहते हुए उसे यही लगता था, जैसे वह कॉन्सेन्ट्रेशन केम्प में रह रही है और वह उसे छोड़कर बाहर आ गई । टूरिस्ट गाईड के रूप में रायना और इण्डी के संबंध धीरे–धीरे विकसित होते हैं, वे दोनों आकर्षित होते हैं और क्रमशः आगे बढ़ते ही जाते हैं । वैसे देखा जाय तो न उन दोनों में प्रेम होता है और न ही सेक्स का आकर्षण, फिर भी एक सहज आकर्षण जो व्यक्ति को एक–दूसरे की ओर खीचता है सिर्फ अकेलापन बाँटने के लिए । दोनों यह जानते भी है कि दोनों को वापस अपने–अपने अकेलेपन में जीना है, फिर भी कुछ क्षणों का साथ पाने का लोभ वे संवरण नहीं कर पाते ।

महायुद्ध के बाद व्यक्ति जिस अकेलेपन और अविश्वास झेलने को बाध्य हुआ, वही इन सब चरित्रों में दिखाई देता है । इण्डी और रायना की कथा

के साथ–साथ और जो कथाएँ चलती हैं, उनमें फ्रांज, मारिया, थानथुन और मेलन्कोविच आदि की कथाएँ है ।

इण्डी और रायना की मुख्य कथा के साथ ही फ्रांज और मारिया की कथा चलती है । फ्रांज बर्लिन से आया है, वह फिल्म बनाने का डिप्लोमा ले रहा है, लेकिन उसकी हर फिल्म इस बात पर रद्द की जाती है, कि उसमें युद्ध की छाया है । अभी तक भी उसका भय और आतंक लोगों के मन से हटा नहीं है । उसकी माँ बर्लिन में है, वह वहाँ अकेली है और यहाँ फ्रांज कुछ करने आया है लेकिन कुछ भी नहीं कर पाता है ।

मारिया की अपनी अलग त्रासदी है, वह फ्रांज को चाहती है, उसके साथ रहती भी है, लेकिन फ्रांज उसके साथ शादी नहीं करता । बर्लिन वह इसीलिए नहीं जा सकती, क्योंकि फ्रांज सिर्फ वीसा के लिए उससे शादी नहीं कर सकता । इण्डी और थानथुन को उससे सहानुभूति है । लेकिन वे इस सीमा पर हैं, जहाँ कोई किसी की मदद नहीं कर सकता, अपने दुःख जहाँ व्यक्ति खुद ही झेलने को बाध्य हैं । परिस्थितियों ने उनमें अविश्वास और अकेलेपन ठूँस–ठूँसकर भर दिया है और साथ रहकर भी वे साथ नहीं हो सकते ।

होस्टल में एक और व्यक्ति है मेलेन्कोविच । हमेशा आधी रात के वक्त उसके कमरे से एकोर्डियन का स्वर सुनाई देता है । उसके पत्नी और बच्चे लेलनग्रेड में थे, और वह राजनीतिक कारणों से वहाँ नहीं सा स्वर कानों में पड़ता था, लड़के एक दूसरे के कानों में फुसफुसाते – 'यह मेलन्कोविच है, जो अपने घर नहीं जा सकता ।' अर्थात् फ्रांज, मारिया और मेलन्कोविच की ट्रेजेडी के मूल में भी युद्ध ही है ।

इण्डी और रायना की कथा धीरे–धीरे गति पकड़ती है । पहले तो दो दिन तक वे दिन भर ही साथ रहते है, तीसरी रात को रायना इण्डी के होस्टेल जाती है, जहाँ उनका शारीरिक संपर्क होता है । यहाँ शारीरिक तौर पर इण्डी और रायना मिलते है, फिर भी कोई खास बात घटी हो ऐसा महसूस नहीं होता, क्योंकि कथाकार उसे घटना के तौर पर नहीं चित्रित करता,

सभी घटनाएँ एक सहज ही धारा में बह सी जाती है । कोई भी घटना उपजायी हुई नहीं लगती ।

रायना और इण्डी दोनों की यह अपने अकेलेपन को बाँटने की कोशिश है । रायना कभी-कभी जरा सी भावुक हो जाती है, लेकिन अगले ही क्षण फिर तटस्थ हो जाती है । क्योंकि वह जानती है कि यह क्षण दुबारा नहीं होगा । इण्डी के साथ रायना की मुलाकात इण्डी के लिए भावपूर्ण है, लेकिन रायना के साथ अक्सर ऐसा होता रहता है । वह पूछती है तब रायना कहती भी है कि वह अकेली ज्यादा दिन नहीं रह सकतीं, उसके साथ ऐसा होता ही रहता है । उसे कोई क्षोभ नहीं होता, शर्त सिर्फ यही रहती है कि सामनेवाले को बाद में कोई पछतावा न हो । दोनों ही चरित्रों में हमें एक-दूसरे का साथ पाने की तीव्र ललक दिखायी देती है, और यही ललक उन्हें शारीरिक संबंधों तक बढ़ने में साथ देती हैं ।

रायना अपने आप में इतनी तटस्थ है कि जिस क्षण जाने का निश्चय करती है, चली ही जाती है । इण्डी जब उसे रुकने को कहता है तब भी वह यह कहती है – 'इट वुडन्ट हेल्प' । अपने आपको और तटस्थ रखने के लिए वह इण्डी को स्टेशन आने के लिए भी मना कर देती है । हाँलाकि एकाद बार वह खुद भी भावुक हो जाती है, लेकिन फिर संभल जाती है । तीसरे दिन रायना वापस अपने शहर चली जाती है और इण्डी दूसरे टूरिस्टों के लिए टूरिस्ट एजेंसी जाता है । अन्य टूरिस्ट जो पहाड़ पर जानेवाले हैं, उसे अनेक दुभाषिये का काम मिलता है, वह इसलिए खुश होता है कि उसे किसी भी तरह कुछ दिन शहर से बाहर रहने का मौका मिलेगा ।

उपन्यास की दोनो कथाएँ-मुख्य कथा इण्डी और रायना की तथा दूसरी फ्रांज और मारिया की ट्रेजिक है । लगभग सभी पात्रों का अतीत युद्ध से जुड़ा है और उनके वर्तमान पर भी उसी का भय और आतंक छाया हुआ है । कथा के केन्द्र में यहीं युद्ध के प्रभाव से पैदा हुआ भयंकर अविश्वास और अकेलापन, गृहवितृष्णा और मृत्युबोध है ।

इसके समानान्तर ही एक और चीज दिखाई गई है, यह है वहाँ के लोगों का अपने शहर के प्रति लगाव और विधार्थी जीवन । होस्टल की जिन्दगी हमारी आँखो के समक्ष आ खड़ी होती है, इतना जीवंत चित्रण बन पड़ा है उसका । प्राग शहर अपनी विशेषताओं के साथ सुंदरता से चित्रित हुआ है । लेखक ने शहर को विशेष तौर पर महत्त्व के साथ चित्रित किया है । रायना का प्राग के साथ अलग ही तरह का प्रभाव है, उन स्थलों के प्रति उसे मोह है, देखने की चाह है, जिन्हें उसने अपने पति के साथ पहली बार देखा था । इस बार तो वह दुबारा प्राग आई है । इण्डी चाहता है कि रायना हर स्थल को उसके साथ पहली बार ही देखे, जब कि वह उन्हीं पुरानी जगहों की तलाश में है । शहर के प्रति पात्रों का दृष्टिकोण भी उनकी मनःस्थिति को स्पष्ट करने में कुछ मदद करता है ।

उपन्यास का सबसे छोटा पात्र है मीता, रायना का बेटा । जिसकी उम्र आठ–दस साल ही है, लेकिन व्यवहार एक वयस्क मनुष्य का सा है । पूरी कथा में वह कहीं भी बच्चे की तरह नहीं लगता । तीसरे दिन की रात जब रायना इण्डी के होस्टेल में ही रह जाती है, वह समझ जाता है, लेकिन कुछ भी कहता नहीं । रायना खुद इण्डी से कहती है, कि उसे पता चल गया था, लेकिन उसने रायना से कुछ कहा नहीं था ।

रायना उपन्यास का प्रमुख चरित्र है । रायना नितांत अकेली है । इस अकेलेपन को बाटने के लिए शहर–दर–शहर भटकने के लिए विवश है । रायना के चरित्र में जो पीड़ा है वह युद्धोत्तरकालीन दुनिया के आम आदमी की पीड़ा है । युद्ध ने आम आदमी के मन के सारे भावों, सारी संवेदनाओं को खत्म कर दिया । इस संवेदनहीनता की पीड़ा रायना व्यक्त करती है । ''एक दिन मैं बाहर आ गयी... यह जानते हुए भी कि बाहर मैं किसी काबिल नहीं रह गई हूँ... नॉट ईवन फार लव । पीस किल्ड हर.... ।''[२] उपन्यास में रायना उस व्यक्ति का प्रतिक है, जिसका महायुद्ध के बाद जीवन के प्रति विश्वास कम हो गया है । मृत्यु बोध इस मानव पर हर दम छाया रहता है । रायना का चरित्र आधुनिक युग में अकेलेपन और अजनबीपन को

झेल रहे व्यक्ति की पीड़ा को लिए हुए है । उसके पात्र में अपार वेदना व मौन पीड़ा है, जिसे लेखक ने संकेतों एवं प्रतिकों से व्यक्त किया है ।

उपन्यास में घटनाएँ और परिवेश सीमित है । उपन्यास में प्राग का आकर्षक चित्र खिंचा गया है । उपन्यास की भाषा सरस है । संवाद गतिशील व पात्रानुकूल है । कहीं–कहीं अंग्रेजी व चैक भाषा के शब्दों का प्रयोग भी किया गया है, जो स्वाभाविक लगता है । 'वे दिन' अकेलेपन की अनुभूति को घनी और व्यापक बनाता है । उपन्यास के पात्र जीवन की व्यर्थता में अर्थ खोजते–से नजर आते है । उपन्यास अकेलेपन के साथ–साथ मानव की नियति, व्यक्ति का अस्तित्व एवं स्वंतत्रता जैसे सवाल भी उठाता है ।

## *(II) पात्र और चरित्र :*

इण्डी और रायना 'वे दिन' उपन्यास के प्रमुख पात्र है । कथा का ताना–बाना इन्हीं केन्द्रीय पात्रों के माध्यम से बुना गया है । और उसके सारे सूत्र इन्हीं के हाथों में है । पात्रों की संख्या कम होने के कारण उपन्यासकार सभी के साथ न्याय कर सका है । फ्रांज, मारिया, टी.टी., मीता आदि गौण पात्र है । गौण पात्र भी मुख्य पात्रों की विशेषताएँ उभारने एवं कथानक को जोड़ने में सहायक है । कथावस्तु में इनके उलझे हुए संबंधों के कारण कई स्थानों पर रोचकता की वृद्धि हुई है । उपन्यास का आकार बड़ा न होने के कारण गौण पात्रों की संख्या भी अधिक नहीं है । उपन्यास के सभी पात्रों रायना और इण्डी, फ्रांज और मारिया आदि में चरित्र की सूक्ष्मता एवं जटिलता देखी जा सकती है ।

### *(i) मुख्य पात्र :*

#### ❀ *"मैं" इण्डी :*

उपन्यास के पुरुष पात्रों में इण्डी प्रधान पात्र है । 'वे दिन' उपन्यास का प्रारंभ ही इण्डी के क्रिया–कलापों से होता है । इण्डी प्राग में छात्रावास में पढ़ने के लिए रहता है । उसने ऐसी उम्र में घर को छोड़ा है जब बचपन पीछे छूट जाता है और बड़प्पन से रिश्ता जुड़ नहीं पाता । उसकी आर्थिक

स्थिति ऐसी है कि उसके पास पिछले एक साल से बरसाती नहीं है । लंदन से कुछ दिन पहले उसके मित्र ने कुछ सिगरेट के पैकेट भेजे थे । पिछले दिनों से वह उन्हें ''ब्लैक'' में बेचने का विचार कर रहा था । कई बार उसे 'गेट फीयर' सेण्ट पीटर से उधार भी लेना पड़ा था और यदि महीने के अंतिम दिनों में ऐसा होता तो वह शराब की खाली बोतलों को पास की 'पब' में बेच जाता था ।

क्रिसमस की छुट्टियों में 'इण्डी' बिलकुल खाली था और उन दिनों प्राग की टूरिस्ट एजेंसी के इन्टर-प्रेटर क्रिसमिस की छुट्टी पर थे । इसलिए टूरिस्ट एजेंसी ने इण्डी को इन्टरप्रेटेशन के काम के लिए बुलवाया था । वैसे ज्यादा काम इन्टरप्रेटेशन का नहीं था, उसे कुछ दिन टूरिस्टों के साथ रहना था । इण्डी अपने अधिकांश पैसे पीने पर खर्च करता था । पता नहीं सर्दी को दूर करने के लिए था फिर अकेलेपन को दूर करने के लिए । उस दिन जब टूरिस्ट एजेंसी ने उसे कुछ क्राउन दिए तो उस रात वह देर तक पेलीकान में बैठा रहा । वहाँ के वेईटर उससे परिचित थे । समय-खत्म होने के बाद भी वह वहाँ बैठ सकता था । उस रात वह काफी सुखी था । उसने वहाँ पोलिश वोदका पी जो सुख का चिन्ह था ।

इण्डी के होस्टल लौटने पर पीटर ने उसे दो पत्र दिए । यह जानकर की एक पत्र बहन का है, उसकी उत्सुकता सहसा मर गयी । उस रात वह वहाँ नहीं जाना चाहता था, जहाँ उसकी बहन थी, घर था, घर के कोने थे । इण्डी थोड़ा लापरवाह भी प्रतीत होता है । बहन का पत्र वह पढ़ने की बजाय जेब में रख लेता है । दूसरा पत्र स्थानीय था जो युनिवर्सिटी लायब्रेरी का कोई था जिस पर उन किताबों के नाम लिखे थे जो पिछले पाँच महीनों से उसके पास पड़ी थी । जुर्माने की रकम भी दर्ज की गयी थीं । इण्डी को अकेले रहना बिलकुल अच्छा नहीं लगता । उसके रुमानियन रुममेट के घर चले जाने के बाद इण्डी को काफी अकेलेपन सा लगता है । उस रात स्लीबो-वित्से पीने के बाद इण्डी उस क्षण के अकेलेपन से छुटकारा पाने के लिए टी.टी. को रोकना चाहता है । वह स्वयं कहता है कि ''पीने की एक सीमा के बाद

आदमी कितनी देर सी बाते कहने के लिए आतुर हो जाता है – हॉलाकि न उनका कोई अर्थ होता है, न अतीत वे सिर्फ उस क्षण के अकेलेपन से छुटकारा पाने के लिए होती है – लेकिन सिर्फ इसके लिए तुम दूसरे को सोने से रोक नहीं सकते ।''[३] प्राग की 'स्लाविया' इण्डी की प्रिय जगह थी । वह यहाँ पूरा दिन गुजार सकता था । गर्मियों में जब उसे कुछ भी करने को नहीं होता था, वह यहाँ चला आता था । वह हर तीन–चार महिने के बाद किसी नयी अपरिचित लड़की के साथ यहाँ चला आता था ।

इण्डी के अब अपने घर की याद नहीं आती उसे प्राग में अच्छा लगता है । पर इस तरह पराये शहरों में घुमते हुए उसे कभी–कभी कुछ अकेलापन सा लगता है । इण्डी को अपने घर से कोई विशेष लगाव नहीं था, इतने वर्षो ने उसे घर से विरक्त सा कर दिया था । घर से आये पत्र उसे दबा देते थे । उसे न तो घर की याद आती है और न ही वह घर के बारे में सोचता है ।

इण्डी इतवार को टूरिस्ट गाईड बनकर यौरूपा होटल जाता है जहाँ ऑस्ट्रियन टूरिस्ट रायना व उसका पुत्र मीता उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे । रायना से इण्डी चेक भाषा बोलने लगा और वे कुछ भी नहीं समझ सकें । जल्द ही इण्डी ने यह रुख अपना लिया कि उसें वहीं बात कहनी चाहिए जिस बात से रायना प्रसन्न होगी । इण्डी को लगता था कि जिन लोगों के सामने दूसरा रास्ता खुलता है, वे शायद ज्यादा सुखी नहीं हो पाते । इस दृष्टि से इण्डी सुखी था, वह प्राग के बाहर कहीं भी नहीं जा सकता था ।

पहले दीन दोपहर को इण्डी रायना को स्केटिंग रिंग लेकर गया पर स्केट्स उपलब्ध न होने के कारण वे नदी देखने चल पड़े । वहीं इण्डी टापू पर जमी हुई बर्फ पर डांस करने के लोभ का संवरण नहीं कर सकता । उसने रायना को डांस के लिए आमंत्रित किया । उसने रायना से कहा कि – ''आप गिरेंगी नहीं । मैं आपको पकड़े रहुँगा ।''[४] और वह ओवरकोट, दस्ताने व मफलर लादकर वे नाचने लगे । पर वहाँ देखने वाला कोई नहीं था । उस

रात रायना का होटल वापस जाना इण्ड़ी को असंभव सा लग रहा था। उसके चले जाने के बाद इण्डी ईजेरा बार गया और वहाँ कोन्याक पीते हुए वह दिन भर के जमा किये हुए शब्दों को दोहराने लगा। वे शब्द जो रायना उसके पास छोड़ गई थीं।

इण्डी अत्यंत संवेदनशील एवं भावुक है। फ्रांज का बर्लिन लौटना उसे असंभव सा लगता है और वह मारिया के बारे में भी सोचता है। फ्रांज के बर्लिन चले जाने के बाद वह कितनी अकेली रह जाएगी, इसकी कल्पना भी उसे दूभर लगती है। और एक दबा सा गुस्सा उसके भीतर चला आया। वह कहता है कि – ''हम ऐसी स्थिति में थे, जो हमारी नहीं थी। फिर भी जैसे हम एक अज्ञात षड़यंत्र का हिस्सा हो।''[६] दूसरे दिन रायना के पास जाते हुए इण्डी ने सोचा कि वह टी.टी. को सबकुछ कह दे। पर फिर उसे लगा कि उसके पास कहने को कुछ नहीं है। इण्डी चाहता था कि रायना को हर चीज पहली बार दिखाई है। वह अक्सर भूल जाता था कि वह यहाँ दूसरी बार आयी है। चर्च में जाते हुए इण्डी जान गया कि इस समय रायना अकेली रहना चाहती है। अतः वह बाहर ही खड़ा रहा उस समय उसे कुछ अकेला सा लगा और वहीं प्रतीक्षा करते हुए उसने अपने से ही धीरे–से कहा रायना। उसे हल्की सी सांत्वना हुई कि कोई उसे नहीं सुन सका था।

इण्डी ने जब मीता को अपने पिता की याद में सिसकते देखा तो पहली बार उसे आभास हुआ कि उन तीनो के अलावा कोई और व्यक्ति है, जो हमेशा उनके बीच में है। दो दिन तक इण्डी व रायना के बीच कुछ भी नहीं हुआ था। वह सिर्फ एक दूसरे के होने का सुख था। अकेलेपन को कुछ देर तक टालने का सुख था।

तीसरे दिन रायना के होटल जाते हुए इण्डी सब के बारे में सोचने लगा। फ्रांज के बारे में जो अपने कमरे में होगा, पियानों के आगे। मारिया के बारे में जो बिना बताए कहीं चली गई थीं। टी.टी. के बारे में जो कहीं नहीं जा सकता। और तब वह ठिठक गया। वह सोचने लगा इस एक

दोपहर में सब कितने अलग है । और उन सबमें से कोई भी किसी की मदद नहीं कर सकता । इण्डी को जब यह मालूम हुआ कि रायना दूसरे दिन वियना लौट रही है, तो उसने उससे कहाँ कि वह कुछ दिन और रुक जाए । रायना ने उसे कहा कि वह कोशिश करें कि उनके संबंध पहले जैसे ही है ।

एक बार म्युजिक–थियेटर से इण्डी रायना को अपने होस्टल ले आया । और कमरे के अंधेरे में इण्डी ने उसका हाथ पकड़ लिया । दोनों के मन में एक मर्मान्तक चाह खिंच आई और तब वे दोनों उस चाह में डूब कर एक दूसरे की देह को टटोलने लगे । ''डूबने से पहले एक पल स्मृति, सुख, पीड़ा समय–समय जो उन्होंने संग भोगा था और वह भी जिसे आनेवाले दिनों में अकेले भोगना था – सबको उन्होंने उतारकर पलंग के पैताने रख दिया था ।''[६] उस रात इण्डी को अपनी ख़ुशी असंभव सी लगी । वह असंभव सा लगा कि रायना उसके कमरे में है ।

इण्डी रायना को स्टेशन तक छोड़ने के लिए जाना चाहता था । पर रायना ने उसे मना कर दिया । अंतिम समय जब इण्डी रायना से मिलने गया तो वहाँ म्यूजियम की सीढ़ियों पर उसने अपने से कहा रायना । वह उस नाम से जुड़ी आवाज को सुनना चाहता था । इण्डी को स्वयं पर गर्व था कि जो कुछ उसके भीतर है, वही बाहर है । वह बाहर–भीतर से एक है । किन्तु रायना से मिलने के पश्चात् उसे अपना यह गर्व बचकाना सा लगा । जब रायना के लौटने की घड़ी बिल्कुल करीब आ गई तब उस क्षण पहली बार इण्डी को सच लगा कि एक घण्टे बाद वह प्राग में नहीं होगी । रायना के यह पूछने पर की वह अपने देश वापस लौटकर क्या करेगा । इण्डी ने कहा कि वह उसके बारे में कभी नहीं सोचता । वहां से जाने से पहले इण्डी ने रायना का हाथ दबाकर छोड़ दिया ।

रायना के चले जाने के बाद बदला कुछ भी नहीं था सिर्फ शहर अजीब सा खाली लग रहा था, और तब सहसा इण्डी को ध्यान आया कि रायना ने प्राग में कई चीजें नहीं देखी थीं । इण्डी चाहता था कि वह कुछ दिनों के

लिए प्राग से बाहर जा सके । और ऐसा ही हुआ, मि. जैक्सन ने उसे बताया कि कुछ जर्मन टूरिस्ट स्कींग के लिए कर्कोनोशे चले गए है और उन्हें एक गाईड की जरुरत है । इण्डी इस बात से बेहद खुश था कि वह कल पहाड़ी पर चला जाएगा । प्राग में रहता तो हर जगह कुछ–न–कुछ याद आता रहता । पर पहाड़ ऐसी जगह है जहाँ बहुत सी चीजें भूली जा सकती है ।

इसी तरह उपन्यास में इण्डी और रायना का चरित्र समानान्तर चलता है । कथावस्तु में दोनों ही पात्र विद्यमान रहते है । उपन्यास में इण्डी के माध्यम से यह व्यक्त होता है कि प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्रता होनी चाहिए । इसी प्रकार 'वे दिन' उपन्यास का इण्डी कथावस्तु में प्रारंभ से अंत तक छाया हुआ है ।

### ❀ *रायना रैमान :*

रायना उपन्यास की प्रमुख पात्र है । उपन्यास में इसका चरित्र पर्याप्त विकसित हुआ है । रायना के माध्यम से ही कथावस्तु भी विकास पाती है और साथ ही उसमें वैचारिक धरातलों का भी उद्घाटन होता है । युद्धोपरांत जीवन, वर्तमान के प्रति मोह और अतीत को काटकर फेंक देने की स्थिति का चित्रण इस उपन्यास में रायना को केन्द्र बनाकर किया गया है ।

रायना आस्ट्रीयन है तथा वियना से प्राग शहर आई है । वह जर्मनी है और उसे चेक भाषा बिल्कुल नहीं आती । थोड़ी बहुत अंग्रेजी वह समझ लेती है । महायुद्ध की भयंकरता, जिसकी वह साक्षी थी, उसके मनःमस्तिष्क पर अपनी एक गहरी छाप छोड़ गई है । उसने अपनी उम्र के बहुत से वर्ष युद्ध में बिताए थे और अब तक वह उस भय से आक्रांत है । युद्ध ने उसे किसी काबिल नहीं छोड़ा, न विवाह के न प्रेम के । वह अभी तक युद्ध की याद दिलानेवाली प्रत्येक वस्तु से डरती है, चाहे वह खिलौने के रूप में बन्दूक ही क्यों न हों । रायना तीन साल पहले भी यहाँ आ चुकी है, अपने पति जाक के साथ । अतः वह पहले देखी हुई चीजों को ही देखने के लिए आतुर रहती है । उसके साथ के अन्य टूरिस्टों पहाड़ों पर चले गए थे, पर वह कुछ दिन

प्राग में रहना चाहती थीं, अतः रुक गई । उसे अभी तक वह चर्च याद है, जहाँ पर पिछली बार जाक के साथ आई थीं ।

रायना खुबसूरत थी और कुछ इन्टेन्स भी लगती थीं । उसकी आँखो का अजीब सा ठंड़ापन उसकी मनःस्थिति को प्रकट करता था । उसकी उम्र के बारे में निश्चित रूप से अनुमान लगाना असंभव था, हालाकि वह इण्डी से काफी बड़ी थी । पर बीती हुई, उम्र का कोई भी चिन्ह उस पर नहीं था, सिवाय आँखों के, जिनमें एक हल्की सी थकावट नजर आती थीं । जब कभी रायना अपने पति के बारे में बात करती, उसका स्वर सहज शांत ही रहता, केवल आँखे भावहीन हो जाती । रायना मौका पाकर अबोध-ढ़ंग से क्लर्ट हो जाती थीं । वह सिगरेट भी बहुत पीती है । शायद अकेलेपन को दूर करने का यह अपना तरीका है । वह किसी भी बात का विरोध नहीं करती चाहे वह डांस हो, चुंबन हो या फिर कुछ और । रायना अकेलेपन से भयभीत है । वह ज्यादा समय तक अकेले नहीं रह सकती । गर्मियों में वे सल्सवर्ग चली जाती है, सर्दियों में अक्सर पहाड़ों पर चली जाती है और शहर-दर-शहर पुरुष भी बदलती जाती है । बात-चीत के दौरान कभी-कभी उसका स्वर बहुत घूमिल हो जाता था ।

रायना चाहती है कि इण्डी उसे मिसेज रैमान के स्थान पर सिर्फ रायना कहे । ताकि जो परायेपन का बोध है वह न रहे और पहले दिन ही उसकी हँसी में "अपनापन" आ गया था, जो दिन भर नहीं था । रायना सब जगह अकेली जाने की अभ्यासी है । उसे होटल के कमरों में रहना बुरा नहीं लगता । पराये शहरों में अगर बार-बार ट्रेन बदलती रहे तब उसे अकेलापन भी इतना नहीं लगता । वह कहती है कि - "तुम उसके बारे में नहीं सोचते, जो तुम पीछे छोड़ आये हो । तुम उसके बारे में सोचने लगते हो जो तुम्हारे साथ है लेकिन अपने शहर में तुम उसके बारे में नहीं सोचते ।"[७]

पति से अलग होने का कारण पूछने पर वह स्पष्ट कहती है कि यह सच नहीं है । वे अक्सर शनिवार की शाम को या कभी सड़क पर चलते हुए मिलते हैं । उसके अनुसार तुम किसी भी चीज को पूरी तरह खो नहीं

सकते । इण्डी के साथ घूमते हुए रायना ने पहली बार वियना के बारे में बिलकुल नहीं सोचा था, या काफी आश्चर्यजनक था जब वह वियना और लड़ाई को भूल जाए । पिछली गर्मियों में आए लोगों द्वारा दीवार पर अंकित एकाध 'स्मृति' वाक्य को देखकर रायना की आँखे भीग आई । उसे लड़ाई के दिनों की याद आ गई जब कोन्संट्रेशन कैम्प की दीवारों पर लोग मरने से पहले इसी तरह लिखा करते थें । रायना चाहती थी कि अंतिम दिन के बचे हुए क्षणों में वह खूब घूमे और उस दिन उसे कोई जल्दी भी नहीं । इण्डी उसे कहता है कि क्या वह कुछ दिन और नहीं रुक सकती ? पर वह मनाकर देती है कि इसका कोई फायदा नहीं, वह इस दृष्टि से काफी अभ्यासी जान पड़ती है । वह इण्डी से कहती है, कि हमें कोशिश करनी चाहिए कि हम पहले जैसे ही है और कहती है कि वह स्वयं भी शुरु से ही ऐसा सोचती थीं ।

रायना कभी–कभी बिलकुल भूल जाती है कि इण्डी एक इण्टरप्रेटर है । वह मानेरा के डांसिग क्लोर पर रात–भर नाचना चाहती है । केवल इण्डी के साथ नहीं किसी भी युवक के साथ । रायना उस रात इण्डी के होस्टेल जाती है । वहाँ भी वह अकेली रहना चाहती है । कई बार वह इण्डी को स्पष्ट रूप से कह भी देती है कि वह ज्यादा दिन अकेली नहीं रह सकतीं । वह घर से बाहर आकर घर में लौट नहीं सकती । वह इण्डी के साथ सोने के लिए विवश है, क्योंकि उनका एकांकीपन उसे खलता है । वह स्वयं कहती है कि "मैं अधिक दिन अकेली नहीं रह सकती ।"[८] रायना ने कोलेन में जाक के संग रहते हुए कभीं नहीं सोचा था कि लड़ाई खत्म होंगीं । वे घरेलू जिन्दगी में रह नहीं पाती । क्योंकि घरेलू जिन्दगी उन्हें भयावह लगती थीं ।

होस्टल से वापस जाते हुए रायना थोड़ी भावुक अवश्य हो गई थी, वह चाहती थी कि वह इसी तरह होस्टल के कमरे में लेटी रहें । जाते हुए उसकी दोनों आँखे भीगी हुई थीं, पर वह भावुकता क्षणिक थीं । उसने जाने से पहले इण्डी को मना कर दिया कि वह स्टेशन न आए क्योंकि अच्छी तरह

जानती थी इसका कोई फायदा नहीं है । रायना उन बहुत कम लोगों में से थी जो अपने भीतर से अलग होकर भी सतह पर रह सकते हैं ।

रायना कभी असंमजस में नहीं पड़ती । वह जो कुछ करना चाहती है, अवश्य करती है । युद्ध की भयंकर छाया से आतंतिक होकर उसकी चेतना में छाई हुई उसकी मनःस्थिति ऐसी हो गई है कि जो वर्तमान है वही सही है । जैसा कि युद्ध ने उसे किसी काबिल नहीं छोड़ा था फिर भी वह अकेलेपन के क्षणों को टालने की कोशिश में इण्डी के साथ प्रेम–संबंध स्थापित कर लेती है, पर यह भी सत्य है कि यह संबंध स्थाई नहीं क्षणिक था । रायना सोचती है कि सबकुछ खो जाने के बाद भी एक नए सिरे से शुरुआत की जा सकती है ।

रायना ने अपने जीवन में बहुत–कुछ देखा सहा था । सिगरेट और तम्बाकू तो बचपन से उन्हें देखी नहीं थी, लेकिन आज चोरी–चुपके से महीनों बाद सिगरेट मिल जाती, तब उनके सुख की सीमा नहीं रहती थीं । बचपन में पोल ने रायना से यह बात कहीं थी कि ''सुख दो तरह के होते हैं, एक बड़ा सुख – एक छोटा सुख । बड़ा सुख हमेशा पास रहता है, छोटे सुख कभी–कभी मिल पाता है ... सिगरेट पीना, दण्ड में आग सेंकना, ये छोटे सुख थे... और बड़ा सुख सांस ले पाना, महज हवा में सांस ले सकना – इससे बड़ा सुख और कोई नहीं है ।''[६]

इस प्रकार रायना के चरित्र में बहिरंग के चित्रण का महत्त्व उतना नहीं है जितना उसके मनोभाव, मन की अस्थिरता, संवेदनशीलता और स्वाभाविकता का है ।

## *(ii) गौण पात्र :*

गौण पात्रों में फ्रांज, मारिया, मीता, जाक और टी.टी. आदि महत्त्वपूर्ण है इनमें फ्रांज, मारिया, मीता और टी.टी. का उल्लेख स्पष्ट है ।

❀ **फ्रांज :**

फ्रांज उपन्यास का दूसरा पात्र है जिसने युद्ध को झेला है । वह बर्लिन का रहनेवाला है । उसकी माँ अब भी बर्लिन में रहती है । उसे हर महीने माँ की ओर से कुछ न कुछ मिलता ही रहता है । इसी कारण फ्रांज के साथी उससे मजाक में कहा करते हैं कि उसे दोनों दुनियाओं का आनंद मिलता है । फ्रांज प्राग के फिल्म स्कूल में फिल्म संबंधी एक कोर्स कर रहा है । वह इण्डी से कहता है – "जानते हो, पिछले एक साल मैंने एक भी फिल्म नहीं बनाई... एक पंद्रह मिनट की फिल्म भी नहीं, जिसे मैं अपना कह सकूँ ।... वे कहते है, मेरी किसी थीम में सेहत नहीं होती... सुनो, मैं अठ्ठाईस पार कर चुका हूँ । फिल्म स्कूल में मैं सेहत खोजने नहीं आया था । उसके लिए बर्लिन में सेनीटोरियम है । मैं वहाँ रह सकता हूँ ।"[१०] यह युद्धोतर पीढ़ी की एक प्रामाणिक मनःस्थिति है । फ्रांज युद्ध की विभीषिका में से गुजर चुका है । लड़ाई की छाया अब भी उसके व्यवहार पर मंडरा रही है । वह अकेला बैठकर पियानो बजाता था । उसका रूप भी कुछ ऐसा ही था – "उसकी बड़ी आलकोहलिक आँखे, लंबा जिप्सीटाईप स्वेटर और लंबे मैले नाखून ।"[११] इसके अतिरिक्त फ्रांज के कमरे में दीवार पर लगे नियिन्सकी के चित्र का उल्लेख है । फ्रांज ने उसे शैतान कहा है । नियिन्सकी कौन है और उसकी शैतानियत का रूप क्या है, इसे वह स्पष्ट नहीं कर सकता । फ्रांज भुक्त भोगी है । इसलिए वह एक स्थान पर कहता है – "तुम्हें अपना बचपन लड़ाई में नहीं गुजारना चाहिए वह जिन्दगी भर पीछा नहीं छोड़ती ।"[१२]

फ्रांज और मारिया के संबंध उलझे हुए हैं । फ्रांज की आयु अठ्ठाईस वर्ष है – वह मारिया को अपनी लड़की कहकर उसका परिचय इण्डी से करवाता है । वह मारिया को अपने साथ जर्मनी ले जाना चाहता है किन्तु दो साल से कोशिश करने पर भी 'वीसा' नहीं मिल रहा है । वह चाहे तो मारिया से विचार करके वीसा पाने का मार्ग प्राप्त कर सकता है । पर वह ऐसा करना नहीं चाहता । यदि विचार करेगा तो सिर्फ 'वीसा' की शर्त पर नहीं । वह इस समय तो सिर्फ साथ रहते हैं । मारिया के साथ फ्रांज के

विभिन्न व्यवहारों से ऐसा प्रतीत नहीं होता कि वह मारिया के प्रति बहुत ईमानदार है । लेकिन उसके साथ विवाह जोड़ने के लिए उसका मन नहीं करता । बचपन में देखे गए युद्ध की विभीषिका उसके व्यवहार को प्रभावित और नियंत्रित करती रहती है । दूसरी ओर वह स्वयं प्रेम के उन अंतरंग क्षणों का साक्षात्कार नहीं कर पाता जिनका साक्षात्कार इण्डी करता है । इसलिए वह जैसा है वैसा ही बना रहता है । उसके चरित्र में वैसी कोमलता नहीं आ पाती जैसी इण्डी के चरित्र में दिखाई देती हैं ।

## ❀ मारिया :

मारिया और फ्रांज दोनों में एक तटस्थता और विवशता का भाव है । मारिया चेक थी और जर्मन एम्बेसी में काम करती थी । वह प्राग में अकेली रहती थीं । उसके पिता प्राग से थोड़ी दूर रहते थे । यहाँ मारिया अपने एपार्टमेन्ट में रहतीं थी ।

मारिया अत्यंत उदार चरित्र की है । वह हमेशा काफी खुश रहती है और दूसरों को भी खुश रखती है । कई बार इण्डी, टी.टी. आदि उसे रात की अनुचित घड़ियों में केवल कुछ क्राउन्स के लिए जगाते थे और जब उनके पास कुछ भी न रहता था, तब वे अक्सर मारिया के घर खाने चले आते थे । मारिया ने कभी अपने लिए किसी से शिकायत नहीं की । फ्रांज के बर्लिन जाने के संबंध में भी वह यहीं कहती है कि – “अगर मुझे वीसा नहीं मिला, तब उसे अकेले ही जाना पड़ेगा ।”[९३] मारिया के स्वर में हल्की विरक्ति थी, जो छिपती नहीं थी पर वह किसी से कुछ कहती नहीं थी ।

मारिया पिछले दो साल से कोशिश कर रहीं है कि उसे वीसा मिल जाए पर प्राग का नियम है कि अगर कोई चेक लड़की किसी विदेशी की पत्नी हो, तब वह उसके साथ बाहर जा सकती है, नहीं तो काफी दिक्कत पड़ती है । इण्डी के पूछने पर कि वह फ्रांज के साथ क्यों नहीं चली जाती, वह एक नीरव क्षण तक उसे देखती रही और फिर कहने लगी कि फ्रांज को उसकी जरुरत नहीं है । मारिया ने कभी अपना दुःख दूसरों को नहीं दिखाया । उसमें एक अदम्य साहस था, धैर्य था, एक अदभूत सहनशक्ति थीं । मारिया

निराश अवश्य थी पर निराशा का भाव कभी चेहरे तक नहीं आने देती थीं । वह बहुत सहज ढ़ंग से डेस्परेट होती थी, कोई दूसरा व्यक्ति जान भी नहीं पाता था कि वह निराश है । वह कुछ दिनों के लिए अपने गाँव जाना चाहती थीं । इन्डी के पूछने पर कि फ्रांज कब जा रहा है, वह कहती है कि उसने उससे कुछ नहीं कहा है ।

मारिया को इस बात का दुःख है कि फ्रांज को अब उसकी जरुरत नहीं है । वह फ्रांज को चाहती है, लेकिन फ्रांज मात्र वीसा के लिए उससे शादी करना नहीं चाहता । फ्रांज के बर्लिन जाने के कुछ दिन पूर्व मारिया बिना बताए कहीं चली गईं थीं । यह जानना बहुत मुश्किल था कि वह कहाँ गई है । शायद वह अपने पिता के पास गई थी । पर उसके बारे में कुछ भी निश्चित रूप से कहना असंभव था । अंत में किसी राजनैतिक कारणों से मारिया के फ्रांज के साथ प्रेम–संबंध टूट से चले थे और मारिया को इस बात का बेहद दुःख था, पर वह अपना दुःख किसी के सामने व्यक्त नहीं करती है । इस प्रकार मारिया का चरित्र भी पूरी कथा में अपने स्वतंत्र रूप से चलता रहता है ।

## ❀ मीता :

गौण पात्रों में 'मीता ऐसा पात्र है जो 'इण्डी' और रायना दोनों के ही संपर्क में आया है । वह बालक होते हुए भी समझदार है । उसमें बचपन की जिद का अभाव है । वह सब कुछ वहीं करना चाहता है जिससे उसकी माँ की प्रसन्नता है । जब वह रायना के साथ शोपिंग के लिए जाता है तो – माँ के कुछ समय के लिए न मिलने पर परेशान अवश्य हो जाता है । लेकिन वह माँ के इस व्यवहार से परिचित है । इसलिए वह आतंकित नहीं होता । वह यह नहीं चाहता कि एक 'इन्टरप्रेटर' भी उसकी माँ के इस व्यवहार से परिचय पा ले । मीता के संबंध में दूसरी महत्त्वपूर्ण बात तब दीख पड़ती है – जब वह रायना और इण्डी के साथ सेंट लारेन्तो की पहाड़ी पर जाता हैं । सेंट–लोरेन्तो के भीतर से वापस आने के बाद वह गत स्मृतियों व माँ के दुःख के कारण अंधेरे में करुण विषाद से भरकर सिसकने लगता है ।

इण्डी और रायना के बीच कहाँ उसे उपस्थित रहना है, कहाँ नहीं यह वह जानता है ।

परिस्थितिवश या तो व्यक्ति असमय प्रौढ़ हो जाता है या टी.टी. की तरह आक्रान्त हो जाता है । मीता को माँ और पिता का पूरा प्यार नहीं मिलता । मीता को परिस्थितियों ने बहुत समझदार बना दिया है । वह अपनी अवस्था से कहीं ज्यादा देखता, सोचता और अनुभव करता है – "वह अनिश्चित सा उसकी ओर देखने लगा मानो तय न कर पा रहा हो कि वह किस बात से ज्यादा प्रसन्न होंगी – उसके जाने से, या न जाने से । मुझे यह कुछ अजीब सा लग रहा था । मैं अक्सर बच्चों की जिद देखता आया था । जहाँ जिद न हों, वहाँ बचपन हो सकता है – यह मुझे अस्वाभाविक सा लगता था ।"[१४] ऐसे ही रायना का सिगरेट पीता, इण्डी के बहुत पास बैठना, साथ-साथ चलना उसे अच्छा नहीं लगता । ऐसे वक्त वह या तो शीशे से बाहर देखने लगता है या वहाँ से चला जाता है । वे दिन में 'मीता' का चरित्र आपका बंटी के 'बंटी' से कुछ-कुछ मिलता जुलता है । पति-पत्नी के तनाव के माहौल में वह अपने आपको उपेक्षित समझता है और चिड़चिड़े स्वभाव का हो जाता है । माँ और पापा उसे भीड़ में अजनबी की तरह लगते हैं । मीता की स्थिति भी ऐसी ही है अंतर केवल इतना है कि 'बंटी' आक्रामक है और 'मीता' समझदार है ।

## ❀ टी.टी. (थानथुन) :

टी.टी. की इस उपन्यास में महत्त्वपूर्ण भूमिका है । कथावस्तु के कुछ ही हिस्से में वह उपस्थित है । इण्डी के समान वह भी अकेला है । तीन साल प्राग में रहने के बाद भी वह अपने को हर बार अजनबी-सा पाता है । घर जानेके लिए वह बिलकुल भी उत्सुक नहीं है । अपना देश उसे आकर्षित नहीं करता । इतना ही नहीं अपने देश के अखबार या कोई अन्य चीज भी उसे नहीं खींचती । वह मेडिकल कोर्स कर रहा है । लेकिन उसके बाद भी वह प्राग ही रहेगा । क्योंकि घर में माँ के अलावा कोई नहीं है । वह किसी स्कूल में पढ़ाती है । वह उसके (टी.टी.) ऊपर निर्भर नहीं है । न

उससे प्रसन्न ही रहती है । जब भी वह इण्डी से वार्तालाप करता है और घर का प्रसंग आता है तब वह अपना कोई मत अभिव्यक्त नहीं करता है । घर उसके लिए अर्थहीन और हास्यास्पद है ।

टी.टी. के स्वभाव में आक्रमकता ज्यादा उल्लेखनीय है जो कहीं बहुत गहरी अधीरता के साथ जुड़ी हुई है । इसीलिए उसी अकेला छोड़ते समय इण्डी को हमेशा एक भय रहता है । पीने के बाद इण्डी उसे कभी अकेला नहीं छोड़ता । इसका कारण चेक लोगों के प्रति वितृष्णा है या उसका अकेलापन ? उसके आक्रामक स्वभाव के पीछे यहीं कारण है कि उसकी माँ बचपन से ही दूर है । टी.टी. कही भी भावुक नहीं है । लेकिन एक दो स्थल ऐसे है जहाँ वह मृत्यु के बारे में या अन्य विषयों पर सोचकर गंभीर हो जाता है । टी.टी. की माता इकलौटे बेटे के विदेश जाने पर अकेली रह जाती है । वह दूसरा विवाह करने से पूर्व अपने बेटे के सुख का विचार नहीं छोड़ सकती – इस.लिए वह विवाह के संबंध में बेटे की प्रतिक्रिया को जानने के लिए उत्सुक हैं । इस प्रकार टी.टी. का 'वे दिन' उपन्यास में सभी पात्रों के साथ का सबंध अपने स्वतंत्र ढ़ंग से दिखाई देता है ।

इन पात्रों से अलग मेकलोन्विच भी है, जो होस्टेल का सबसे पुराना विद्यार्थी है, जो राजनैतिक कारणों से अपने घर नहीं जा सकता और बंद कमरे के भीतर संगीत की करुण ध्वनि में खोया हुआ अपनी पत्नी और बच्चों की याद करता है ।

इस उपन्यास के सारे पात्र युद्ध की छाया से ग्रस्तपात्र हैं, जिन्हें एक ओर अपने परिवारों में रुचि नहीं है या उनकी रुचि को खंडित कर दिया गया है । वे अब भी अपने वर्तमान में अंतराष्ट्रीय नियमों का दबाव झेल रहे हैं ।

## *(III) देशकाल और वातावरण :*

'वे दिन' उपन्यास उन दिनों लिखा गया जब निर्मलजी १९५९ में प्राग के चेकोस्लाविया में अध्यापन के लिए आमंत्रित थे । इस उपन्यास के बारे में निर्मल वर्मा का स्वयं का कहना है कि – "वे लिखते समय रोम में एक

महिला से मिले थे, जो टूरिस्ट गाईड़ का काम करती थी और जिन्होंने लेखक को मिलने के लिए बुलाया था और जिससे वे केवल इसलिए नहीं मिल पाये, क्योंकि पास उसे 'एनरटेन' करने के लिए पैसे नहीं थे ।''[९५]

यह स्पष्ट है कि 'वे दिन' महायुद्धोतर प्रभाव के दिन थे, जिसकी छाया में सारी दुनिया का वर्तमान और बाजार पल रहा था । सारी दुनिया के युवा उस वर्तमान के प्रति उत्तेजित थे । उपन्यास में इण्डी, रायना, फ्रांज, मारिया, टी.टी. बार-बार उस युद्ध की याद करते हुए उत्तेजित हो उठते हैं । वे बार-बार अपने वर्तमान को उस युद्ध के कारण संक्रमण-ग्रस्त पाते हैं । उस युद्ध के कारण ही मेलकोन्विच अपनी बीवी-बच्चो के बीच लेनिनग्रस्त और नहीं सकता और बंद कमरे के भीतर संगीत की धुन छेड़ता रहता है । डॉ. सुधीश पचौरी ने निर्मल वर्मा की इस कोशिश को यूरोपीय संस्कृति के नष्ट होते समवाय को भारतीयता के संदर्भ में सुरक्षित रखने का उपक्रम कहा है । वह कहते है कि - ''यहाँ बहुत सावधानी से निर्मल जी को पढ़ने की जरुरत है । ... उनके चुनाव सुविधामूलक नहीं विकल्प मूलक है ।''[९६] इसी तरह डॉ. सिन्धुबाला तिवारी ''वे दिन'' की राजनैतिक संवेदनाओं को दिसम्बर के ठंडे कोहरे में स्वतंत्रता का वरदान मानती है ।[९७] स्वयं निर्मल ''उन वर्षो को चेक जाति के लिए अंधेरे युग से कम नहीं मानते ।''[९८] इस प्रकार सारे उपन्यास में वातावरण का प्रभाव दिखाई देता है ।

'वे दिन' का परिवेश अभारतीय है । भारत भूमि से सुदूर चेकोस्लाकिया की भूमि का प्राग नगर इसकी कथावस्तु का केन्द्र है । आज का उपन्यास यथार्थ की भावभूमि पर खड़ा हैं । उपन्यास का देशकाल अत्यंत सीमित है । उसका स्वरूप है उपन्यास के अवसादपूर्ण अकेलेपन की संवेदना के अनुसार है । उपन्यास की कथा तीन दिन का समय क्रिसमस की छुट्टियों का समय है । निर्मल वर्मा ने वातावरण को नाटकीयता प्रदान करने की दिशा में एक और महत्त्वपूर्ण कार्य किया है । इसमें प्राकृतिक दृश्य चित्रण के रूप में वातावरण का अंकन भी हुआ है । अतः कथानक को स्वाभाविक बनाने के लिए उचित वातावरण आवश्यक होता है ।

'वे दिन' में यूं ही मानव मन के अंतर्द्वन्द्वी, राजनीतिक अस्थिरता और उसके भीषण परिणामों, युद्ध की विभीषिका में पिसती हुई मानवता और अंतर्मन को स्पर्श करनेवाली प्रेम की कोमल अनुभूतियों का सूक्ष्म चित्रण किया गया है । इसलिए उसी के अनुरूप देशकाल और वातावरण की योजना सफलतापूर्वक प्रस्तुत हुई है । स्पष्टतः इस उपन्यास का देशकाल और वातावरण द्वितीय महायुद्धोतर समाज का देशकाल और वातावरण है, जहाँ सारी दुनिया की सीमाएँ संकुचित होकर एक मोड़ पर आ गयी है । जिसे सारी दुनिया के युवा शुद्ध होकर देख और सह रहे है ।

## (२) लाल टीन की छत :

'लाल टीन की छत' निर्मल वर्मा का दूसरा उपन्यास है । इसका प्रकाशन १९७४ में हुआ है । इस उपन्यास की कथा व्यक्ति के अंतर्मन का तथा बदलते हुए अंतर्जगत का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण लिए हुए है । यह एक किशोर वय की लड़की की कथा है । लड़की बचपन की अंतिम रेखा और किशोरावस्था की देहरी पर खड़ी है । इस समय उसके शरीर में होनेवाले परिवर्तन उसके लिए 'रहस्य' हैं । लड़की के आसपास का वातावरण इस रहस्य को और अधिक गहरा व अबूझ बना देता है ।

### *(I) कथावस्तु :*

इस उपन्यास में एक बालिका की कथा है कि वह कैसे किशोरी से युवती बन जाती है । उपन्यास का कथा-समय शिमला की सर्दियों की लम्बी और सूनी छुट्टियों का है । काया इन लम्बी और सूनी छुट्टियों को बिता रहीं हैं । उसके पिता दिल्ली में है, माँ साथ होते हुए भी अलग है । काया का बचपन विदा हो रहा है । बचपन की जगह जो आ रहा है, वह उसके लिए रहस्य भरा आतंक है । ऐसे में अकेली पड़ी काया अपने आसपास एक ऐसा मायावी जाल बुन लेती है जिसे वह चाहकर भी नहीं तोड़ पाती ।

काया जिस मकान में रहती है, वहाँ उसकी माँ, छोटे और नौकर मंगतू है । इन सभी में काया का हम उम्र कोई नहीं है । जिससे वह बातें कर

सकें । लामा थी लेकिन वह भी चली गई है, ऐसे में वह निपट अकेली है । काया की माँ गर्भवती है, इसलिए अलग कमरे में रहती है । प्रसूति के दिन दाई उसके घर आती है । दाई, मंगतू और मिस जोसुआ की गुप्त मंत्रणाएँ काया की जिज्ञासा जगाती है । जिज्ञासा में काया खिड़की से अपनी माँ की प्रसूति देखती है । यह देखने के बाद वह अन्यमनयस्क सी हो जाती है ।

इसके बाद काया अपनी बुआ के साथ 'फाक्स लेण्ड' चली जाती है । वहाँ चाचा का घर और उसके प्राणी काया के मन में एक अलग रहस्य जगाते है । यहाँ चाचा का लड़का बीरन है जो उसके प्रति लगाव महसूस करता है । चाचा के साथ रह-रही नथवाली पहाड़िन औरत है जो काया को झरने की तरफ ले जाती है और उसकी देह को टटोलती हुई उसके रजस्वला होने के बारे में पूछती है ।

उपन्यास में मिस जोसुआ की मौत काया को गंभीर बना देती है । उनकी मौत के बारे में सुनकर काया भरी दोपहर में उसी सुरंग की तरफ चल देती है जहाँ गिन्नी ने दम तोड़ा था । मरते वक्त गिन्नी की आँखों की तड़प उसके मन में समा गई है । इसी समय रेल्वे लाईन से घड़घड़ाती हुई ट्रेन गुजरती है और काया को देह में भयंकर पीड़ा उठती है । काया रजस्वला होती है । इसी के साथ वह महसूस करती है कि वह सभी रहस्यों से छुटकारा पा चुकी है... वह मुक्त हो गई है ... ।

'लाल टीन की छत' एक किशोरी से युवती बनने की कहानी है । किशोरी और युवती बनने के बीच का जो समय है, वह एक ओर अकेलेपन, भोलेपन, आतंकमय और भ्रम से भरा हुआ है । दूसरी ओर उसमें आगत यौवन का आकर्षण भी है । काया इस आकर्षण को छूना भी चाहती है और इससे पूर्व की प्रक्रिया के भय से आतंकित भी है । यहीं द्वंद्व उसके चरित्र को महत्त्व प्रदान करता है ।

काया इस उपन्यास का केन्द्रिय चरित्र है । उसका चरित्र पूरे उपन्यास पर छाया है । काया के पात्र में अकेलेपन, की अनुभूति है जिसे लेखक ने अन्य पात्रों के अकेलेपन से मिलाकर पूरे उपन्यास में घने और गहरे अकेलेपन

का वातावरण बना दिया है । यह अकेलापन उपन्यास के चरित्रों पर ही नहीं पाठक के मन पर भी प्रभाव छोड़ता है ।

उपन्यास के निर्माण में निर्मल वर्मा ने अपनी कलात्मक शक्ति का भरपूर प्रयोग किया है । उपन्यास कि रचना का आधार काया की 'स्मृतियाँ' बनती है । स्मृति के आधार पर स्थितियों, संवेदनाओं एवं अनुभूतियों का कलात्मक संयोजन हुआ है । हर उपन्यास की तरह इस उपन्यास में भी भाषा का विशिष्ट प्रयोग हुआ है, जो कथाकार की भाषा की सर्जनात्मक क्षमता का परिचय देती हैं ।

## *(II) पात्र या चरित्र :*

'वे दिन' की अपेक्षा 'लाल टीन की छत' में पात्र संख्या ज्यादा है । 'वे दिन' में प्रमुख और गौण पात्र मिले हुए हैं । लेकिन 'लाल टीन की छत' में वे स्पष्ट रूप से अलग-अलग दिखाई देते हैं । इस उपन्यास का प्रत्येक पात्र अपनी एक-अलग ही किस्म की पीड़ा से पीड़ित हैं । सभी पात्र अपने-अपने कमरे में बैठे है । माँ अपने बिस्तर पर, बाबू दिल्ली में, काया घने जंगलों में, बुआ मेरठ में, लामा एक चार दीवारी में, बीरु अपने पियानों के सामने, मिस जोसुआ अपने कमरे में, चाचा लायब्रेरी में, नथवाली औरत अपनी कोठरी में, पहाड़ी रसोई में, मंगतू अपने क्वार्टर में और छोटे अपने कमरे में । सभी पात्र एक-दूसरे की पीड़ा से बेखबर है । इस उपन्यास के अन्य पात्र है, गिन्नी, दाई माँ, भोलू, हरिया आदि । ये सभी पात्र उपन्यास को अलग ही वैशिष्ट्य देते हैं ।

## *(i) मुख्य पात्र :*

### ❀ काया :

उपन्यास की नायिका काया बारह-तेरह वर्ष की बालिका है । पूरा उपन्यास उसकी मनो-भावनाओं, उसकी संवेदनाओं एवं उसके अनुभवों का चित्रण प्रस्तुत करना प्रतीत होता है । काया का चित्रण उपन्यास में सबसे अधिक हैं । कथा आदि से अंत तक काया को लेकर चलती है । प्रारंभ में

काया का अकेलापन, मध्य में काया के चरित्र की खींचतान और अंत में पुनः काया की मनःस्थिति का चित्रण है ।

'लाल टीन की छत' में बचपन और यौवन की सीमा रेखा पर स्थित लड़की की अत्यंत आंतरिक मनोदशाओं का अतिशय सूक्ष्म चित्रण है । काया की अपनी कोई भाषा नहीं, कुछ घटनाएँ है, कुछ लोग है, कुछ जगह है काया उन्हें अनुभव करती है । लेकिन उसी अनुभवों को भाषा में व्यक्त नहीं करती – व्यवहार में व्यक्त करती हैं । काया के चित्रण में एक विकासक्रम है । माँ की गर्भावस्था को यह भोली लड़की समझ नहीं पाती है । यह बात उसके मन में गहरे तक जमी हुई है और वह अपने भीतर के बंद खून को अंत में बहाकर ही पूर्ण युवावस्था प्राप्त करने पर ही कुछ पाना चाहती है । वह अकेलेपन की पीड़ा से दूर भागने के लिए छटपटा रही है । हर किसी से जुड़ने का प्रयास करती है । जिनमें लामा, उसका छोटा भाई छोटे, गिन्नी, नौकर मंगतू, दाई का असामान्य लड़का भोलू, देवी काली–माता, चाचा का लड़का बीरु, नथवाली औरत और पहाड़ी है । वह उसके जुड़ने का जितना प्रयास करती है, उतना ही अपने को अकेला पाती है । काया के चाचा कहते हैं – ''तब तुम सिर्फ दो बरस की थीं ।... तब तुम्हारी चाची जिन्दा थी ।... उन्होंने ही तुम्हारा नाम रखा था । तुम इतनी पतली थीं कि सिर्फ हड़ियों का ढ़ाँचा दिखाई देता था ।''[१८]

काया जिस परिवार की है वह खुद अकेलेपन से त्रस्त है । काया का एक परिवेश है जिसने उसे अकेला कर दिया है । काया के पिता दिल्ली में रहते हैं और उन्होंने परिवार को एक पहाड़ी प्रदेश में रख छोड़ा है । परिवार में सब होते हुए भी वातावरण बदलता है । माँ अपनी स्थिति के कारण अकेली रहना चाहती है । छोटे जो काया के भाई हैं उससे जुड़ नहीं पाते । ये भाई–बहन एक–दूसरे की मदद करने में भी असमर्थ है । काया के पिता भी उससे भौगोलिक रूप में ही नहीं मानसिक रूप में भी दूर है । माँ भी काया से बिना बोले रहती है । परंतु काया संवेदनशील है । माँ जैसे ही उसके सिर पर हाथ रखती है उससे आँसू बहने लगते है – ''उन्होंने काया

के सिर को अपने हाथों से ढ़ाँप लिया... उस रात के बाद पहली बार काया से बोली थीं । पहली बार उसे अपने हाथों से छुआ था – वहाँ, जहाँ बहुत से सुनसान किस्म के आँसू जमा थे और माँ की अँगुलियाँ लगते ही वे झरने लगे ।''[२०]

काया एकरस जिन्दगी काट रही है । जीवन का रस मानो सूख गया है । लेकिन जिन्दगी की वास्तविकता का वहाँ पता लगता है जब वह चाचा के घर जाकर नथवाली औरत से मिलती है । काया की निरसता का कारण भी अकेलापन है । परंतु इस पीड़ा से मुक्त होने के लिए भोलू से मिलने का उसका प्रसंग बड़ा अस्वाभाविक लगता है । उपन्यास में भोलू का जो वर्णन है वह घृणा उत्पन्न करता है । आश्चर्य होता है कि असामान्य बालक भोलू के प्रति, जिसके वर्णन मात्र से ही घृणा उत्पन्न होती है – काया कैसे आकर्षित होकर शारीरिक चेष्टाएँ करती है । भोलू में न ही शारीरिक सौंदर्य है न ही मानसिक । इस प्रकार काया और भोलू का प्रसंग अनावश्यक प्रतीत होता है । काया का चरित्र कुछ ऐसा है कि वह किसी के प्रति भी आकर्षित हो जाती है । मंगतू काया के यहां नौकर है । काया उसकी ओर खिंचती जाती है । कौन सा आकर्षण है इस बात को वह भी नहीं जानती थी – ''दोनों को बाँधनेवाली रस्सी कहीं नजर नहीं आती थी ।''[२१] वह मंगलू के यहाँ आती है किसी को पता नहीं है । वह यहाँ क्यों आती है ? उसे भी पता नहीं है । किन्तु देह की दुर्गन्ध इन दोनों को दूर करती है । काया किस व्यक्ति से क्या चाहती है यह स्पष्ट नहीं होता ।

काया चाचा के यहाँ जाती है तब उसके चरित्र संबंधी नये तथ्य उजागर होता है । मालूम होता है कि काया में जीवन रस है । इसलिए वह नथवाली औरत से जुड़ने का प्रयास करती हैं । काया को सभी अपने-अपने तरीके से साथी बनाना चाहते है । फलस्वरूप काया को अपने केन्द्र से बाहर आने का मौका मिलता है । उसके लिए घर एक किला है, जिसका हर कोना रहस्यमय है । बीरु और काया का संबध भी अलगाव को सूचित करता है । चाचा और बीरु इन दोनों के बीच काया भटकती रहती है । कभी एक के पास

जाती तो दूसरा अजनबी–सा जान पड़ता, दूसरे को पहचानने लगती, तो पहला दूभर हो जाता । किसी की भी मानसिकता दूसरों को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है ।

उपन्यास में कई एसे प्रसंग आये हैं जो काया के जीनव में हलचल पैदा करते है – लेकिन उसे पूरी तरह जगा नहीं पाते । जैसे गिन्नी की मृत्यु, मृत शिशु का जन्म, मिस जोसुआ की मृत्यु । जो चीज काया को पूरी तरह जगा देती है, वह मृत्यु का ठंड़ा स्पर्श नहीं, पहाड़ी स्त्री की अनगढ़ गर्म और कामुक निकटता है । अंत में जिस परिवर्तन को काया में एक परिणति के रूप में विघटित होना चाहिए वह भी एक भावोद्गार के रूप में प्रकट होता है जैसा कि – "मैं हो गयी थीं । मैं ईश्वर के पास पहुंचकर उसके परे निकल गयी थीं ... ।"[२२]

काया की प्रसुप्तावस्था का अंकन प्रभावशाली हुआ है । काया का अन्य पात्रों से संबंध भी मानो एक दूसरे तरह का सम्मोहन है, जो मुक्त करने या बाँधने के बजाय बार–बार अपनी ही दुनिया में वापस ढ़केल देता है और उसे हर रिश्ते को नये सिरे से शुरु करना पड़ता है । सेक्स, जन्म, मृत्यु आदि से संबंधित जानकारी का गोपनीय और रहस्यमय वातावरण की वह दुनिया है जिसे काया अनुभव तो करती है, पर समझ नहीं पाती । इन घटनाओं से उसमें विस्फोटक प्रतिक्रिया नहीं उत्पन्न होती । काया आसपास की दुनिया से, जिन्दगी से अछूती है । बस एक मनोदशा का मार्मिक चित्रण ही उभर पाता है ।

काया के चरित्र की सबसे बड़ी दुर्बलता यह है कि उसकी मानसिकता किसी भी स्थिरता को ग्रहण नहीं करती । अपनी पन्द्रह–सोलह वर्ष की अवस्था तक न कहीं उसका विश्वास टिकता है, न कहीं कोई स्थिरता उसमे पैदा होती है । वह उन लोगों से भी नहीं जुड़ पायी जिनमें जीवन के तत्त्व विद्यमान है और जो उपन्यास के अन्य पात्रों की तरह अपने अकेलेपन से बँधे हुए नहीं है । यह आशा की जा सकती थीं कि वह बुआ से जुड़ती, लेकिन उसका आभिजात्य उसे उनसे जुड़ने नहीं देता । उनकी धोती, उनकी नेपोलियन सी मुद्रा, उनके बूढ़े नंगे पाँव उसमें उनके प्रति वितृष्णा उत्पन्न करते हैं ।

आश्चर्य यह होता है कि वह उनकी संवेदनशीलता, उनकी विवशता और उनकी गरीबी को क्यों नहीं देख पायी ? बुआ उसके उपहास का ही पात्र क्यों है ? इसी प्रकार नथवाली औरत के साथ भी वह अपने आप को नहीं जोड़ पायी है । नथवाली औरत की बजाय वह बुआ के साथ जुड़ जाती है । बुआ की ममता भी उसके प्रति है । इसके विपरित जिन पात्रों से उसे उपन्यासकार ने जोड़ने का प्रयत्न किया है वे ऐसे पात्र नहीं है जिनसे कोई प्रतिक्रिया उत्पन्न हो सकें । जैसा कि छोटे बहुत छोटे हैं । लामा इतनी ऊर्जावान है कि वह उसकी पहुँच से परे है । भोलू मनुष्य के स्तर तक पहुँचा हुआ नहीं है, वह अविकसित है । मंगतू के साथ उसके वर्ग संस्कार है । वह भूल ही नहीं पाती कि वह नौकर है । इसलिए इन पात्रों से काया के जुड़ने का प्रश्न ही नहीं उठता । इन सब का फल यह हुआ कि काया अपना निर्माण ही नहीं कर सकीं है । वह एक झिलमिल मनःस्थिति बनकर रह गयीं है ।

## *(ii) गौण पात्र :*

### ❀ मिस जोसुआ :

मिस जोसुआ काया के पड़ोस में रहनेवाली 'लाल टीन की छत' की मालकिन है । वे अकेली है और बुढ़ापे में अपने परिवेश से पूरी तरह कट चुकी है । उन्हें मौत का इन्तजार है । उपन्यासकार ने मिस जोसुआ के चरित्र का एक पहलू प्रत्यक्ष शैली में दिया है – ''मिस जोसुआ बहुत दुबली–पतली औरत थीं – सींक–सी लम्बी, सिर पर हमेशा ऊनी हैट पहने रखतीं, जिसके बाहर सफेल बाल छितराकर माथे पर झूलते रहते । वह निचली मंजिल बाल छितराकर माथे पर झुलते रहते । वह निचली मंजिल में रहती थीं ।''[२३] मिस जोसुआ लड़ाई के दिनों में शिमला आई थीं । लड़ाई के बाद उनके पति इंग्लैंड लौट गये, लेकिन पहाड़ी प्रदेश के प्रति अधिक प्रेम होने के कारण वह हमेशा के लिए अकेली रहने लगी । शुरु में मिस जोसुआ के पति दो तीन बार मिलने अवश्य आ जाते थे । मिस–जोसुआ का लेटर–बाक्स चिट्टियों से भरा रहता है । परंतु चिट्टीयों के प्रति भी उनकी दिलचस्पी खत्म हो गई है ।

मिस जोसुआ को अपने देश से प्रेम है । वे वहाँ के अखबारों को नियमित मँगवाती है ।

मिस जोसुआ निरुत्साही परंतु स्नेहशील महिला है । उन्हें बड़ा आश्चर्य होता है कि – ''काया के बाबू अपने परिवार को पहाड़ी प्रदेश में अकेला छोड़कर बाहर क्यों जाते हैं ।''[२४] उन्हें काया और छोटे के अकारण घूमने पर तरस आता है – ''मिस जोसुआ कुछ ज्यादा ही स्नेहशील बन जातीं... उन्हें बाहर भटकता हुआ देखतीं, तो अपने पास बुला लेती... जैसे वे कोई हिंस्त्र जन्तु हो, छिले हुए घुटने, धूल में अटे बाल, भूखी, भाँय-भाँय करती आँखे... जैसे बाबू के जाने के बाद ही उनकी यह दुर्दशा हुई है... फिर अंतिम निर्णय लेकर उन दोनों के सामने बहुत गंभीर स्वर में आमंत्रण देती... मैंने कुछ केक बनाये हैं ।[२५] मिस जोसुआ के द्वारा काया के परिवार को मदद भी मिलती है । उनका कमरा काया और छोटे को शांति देता है । वे समय आने पर अपनी छड़ी से टटोलते हुए माँ के कमरे में भी पहुँच जाती है । मिस जोसुआ का चरित्र स्वाभाविक है । उपन्यासकारों ने इनके लिए जादूगरनी, सफेद बुढ़िया, संबोधनों का प्रयोग किया है । उनके चरित्र को इन संबोधनों के अनुरूप ही ढ़ाला गया है । वे काया को बचपन के दिनों से देखती आई थीं । वे उसे डाँटती है, समझाती भी हैं ।

### ❀ नथवाली औरत :

उपन्यास में नथवाली औरत जीवंत पात्र है । संपूर्ण उपन्यास पढ़ने के बाद नथवाली औरत की छवि मनमस्तिष्क पर छा जाती है । उपन्यास में उसका प्रवेश दूसरे भाग में होता है । पहाड़ी के माध्यम से काया नथवाली औरत से जुड़ती है । उसका घर चाचा के घर से कुछ दूरी पर है । कमरे की सज्जा स्वाभाविक थी, जो न छलावे की थी, न भोलेपन की, बल्कि दोनों से अलग निर्दोष भेद से भरी हुई । उसके रूप का जो वर्णन उपन्यास में है उससे उसकी मूर्ति आँखों के समक्ष खड़ी हो जाती है – ''होंठो के बीच एक छोटी सी खाई थी, जो नथ के नीचे बारबार चमक जाती थी । वह हमेशा भरे गले से बोलती थी – तीखा, साफ, लेकिन कुछ डरा –सा स्वर जैसे उन्हें

खुद अपने शब्दों पर विश्वास न हो । हाथ दुपट्टे के नीचे छिपे थे, लेकिन लहँगे से बाहर निकले पैर दिखायी देते थे – महेंदी में रंगे हुए लाल, जिन पर चाँदी के कड़े झूल रहे थें ।''

काया के लिए नथवाली औरत का निमंत्रण गोपनीय था । उसके और काया के वार्तालाप से चरित्र की कुछ रेखाएँ स्पष्ट होती हैं । काया के चाचा अपने अकेलेपन को दूर करने के लिए पहाड़ी स्त्री को लाए थे । उसके साथ उसका लड़का पहाड़ी भी था । उसका क्षेत्र चहार दीवारी तक सीमित हैं । आँखे निर्विकार है । न गुस्सा, न नाराजगी, न कोई पीड़ा । उसका पति जो अब नहीं था – केवल उसकी पीठ के निशान और पहाड़ी को अपने पीछे छोड़ गया था । वीरु को उससे चिढ़ थी । वह इस पहाड़ी स्त्री को जादूगरनी समझता था । पूरे उपन्यास में काया और नथवाली औरत के संबंधों का अंकन सुंदर ढ़ंग से हुआ है ।

सामाजिक आर्थिक दबावों के कारण ही नथवाली औरत के चरित्र को साकारता मिल पाई है । अन्यथा इस उपन्यास में बुआ के पात्र को छोड़कर अन्य सभी पात्र बहुत कुछ निराकारता लिए हुए हैं ।

### ❀ बुआ :

'लाल टीन की छत' में बुआ की भूमिका भी अधिक नहीं है । लेकिन अपने भाईयों के विपरीत उपन्यास में वे उस पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करती है जो संस्कारतः सामाजिक एवं आत्मीय है । भाई उनके प्रति कितने ही तटस्थ हों वे बार–बार उनके पास भागकर आती है । वे भाईयों को डाँटती और समझाती है । उनके मन में उनके प्रति गुस्सा भी है और प्रेम थी । उनकी जीवन पद्धति से शिकायत भी है और उसे बदलवाने का आग्रह भी उनके भीतर है । लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिलती । वे जब भी भाईयो से मिलती है वे ही वे बोलती है, इसलिए नहीं कि बोलना उनका स्वभाव है, बल्कि इसलिए कि जो दूसरा पक्ष है वह बर्फ की तरह सर्द बना रहता है । उसमें कोई प्रतिक्रिया ही नहीं है । इसलिए उन्हें जो कुछ करना होता है वे कहकर चुप हो जाती है । उनका सारा कहा हुआ जैसे किसी चट्टान से टकराकर पुनः उन्हें तक लौट

आता है – "लेकिन बुआ की सुननेवाला कोई न होता – काया बहुत दूर होती । वह खाली हवा में कड़कती हुई चारों तरफ देखती – पहाड़ और उनके पीछे पहाड़.. वह जोर–जोर से चिल्लाने लगती, और उन्हें अपनी ही आवाज पहाड़ो से भूत बनकर लौटती हुई सुनाई देती ।"[२६]

बुआ हमेशा अपनी लड़की लामा से परेशान रहती है । लामा के पिता जीवित नहीं है । बुआ को अपने भाईयों की चिंता भी सताती है । वे कहती है – तुम उसे गृहस्थी कहते हो ?... वह खुद दिल्ली में रहता है, दोनों बच्चे अनाथों की तरह जंगलों में घूमते है – मैं आज तुम्हें बताती हूँ, लामा को मैंने इस घर में भेजा, यह मेरी सबसे बड़ी गलती थी ।"[२७] बुआ को शिमला का घर, घर नहीं लगता । इसलिए वह वहाँ रह नहीं पाती । चाचा उसे अपने पास रखने के लिए तैयार नहीं है । ऐसी स्थिति में वे मेरठ में अकेली रहती है । भाईयों के ऐसे व्यवहार के प्रति स्वाभाविक संताप उनके मन में हैं । लेकिन दोनों भाईयों के न पूछने पर भी बार–बार उनके यहाँ भागती दौड़ती है ।"... तुम दोनों भाई मुझसे अलग रहते हो... साल में दो–तीन बार भागी–भागी तुम्हारे पीछे आती हूँ कभी इसके बारे में सोचा है ।"[२८] यह हो सकता है कि बुआ के मन में भाईयों से थोड़ी बहुत आर्थिक मदद लेने की भावना रही हों ।

अपने भाईयों के बीच आ जाने पर भी बुआ अपनी आर्थिक स्थिति को भूलती नहीं हैं । एक तो वे पैदल ही चलती हैं जिससे पैसे खर्च न हों और अलग रिक्शे में बैठती हैं तो बैठने से पूर्व पूरा मोल–भाव करती हैं । इसलिए रिक्शावाले बुआ को देखते ही घंटी बजाते हुए निकल जाते हैं – "कभी एक के पास जातीं, कभी दूसरे के पास, दो आने चींटी की तरह रेंगते हुए आठ आने तक जाते, और वहाँ रुक जाते, वहाँ से दो रूपये तक की यात्रा असंभव हो जाती और काया की आँखों से आँसू ... बहने लगते ... कभी–कभी कोई रिक्शावाला हारकर कहता, भाईजी, रिक्शा छोड़िये, आपके लिए तो घोड़ा ठीक रहेगा, सस्ता और तेज भी ... ।"[२९] उनका यह आचरण काया और यहाँ तक की लामा को भी बुरा लगता है । वे बुआ के इस आचरण से शर्मिन्दा होती

है । इस प्रकार उपन्यास के अनेक पात्र हमारी स्मृति से ओझल हो जाते हैं लेकिन बुआ की छवि हमारी स्मृति में बनी रहती है ।

❀ लामा :

लामा भी इस उपन्यास की एक महत्त्वपूर्ण स्त्री पात्र हैं । लामा काया की बुआ की लड़की है जो कुछ महीने पहाड़ी शहर में उनके पास रहकर अचानक मेरठ चली गई थीं । उसका चरित्र उदण्ड़ता के रूप में अभिव्यक्त है । परंतु जिस लड़की का पिता जीवित न हो, मामा जिसमें रुचि न रखते हों ऐसी लड़की की उदण्डता स्वाभाविक है । एक स्थान पर लामा के रूप-रंग का चित्रण इस प्रकार है – ‘‘अपने दुपट्टे को गले में बाँधे हुए, छोटा सा माथा, जिसके ऊपर बालों की एक महीन रेखा धुप में सफेद सी जान पड़ती । मौंहे भी सफेद, सिर्फ पलकें अपनी तेज झपकियों से धूल को उठा देती – और उनके बीच आँखें, जो दुनिया को कहीं बाहर से देख रही होती, एक बेडौल से फैलाव में फैली हुई, सख्त और साफ, न कुछ देती हुई, न कुछ मांगती हुई ।’’ लामा हमेशा उखड़ी उखड़ी रहती है । उसे विवाह की बात पता चलते ही काया के हाथ, एक अनाम चिठ्ठी देती है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि जहाँ लामा का विवाह होना है वह उसे पसंद नहीं है ।

उपन्यास में लामा किसी परिणति तक नहीं पहुँचती । कथानक में यह पात्र बीच में ही छूट गया है । उपन्यास के अंत तक उसके नाम का एक दो बार ही उल्लेख है । उसका अपूर्ण और अधूरा-चित्रण उसके व्यक्तित्व के अधूरेपन और अपूर्णता का संकेत करता है ।

❀ चाचा :

काया के चाचा और बीरु के पिता हैं । वे रिटायर्ड फौजी अफसर हैं । उन्होंने कब्रस्तान के पास का घर खरीदा है । बीरु के अलावा कोई अन्य निशानी न छोड़ जानेवाली पहली पत्नी की कमी को पूरा करने के लिए वे नथवाली औरत को लाए हैं । वह पास ही क्वार्टर में रहती है । पहाड़ी-स्त्री के साथ उनका व्यवहार आत्मीयतापूर्ण नहीं है । वे रोज वहाँ

जाकर केवल अपना कर्तव्य पूरा करते है । प्रेम या सहानुभूति नहीं है । नथवाली औरत के प्रति उनका जो व्यवहार है वह अनिवार्य प्रतीत होता है । चाचा निराश है । उनकी हँसी में भी निराशा झलकती है । जैसे – ''यह सब बदल जाता है – मैं हर रात यहाँ आकर देखता हूँ, बारह महीनों.... तुम जो जब देख रहीं हो । पेड, पहाड़, जंगल,... गर्मी की रातों में ये सब फैल जाते है तब इतनी साँस तक सुनायी देती है... इन दिनों जैसा नहीं, ये दिन भयानक है ... ।''[३०] इसी प्रकार चाचा का इस उपन्यास में दूसरे पात्रों की तरह अकेलेपन से पीड़ित थे । वे अपनी लाईब्रेरी में ही बैठे रहते थे और अपने अकेलेपन को दूर करने के लिए कभी नथवाली स्त्री का, तो कभी शराब का सहारा लेते थे ।

### ❀ नौकर मंगतु :

मंगतू ऐसा पात्र है जिसने काया को बचपन से देखा है । वह काया के यहाँ नौकर है । काया अकेलेपन से मुक्त होने के लिए मंगतू से जुड़ने का प्रयत्न करती है । वह जब भी मंगतू की कोठरी में जाती है राहत अनुभव करती है । दोनों में आकर्षण है इस बात को वह जानते नहीं है । उपन्यासकार मंगतू का जो परिचय दे रहा है वह आकर्षक नहीं है – ''एक आदमी कोई लामा सिप्पी जैसा लगता है । मैंने सोचा, भीख माँगने आया है दो लम्बी चोटियाँ करके आया है – टांगों पर पट्टियाँ बंधी है, चलता है, तो पैरों में कड़े बजते हैं ।''[३१] मंगतू संवेदनशील पात्र है । जब काया चाचा के यहाँ जाती है तब मंगतू के अचानक आनेवाले प्रसंग के पीछे संवेदनाओं का जाल बुना गया है । मंगतू उपन्यास में तीनो खण्डों में अपना थोड़ा–थोड़ा अस्तित्व बनाएँ रखता है । इसका महत्त्व इस उपन्यास में इसलिए है कि वह काया को नथवाली औरत से मिलाने का माध्यम बनता है ।

इस प्रकार 'लाल टीन की छत' का प्रत्येक पात्र अपनी एक अलग ही किस्म की पीड़ा से पीड़ित है ।

## (III) देशकाल और वातावरण :

यह उपन्यास भारतीय समाज में उस मध्यमवर्ग का आईना है, जो जीवन भर संबंधों के बीच खोया हुआ नैतिकता – अनैतिकता के बीच झूलता रहता है । यहाँ तक कि उसे बदलती उम्र में देह परिवर्तन और परिपक्व लगते है । इस पाप बोझ से माँ ग्रस्त है । यही पाप–बोझ उन्हें लामा को काया से अलग कर देता है । इसी पाप का बोझ मिसेज जोसुआ ठो रहीं हैं और यही पाप एक भरपूर अहसास के रूप में नथवाली औरत पहाड़ी स्त्री के मोहक व्यक्तित्व को खण्ड़ित किये हुए है । यह पाप ही बीरु के मन में नथवाली को जादूगरनी साबित कर देता है और इसी पाप के कारण बीरु काया से जुड़ नहीं पाता । चारों और एक शर्म का माहौल खड़ा हो गया था ।

'लाल टीन की छत' उपन्यास मनुष्य के अंततः से बाहर निकलने की छटपटाहट की एक क्रमबद्ध गाथा है । यह स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज का देशकाल और वातावरण है, जिसे निर्मल वर्मा ने इस उपन्यास में मनुष्य के आपसी संबंधों के माध्यम से उजागर किया है । इस उपन्यास में वातावरण की सुंदर सृष्टि हुई है । सारी कथावस्तु का केन्द्र शिमला और उसका एक हिस्सा फाक्सलैन्ड है । उपन्यास में मनःस्थिति का अंकन अधिक है । जैसा कि – "यह एक आत्मविद्वता है, जो संबंधों की बुनावट के भीतर रह–रहकर कौंध जाती है और जिससे घर का हर सदस्य लहू–लुहान सा जान पड़ता है ।"[३२] इस विद्वता का परिणाम यह है कि "लाल टीन की छत" के पात्र निष्क्रिय और ठहरे हुए हैं, परंतु भीतर से वे अतिशय चौकन्ने, सतर्क और हर क्षण खतरें की आशंका से भयभीत है । एक–दूसरे को जानना और एक–दुसरे से संपर्क स्थापित करना उनकी मानसिकता और संस्कारों में नहीं हैं ।

वास्तव में निर्मल वर्मा पश्चिमी संबंधों से आक्रांत भारतीयता की ओर लौटकर उसे कहीं स्वदेश में परिभाषित करना चाहते हैं । जिस युद्धोतर समाज में पश्चिमी देशों को प्रेम के चरम पर असहाय बना दिया है । उसने

भारतीयता को संबंधों के शीर्ष पर आशंकित और भयग्रस्त कर रखा है । शायद इसीलिए सुधीश पचौरी का तर्क है कि – ''निर्मल की समस्याएँ अनदेखी समस्याएँ है । मनुष्य सामूहिक स्मृतियों के सघनीकरण के भीतर दमन से प्रभावित है । यही कारण है कि वह समुदाय के धरातल पर जाती और लिंग का दमन यथावत सहता रहता है ।''[३३] भारतीय समाज में संबंधों का यह दमन और उससे उपजी हुई स्थितियाँ ही निर्मल वर्मा का इतिहास बोध है, जिसे वह भारतीय देशकाल और वातावरण के धरातल पर चित्रित करना चाहते हैं ।

इसी तरह हर उपन्यास की तरह इस उपन्यास के गठन में निर्मल वर्मा ने अपनी कलात्मक शक्ति का भरपूर प्रयोग किया है । उपन्यास की रचना का आधार काया की 'स्मृतियाँ' बनती है । स्मृति के आधार पर स्थितियों, संवेदनाओं एवं अनुभूतियों का संयोजन हुआ है । काया इस उपन्यास का मुख्य चरित्र है जिसे पूरे उपन्यास में आदि से अंत तक कलात्मकता के साथ प्रस्तुत किया है । पात्र के अकेलेपन की जो अनुभूति है लेखक ने अन्य पात्रों के अकेलेपन से मिलाकर पूरे उपन्यास में गहरे अकेलेपन के वातावरण में पहुँचा दिया है । वह अकेलापन उपन्यासों के चरित्रों पर ही नहीं बल्कि पाठक के मन पर भी 'लाल टीन की छत' उपन्यास में कथावस्तु, पात्र, देशकाल–वातावरण, भाषा शैली सभी दृष्टि से एक सफल उपन्यास के रूप में उभरता है ।

## (३) एक चिथड़ा सुख :

'एक चिथड़ा सुख' निर्मल वर्मा का तीसरा उपन्यास है जो १९७९ में प्रकाशित हुआ । प्रस्तुत उपन्यास में आधुनिक नवयुवकों की कथा है जो संघर्ष करते हैं, झेलते हैं और अनाम ही बीत जाते हैं । इस उपन्यास में उन मानसिक तनावों का यथार्थ चित्रण है जिसमें पड़कर आदमी प्रायः टूट जाता है ।

ममता कालिया एक जगह लिखती है – ''सूनी सड़कें, सूखे पत्ते, अनजाने दरख्त, बर्फ का गिरजा, वक्त–बेवक्त पहाड़ी अकेलापन, बीयर की बोतलें और इन सबके बीच में चुनी एक उदास प्रेम कहानी – निर्मल वर्मा

की वर्कशाप के ये अनिवार्य औजार है । इन्हीं गिनी–चुनी चीजों में निर्मल वर्मा हर बार एक अनजाना लेकिन बेहद प्रिय, मोहक व मोहित संसार निर्मित कर लेते हैं । 'एक चिथड़ा सुख' भी पाठक को एक बार फिर उसी संसार में सैर करा देता है, फर्क केवल इतना है कि इस उपन्यास के पात्र बिट्टी, कजिन, डैरी, नीति, विदेश से पलट व पहाड़ो से उतरकर अब मैदानों में आ गये हैं, वे दिल्ली की बरसातियों में, टूटे थियेटरों और उजाड़ बंगलो में बस गये है ।"[३४]

## (१) कथावस्तु :

'एक चिथड़ा सुख' मूल रूप में एक १४–१५ वर्षीय लड़के मुन्नू की डायरी के पन्ने हैं जिसमें उन चार महीनों की समस्त गतिविधियाँ अंकित हैं जो उसने अपनी कजिन बिट्टी के साथ दिल्ली में रहते हुए देखी थीं, अनुभव की थीं । पर उस समय वह उन तमाम गतिविधियों को पूर्णरूपेण समझ नहीं पाया था ।

कथावस्तु १२ भागों में विभाजित है, जिसका आरंभ कथावाचक की डायरी में लिखे हुए कुछ पन्नो से होता है । जिसमें उन दिनों की गाथा है जो उसने दिल्ली जैसे मुर्दा शहर में बिताए थे, क्योंकि वह बीमार रहता था, स्कूल नहीं जाता था । इसलिए वह अपनी कजिन बिट्टी के पास आ गया जो दिल्ली में एक बरसाती में रहती थीं, परिवार को छोड़कर सबसे अलग । बिट्टी की गृहस्थी इतनी अस्थायी थीं, इतनी छोटी कि उसे किसी भी लमहें छोड़कर निकला जा सकता था ।

मुन्नू दिनभर बिट्टी के साथ घिसटता जा रहता था, वह घर में अकेला नहीं रहना चाहता था इसलिए जहाँ–जहाँ बिट्टी जाती वहीं भटकता रहता था । कभी ऊब जाता जो वह घर लौट आता रास्ते में उन लड़कों को देखता रहता, जो घास पर बैठे परीक्षाओं की तैयारी में जुटे रहते । घर के दरवाजे पर कागज के पुरजे फँसे होते जिनमें बिट्टी का मुन्नू के नाम कोई न कोई संदेश लिखा रहता । "मैं रिहर्सल में हूँ" "मैं आयी थी, तुम कहाँ थे ?", "खाना खा लेना मैं देर से लौटूँगी ।" आदि । पर बेचारा मुन्नू दरवाजा खोले

बिना टैरस पर लेट जाता । उसे दिल्ली व इलाहाबाद में काफी अंतर लगता था । इलाहाबाद में उसके पिता उसकी सेवा–शूश्रूषा करते थे । पर यहाँ ऐसा कुछ नहीं था, बिट्टी उसके पास होकर भी बहुत दूर भी । हाँलाकि वे एक ही बरसाती में रहते थे, फिर भी वे एक–दूसरे से बहुत दूर थे । बिट्टी की अपनी दुनिया थी, जिसकी बातें मुन्नू को समझ नहीं आती थीं । और जब वह बिट्टी को सोचते हुए देखता तो सहम–सा जाता था, क्योंकि उसने कभी किसी को ऐसे सोचते नहीं देखा था । वह बिट्टी से सिर्फ सात–आठ साल छोटा था और बिट्टी व उसके दोस्तों की तमाम गतिविधियों को समझने में असमर्थ था, इसलिए वह बेचारा स्मृतियों की स्मगलिंग करता रहता था । वैसे भी उसके बाबू ने उसे समझा दिया था कि – ''बिट्टी के घर जा रहे हो, वहाँ सबसे अलग रहना । बिट्टी की अपनी जिंदगी है, अपने दोस्त के वहाँ ऐसे रहना, जैसे तुम हो ही नहीं ।''[३५]

बिट्टी एक नाटक कंपनी में काम करती थी और अक्सर देर रात को लौटती थीं । कभी–कभी अपने दोस्तों के साथ, जो वहीं काफी बीयर आदि पीने और देर–रात तक वहीं जमें रहते । रात के समय जब वे आते थे, तो अपने साथ हजारों खाने की चीजें ले आते थे । उनके थैले सलामी, चीज, सासेजेज, बीयर आदि से अटाअट भरे थे । वैसे सबके अपने अपने ढौर–ठिकाने थे, पर बिट्टी की बरसाती सबसे सुरक्षित जगह थीं, जहाँ कोई रोक–टोक करनेवाला नहीं था ।

सभी पात्र नाटक का रिहर्सल करते–करते नाटक के पात्रों की तरह की जिंदगी बिताने लगते हैं सब सर्वहारा किस्म के संघर्षरत युवा कलाकार है । यहाँ दो वर्गो का चित्रण है, एक तो युवा वर्ग का दूसरा किशोरावस्था का । मुन्नू न तो 'ग्रोन अप' है, न ही बिलकुल नासमझ है, उसे एक साधन के रूप में प्रयोग किया जा रहा है । कथा के अन्य पात्र भी उसी को माध्यम बनाकर अपने कार्य की पूर्ति करते हैं ।

बिट्टी का बचपन घूमते हुए बीता था । उसके पिता रेल्वे में थें और उनका शहर–दर–शहर तबादला होता रहता था । बाद में वह नैनीताल के एक

होस्टल में रहने लगी । उन दिनों हिन्दुस्तानी अफसर अपने बच्चों को किसी कान्वेट में जमा करके छुट्टी पा लेते थे । बिट्टी अत्यंत भावुक किस्म की युवती है । उसके मन में कुछ कर गुजरने की चाह है । कभी–कभी वह अग्रेसीव हो जाती है । उसने 'सुख' को देखा है पर एक चिथड़े के रूप में और वह भी चाहती है कि वह स्वयं भी मेले के उस बौने व्यक्ति की तरह सुख पा सकें । 'सुख' जो सब जगह नहीं है, केवल चिथड़ों में कटा–फटा हुआ है और उसे पाने के लिए कितनी उछल–कूद करनी पड़ती हैं । बिट्टी मात्र सुख के एक चिथड़े के लिए भटकती है । ''यह सुख है मुन्नी, देखो, हाथ लगाकर देखो, सचमुच का सुख ।''[३६] कभी–कभी वह सोचती है कि तकलीफ झेलने में ही सुख है, इसलिए वह दिल्ली छोड़कर कहीं दूर जाना चाहती है, घर पर नहीं पर उस अज्ञात जगह पर जहाँ उसे घर वालों से पैसे लेने की बेशर्मी से मुक्ति मिल सके । उपन्यास में सभी पात्र सुख की खोज में भटक रहे है लेकिन सुख कितना छोटा होता है ?

डैरी और बिट्टी के संबंध एक्टर और डायरेक्टर से कुछ अलग प्रेम के भी थे । डैरी को देखकर लगता जैसे उसके कई चेहरे रास्ते में छूट गए हों । सेंटस्टीफेन्स कॉलेज में, बिहार के गाँवों में, स्टुड़ीयो के स्टेज पर । डैरी को देखकर मुन्नू को अचंभा होता था कि जिन्हें चीजों से इतना गहरा लगाव था, कैसे दिन घर–बार छोड़कर भाग निकले थे, पर वह एक पुरानी बात थी जिसके बारे में वे कभी कोई चर्चा नहीं करते थे । डैरी फिर भी तटस्थ दिखाई देते हैं, क्योंकि उन्होंने जीवन को बहुत करीब से देखा था, भोगा था ।

इरा और निती असफल प्रेमी–युगल है । निती विवाहित है । उसकी गृहस्थी है । एक दस वर्षीय लड़का है । पर फिर भी इरा लंदन से भारत लौट आती है, निती भाई के प्रेम में पागल है । वह अपने माता–पिता के साथ लंदन आई है । पर स्ट्रीनबर्ग के इस नाटक के बाद वापस लौटना चाहती है । डैरी उसे इसी संदर्भ में पागल कहते हैं बिट्टी नहीं । इसी बात पर वे लड़ने लगते थे । वे छोटी–छोटी बात पर लड़ते थे । ''बिट्टी के भीतर

पता नहीं कौन सा गुस्सा दबा था, जो जरा –सा छूते ही भवाद की तरह बहने लगता था ।''[३७]

बिट्टी के कुछ दोस्त अपनी आधी जिंदगी बाहर गुजार कर लौटे थे । इसलिए वे अजीब से कोनो में पड़े रहते थे । निती भाई गुमसुम निराश, उदास दिखाई देते थे । वे आर्कीटेक्ट थे, उनका अपना घर था, फिर भी वे अधिकतर अपने दफतरवाले फलैट में रहते थे जहाँ कभी–कभी इरा भी साथ रहती थीं । इरा निती के लिए भारत आई थी, पर अब वह खाली आँखों से हवा में ताकती, उसकी आँखे भारी थकान में लदी होती । क्योंकि निती भाई में हौंसला नहीं है । वे इरा को लंदन जाने से रोकते है पर स्वयं वहीं है, जहाँ पहले थे । उनमें कुछ कर गुजरने की, ढोस कदम उठाने की हिम्मत नहीं है । वे हर बार कोशिश करते है पर फिर पीछे हट जाते है । वह पति और प्रेमिका दो स्त्रियों के बीच पेण्डुलम की तरह झुलते रहते हैं । असल और नकल के बाद जब सच बर्दाश्त नहीं होता तो निती आत्महत्या कर लेते हैं । बिट्टी को खेद है अपनी इस तरह की जिंदगी पर । क्योंकि वह दूसरों की जिंदगी जीते हुए भी खुद वहीं है जहाँ दो साल पहले थीं । जबकि वह दिल्ली इसलिए आई थी कि वह अपने भीतर की 'बिट्टी' को ढूंढ़ सके ।

उपन्यास में एक अत्यंत बौद्धिक पात्र के माध्यम से जीवन की सच्चाई का उद्‌घाटन किया है । वह पात्र है डैरी की पागल बहन । वह सत्य को उसकी संपूर्ण कड़वाहट के साथ बोलती है । डैरी के अन्य दोस्त उसके घर आते हैं और चले जाते हैं पर वे उसकी तरफ देखते तक नहीं हैं । मुन्नू पहली बार उसके पास जाता है । वह मुन्नू को बताती है कि उसने ''दुख'' को देखा है बिट्टी के रूप में । वह अपने भाई डैरी को डैरी न कहकर ''बिट्टी के लवर'' कहती है – वह सभी प्रेमी युगलों के बारे में कहती है – ''वे प्यार करते हैं, वे पागल हैं, दे आर रुइनिंग देयर लाइब्ज ।''[३८]

उपन्यास का हर एक पात्र एक अनजानी चीज की खोज में है । हर पात्र 'एक चिथड़ा सुख' की खोज में है । इसी खोज के दौरान ही उनके रिश्ते बनते और बिगड़ते है । वह अपने होने को कब के छोड़ चुके हैं और

समय का अंतराल उन्हें वह बना देता है जो नहीं थे । प्रिमीयर के दिन मुन्नू होल में नहीं जाता, बाहर घूमता रहता है क्योंकि नितीभाई ने उसे कहा था वह अंतिम दिन वहां आएँगे और साथ में बैठकर स्ट्रीनबर्ग का नाटक देखेंगे । पर निती भाई अब इस दुनिया में नहीं थे । और मुन्नू सोचने लगा कि जब उन्हें आना ही नहीं था तो वादा क्यों किया था आने का ।

इस प्रकार पूरी डायरी सुनाकर मुन्नू इलाहाबाद लौट जाता है और बाकी पात्र पहले की तरह ही अकेले रहकर अपने सीमित दायरे के इर्द–गिर्द चक्कर लगाते रहते हैं ।

## *(II) पात्र या चरित्र*

'एक चिथड़ा सुख' मुख्य रूप से ऐसे पात्रों की गाथा है जो मन के दुःख से पीड़ित है । सभी पात्र स्वच्छंद होकर, अपनी अस्मिता की खोज में लगे हुए हैं । इस उपन्यास में भी गौण पात्रों की खोज में लगे हुए हैं । इस उपन्यास में भी गौण पात्रों की संख्या अधिक नहीं है । केन्द्रिय या मुख्य पात्र है – बिट्टी । बिट्टी के संपर्क में जो लोग आते हैं उनके चारों ओर कथावस्तु घूमती रहती है । 'लाल टीन की छत' की तरह इसमें नायिका है । पर नायक नहीं है । गौण स्त्री पात्रों में इरा और मिसेज पंत है । गौण पुरुष पात्रों में गौण पात्र पूर्ण रूप से घुले–मिले हैं । फिर भी उपन्यास में बिट्टी का विशेष स्थान है ।

### *(i) मुख्य पात्र :*

### ❀ बिट्टी :

बिट्टी उपन्यास की प्रमुख पात्र है । संपूर्ण उपन्यास बिट्टी को लेकर आगे बढ़ता है । बिट्टी उपन्यास का जीता–जागता चरित्र है । उसके क्रिया–कलाप – कपड़ा धोती बिट्टी, रिहर्सल में चीखती खिलती बिट्टी, डैरी को 'गेट आउट' करती, रोड़ साइन के तख्ते पर सिर रखकर रोती बिट्टी और अंत में थकी मांदी बिट्टी, बस स्टेण्ड़ की ओर जाती हुई – उसे जीवंत बनाते हैं । उसका अकेलापन उसकी मनःस्थिति, स्टिनर्ग का नाटक आदि इस उपन्यास में है ।

वह इलाहाबाद से दिल्ली आई है । भिखारियों जैसे कपड़े पहनती हैं । दिल्ली में एक बरसाती में रहती है । किताबें, रेकार्ड प्लेयर यही उसकी गृहस्थी है । बिट्टी का बचपन घूमते हुए बीता । पढ़ाई के लिए होस्टल में रहती थीं । बाद में वह दिल्ली की नाटकों की दुनिया में है । वह बहुत पहले ही इलहाबाद छोड़ चुकी है । यहीं से उपन्यास में उसका प्रवेश होता है । बिट्टी की नाटक की दुनिया में – इरा, नितीभाई और डैरी जैसे लोग है जिनके माध्यम से उसके चरित्र की परते खुलती जाती हैं । बिट्टी को कजिन के प्रति सहानुभूति है । वह कहती है – ''सुनो अगर तुमने यह लिखा है कि, तुम इलाहाबाद लौटना चाहते हो, तो यह मैं तुम्हारे सामने फाड़ दूंगी ।''[३९]

बिट्टी अपने मन में एक प्रश्न लेकर चल रही है कि सुख क्या है ? हर जगह उसे सुख की तलाश है । वह बौने से पूछती है – ''सुख क्या होता है ?''[४०] और इस सुख की तलाश में ही बिट्टी दुःखी है । बिट्टी हमेशा उदास रहती है । उसके सुख की कल्पना भी क्या है ? जो वह बौना भोगता है वह उसकी दृष्टि में सुख है । वह कहती है – बौने के चिथड़े चिथड़े नहीं थे... वह सुख था ।'' बिट्टी भी बौना बनना चाहती है । यहीं उसकी आकांक्षा है, क्योंकि उसका विश्वास है, सुख वहीं है । इस उपन्यास की समस्या बिट्टी द्वारा अभिव्यक्ति है । लेकिन वह सुख की तलाश में ऐसे स्थानों पर भटकती है जहाँ उसे सुख नहीं सुख की पीड़ा मिलती है, और जहाँ उसे सुख मिलने की संभावना है । उसे वह समझ नहीं पाती और दूर भागती है । दुःखी भी होती है । नुमाईश देखना, होटल में, जूठन खाते बच्चों को देखना, रिहर्सल में व्यस्त रहना, घूमना इसी के अंग है । वह कहती है – ''मुझे कोई तकलीफ नहीं है – बरसाती, किताबें, रिकार्ड प्लेयर, मेरे पास सबकुछ है । मुन्नू गरीबी का बहाना वहीं करते हैं, जो असल में गरीब नहीं है ।''[४१]

बिट्टी कभी–कभी उखड़ी सी दिखाई देती है । मुन्नू के अनुसार – ''वह कभी मुंडेर पर घण्टों खड़ी रहती और वह कमरे में बैठे उसे देखता । कुछ लोग अपने अकेलेपन में काफी संपूर्ण दिखायी देते हैं – उन्हें

किसी चीज की जरुरत महसूस नहीं होती । किन्तु बिट्टी में ऐसा कोई प्रभाव नहीं दिखाई देता था – वह जैसे कहीं बीच रास्ते में ढिढ़की सी दिखायी देती थी, जबकि दूसरे लोग आगे बढ़ गए हों । बीच में लोग ठहर जाते हैं, उनमें अकेलापन उतना नहीं, जितना अधूरापन दिखायी देता है ।"[४२] लेकिन कभी वह संवेदनशील हो जाती है । वह गरीबी देखना चाहती है । इसीलिए कनाट प्लेस के ढाबे में जब वह बच्चों को जूठी तश्तरियों में चावल खाते देखती है तब यह बात उसके हृदय को छू जाती है । बिट्टी की ट्रेजेड़ी यह है कि वह अपने आप को नहीं जानती । वह हर बार दूसरों की तरह जीना चाहती है । दूसरों के माध्यम से अपनी तलाश करना चाहती है ।

वह दिल्ली छोड़ना चाहती है । पर दिल्ली छोड़कर कहाँ जाना चाहती है यह उसे भी नहीं पता । डैरी के पूछने पर वह कहती है – मुझे नहीं मालूम है कहाँ–जाऊँगी । इस प्रकार उपन्यास की प्रत्येक घटना से बिट्टी का संबंध है । बिट्टी के चरित्र विकास से घटनाएँ भी श्रृंखलाबद्ध हो गई हैं ।

उपन्यास में बिट्टी और इरा लगभग एक जैसी स्थिति में है । इरा नितीभाई को और बिट्टी डैरी को प्रेम करती है । लेकिन उपन्यास में बिट्टी का चरित्र उतना असामान्य नहीं हो पाया है जितना इरा का हो गया है । इसका एक बड़ा कारण यह है कि बिट्टी के प्रेम को जहाँ डैरी का उत्तर प्राप्त हुआ है वहाँ इरा का प्रेम अनुत्तरित है । इस एकपक्षीयता के कारण इरा का चरित्र बिट्टी के चरित्र से काफी भिन्न हो गया है । वह अपना संतुलन बनायें नहीं रख पाती और निती भाई को ऐसा कुछ लिख देती है जिसका परिणाम उनकी आत्महत्या में होता है । नितीभाई की मृत्यु के बाद जिस तरह डैरी के पक्ष से लगकर खड़ी होती है उससे उसके जीवन का संतोष व सुख झलकता है । वस्तुतः यही वह सुख है जो इस उपान्यास की तलाश का विषय है । बिट्टी के सुख की तलाश यहीं पूरी होती है । वह सुख को बौने के पास या गरीबों के भोजन में ढूँढ़ती फिर रहीं थीं । मानवीय प्रेम की यहीं ऊष्मा है जिसके लिए मनुष्य जीवित रहता है । यहाँ न उम्र के बंधन है न जाति के । निर्मल वर्मा इसी बिन्दु तक मनुष्य जाति को लाना चाहते हैं । बिट्टी के प्रेम चित्रण

में उसकी मार्क्सवादी दृष्टि देखी जा सकती है । बिट्टी का प्रेम बंधनों से परे है । वह आर्थिक दृष्टि से डैरी के आश्रित नहीं है । इसलिए भी उसका प्रेम सहज व बराबरी का है । उसका व्यक्तित्व इतना क्रांतिकारी है कि वह पुराने परिवार के बंधनों में बंध भी नहीं पाती । डैरी का बंधन भी वह नहीं मानती । लेकिन उनके सामने प्रेम के आगे एक विनीत बच्ची की तरह सिर झुका लेती हैं । इस प्रकार सारे उपन्यास में बिट्टी का चरित्र ही पूरी तरह से छाया हुआ है ।

### ❀ मुन्नू :

पुरुष पात्रों में मुन्नू प्रमुख है । वह बिट्टी का कजिन है और इलाहाबाद से तीन चार महीने के लिए दिल्ली अपनी कजिन के यहाँ आया है । मुन्नू की माँ अस्पताल में कैंसर की बीमारी से मरी थीं । मुन्नू अपनी बीमारी की वजह से बरसाती में रहने के लिए मजबूर है । बिट्टी ने उसका स्थान नियत कर रखा है । वह कभी-कभी ही घर से बाहर निकलता है । और बिट्टी के कारण कुछ अन्य लोगों के संपर्क में आता है । वह देखता बहुत थोड़ा है पर सोचता ज्यादा है । कभी-कभी उन सबको देख पाने की उन्हें जानने की इच्छा और छटपटाहट भी उसमें है । मुन्नू अंत में अपनी निश्चित जगह छोड़ देता है । जब मुन्नू इलाहाबाद से दिल्ली के लिए निकला था तब बाबू ने उससे कहा था – "देखो तुम बिट्टी के घर जा रहे हो, वहाँ सबसे अलग रहना । बिट्टी की अपनी जिन्दगी है, अपने दोस्त के वहाँ ऐसे रहना जैसे तुम हो ही नहीं ।"[४३] कई बार उसे यह आसान नहीं लगता । रहकर भी न रहने की बात उसे समझ में नहीं आता है या जब डैरी आते हैं तब वह अंदर लेटा हुआ सब कुछ सुनता है और उसके कच्चे किशोर मन को संशय, डर और सवाल बार-बार वयस्कता की ओर खींचते है ।

निर्मल वर्मा ने एक छोटे बच्चे के मन को अच्छी तरह परखा है, समझा है और अभिव्यक्त किया है । मुन्नू के मन की जिज्ञासा, प्रश्न, विचार, अनदेखा करने की प्रवृत्ति, संवेदनशीलता और अकेलापन अपने जीवंत परिवेश के साथ प्रस्तुत है ।

उपन्यास में मुन्नू की भूमिका सीमित है । उसे एक दर्शन और नोट्स लेते रहनेवाले व्यक्ति के रूप में रखा गया है । लेकिन वह जिस उम्र का है उसे देखते हुए उसका व्यवहार स्वाभाविक नहीं लगता । चौदह–पंद्रह वर्ष का लड़का भले ही वह बीमार हो ताक–झाँक, शंकाओं, जिज्ञासाओं, और ईर्ष्याओं का शिकार होता है । वह अपनी उम्र से बड़ा लगता है । वह दार्शनिक की तरह नोट्स लेता रहता है और जीवन से सीधी मुठभेड़ से बचता रहता है । भले ही उसके पिताने कह दिया हो कि वह बिट्टी को उसका जीवन जीने दे । फिर भी उसका अहंकार, उसका फजिनयन कहीं–न–कहीं तो अपना सिर उठा सकता था । इस सबके अभाव में उसकी स्वाभाविकता कम हो गई है । इस प्रकार मुन्नू का चरित्र भी इस उपन्यास में अपने आप में अकेलेपन को लिए हुए पूरी कथा में छाया रहता है ।

## *(ii) गौण पात्र :*

### ❀ इरा :

इरा इस उपन्यास में गौण पात्र है । वह विदेश से अपने प्रेमी निती भाई के पीछे हिन्दुस्तान आई है । वह लंदन में रहती थीं । इरा के बाह्य व्यक्तित्व का परिचय स्वयं उपन्यासकार ने दिया है । जैसे वह हमेशा भूरे रंग की कार्डराय की पैंट और बहुत ऊँचा खाँकी कुर्ता पहने रहती थी । उम्र का भेद सिर्फ आँखों के नीचे झाडियों पर अटका था, किन्तु जब कभी वह हँसती, तो वह भी झर जाता था ।''[४४]

इरा नितीभाई से प्रेम करती है । परंतु आत्मीयता के भाव का अभाव है । उसमें दुविधा बनी हुई है । वह पुनः विदेश लौट जाना चाहती है । उपन्यास में इरा का चरित्र उलझा हुआ है । वह रहना चाहती भी है और नहीं भी । वह इसी स्थिति में मुन्नू द्वारा नितीभाई के यहाँ चिठ्ठी पहुँचवा देती है, जिसका परिणाम नितीभाई की आत्महत्या में होता है ।

इरा, नीतिभाई और नितीभाई की पत्नी के रूप में निर्मल वर्मा ने प्रेम का एक त्रिकोण निर्मित किया है । एक कोण पर स्थित है, नितीभाई और

अन्य दो कोणों पर इरा तथा निती की पत्नी । इस त्रिकोण का अंत भी वैसा ही हुआ है जैसा साधारणतः बहुत से उपन्यासों में मिलता है । वस्तुतः वह अंत बहुत ही कुत्रिम और आरोपित है । उपन्यासकार इरा के चरित्र के साथ पूरा न्याय नहीं कर सका ।

## डैरी भाई :

डैरी नाटक कंपनी के डायरेक्टर है । वे एक जमाने में कॉलेज छोड़कर भाग गए थे, अब थियेटर चलाते है । बिट्टी के साथ उनके एक्टर–डायरेक्टर से अधिक प्रेमी–प्रेमिका के भी संबंध है । डैरी बीयर की बोतलें घास में लपेटकर, मोटर बाईक पर वक्त–बे–वक्त चले आते है और देर तक उनके घर में अटके रहते हैं

डैरी बड़े घर के बेटे हैं । मालरोड़ पर उनकी कोठी है । काम कुछ नहीं करते । केवल स्ट्रिनबर्ग के नाटक के निर्देशक है । ‘‘स्टूडियो के कोने में बैठे हुए, एक्टरों से बाते करते हुए – काली छितरी हुई दाढ़ी, बहुत धनी पलको में ढकी आँखे, जो आधी मुंदी रहती, जैसे खोलने पर जो दूनिया दिखायी देगी, उसे झेल पाना असंभव हो ।’’[४५]

डैरी बिट्टी से प्रेम करते हैं । इसकी जानकारी डैरी की बहिन को है । उपन्यास में डैरी की बहिन ही सबसे पहले बिट्टी और डैरी के प्रेत की सूचना देती है । इसी तनाव में वह पागल हो जाती है । उसके अनुसार वे दोनों अपने जीवन को नष्ट कर देते हें – ‘‘वे प्यार करते हैं, वे पागल हैं, दे आर रुइनिंग देयर लाइव्स’’[४६] डैरी प्रारंभ से अंत तक बराबर कथावस्तु में बने रहते हैं । उपन्यास में बार–बार संकेत मिलता है कि डैरी बिहार गए थे । उनके इस अनुभव को साहसिक और रहस्यात्मक बनाकर सामने लाया गया है । लेकिन वे न स्वयं इन बारे में बात करते है और न ही अन्य पात्र । यह अंत तक रहस्य ही बना रहता है कि वे बिहार के गाँव देखने क्यों गए थे ?

डैरी बिट्टी से प्रेम करते हैं – बिट्टी भी उन्हें प्रेम करती है । वे उसके घर आते हैं, छोड़ने आते हैं, उससे बात करते हैं, देर रात तक उसके यहाँ

रहते हैं । लेकिन एक दिन बिट्टी अचानक डैरी को अपने घर से निकाल देती है । दोनों का सान्निध्य एक-दूसरे को सुख देता है । लेकिन इस सुख को वे पहचानने में असमर्थ है । उपन्यास में लगातार इस तरह लगता रहता है कि इस प्रेम में जरुर कुछ बाधा है, जो प्रेम की पूर्ण अभिव्यक्ति को रोक रही है । पर यह बाधा क्या है ? स्पष्ट नहीं होता । इसी प्रकार डैरी सारे उपन्यास में अन्य पात्रों की दृष्टि में काफी सौभाग्यवान है क्योंकि उन्होंने स्वयं अपने को पा लिया था ।

## ❀ नितीभाई :

नितीभाई इस उपन्यास में अपनी अल्प समय की उपस्थिति होने के बावजूद हमारी चेतना को बहुत गहरे तक प्रभावित करते है । निती अपनी आधी जिंदगी इंग्लैन्ड में बिताकर लौटे है, इसलिए वे अक्सर अजीब से कोनों में पड़े रहते हैं । वे आर्किटेक्ट है और नाटकों के सेट भी बनाते हैं ।

निती विवाहित है, अच्छी खासी गृहस्थी है, दस वर्षिय बेटा है, पर पता नहीं क्यों वे अपनी धर्म-पत्नी को छोड़ इरा की तरफ आकर्षित होता है । इरा व निती प्रेमी-युगल है । हालाकि उन्हें अपनी पत्नी से कोई शिकायत नहीं है । जब वह इंग्लैन्ड से लौटे थे, इस एकमात्र विषय पर बोलते थे कि किस तरह हिन्दुस्तान में कम खर्च पर इतने मकान बन सकते हैं कि किसी को फुटपाथपर न सोना पड़े । नितीभाई की बाते सुनते हुए मुन्नू को अपने दुःख छिछोरे जान पड़ते थे । वे बहुत अदभूत ढंग से अधूरे थे । वे बहुत दुःखी, वेदनाग्रस्त दिखाई पड़ते थे । वे चेखव की सी गल को स्टीनबर्ग के किसी नाटक से भी ऊँचा मानते है । निती पीते काफी मात्रा में थे । उनकी आँखो से कुछ अशांत-सी बेचैनी झलकती थी । वे इरा से प्रेम करते थे और अपनी इस व्यथा में ही घुट-घुट कर जीते थे ।

नितीभाई का असली घर माल रोड़ पर था, जहाँ वे अपनी पत्नी-बच्चो सहित रहते थें । निती अपने आफिसवाले फलैट में भी कभी रहा करते थे । जहाँ इरा भी कभी-कभी उनके साथ रहती थी । जब निती काफी परेशान हो जाते तो पन्द्रह-पन्द्रह दिन तक फलैट के बाहर नहीं निकलते थें । नितीभाई

के हाव–भाव से ही उनकी पीड़ा झलकती थी । वे बहुत हताश व दुःखी थे । वे अपने शरीर के प्रति इतने लापरवाह थे, मानो उनका इससे कोइ संबंध ही न हो । नितीभाई इरा को लंदन जाने से रोकते हैं, पर खुद वहीं है, जहाँ पहले थे । न तो वे पत्नी को त्यागते हैं, नहीं इरा को अपनाते है । ऐसा नहीं है कि उनकी पत्नी व बच्चे हैं, इसलिए वे इरा के साथ ठोस कदम उठाने में हिचकिचाते हैं, बल्कि उनमें हौंसला नहीं है । कुछ करने की हिम्मत नहीं है । नितीभाई तटस्थ नहीं है । वे कोशिश हरबार करते हैं कोई ठोस कदम उठाने की पर पीछे हट जाते है । अनिश्चय, अनिर्णय की स्थिति में डोलते रहते हैं ।

निती इस प्रकार हताश एवं दुःखी हैं कि कभी राह में चलते हुए वे किसी पेड पर सिर टिकाये खड़े हो जाते हैं । लगता है जैसे वो सो रहा है । निती को एक ही समय में तीन भूमिकाएँ निभानी पड़ती है – पिता, पत्नी व प्रेमी । किन्तु दुविधाग्रस्त निती एक भूमिका भी ठीक से नहीं निभा पाते । उनकी नियति ऐसी है कि न वह पत्नी को छोड़ सकते हैं, न प्रेमिका को । इन्हीं दो घरों ने निती को किसी एक के काबिल भी नहीं छोड़ा । वैसे दो घर उनको काफी उलझन पैदा कर देते हैं । असफल कैरियर, निरुद्देश्य प्रेम व ठंडे दाम्पत्य के बीच तालमेल न बैठ सकने के कारण वे बाथ–टब में अपनी कलाई की नस काटकर आत्महत्या कर लेते हैं ।

इस प्रकार इरा और अपने परिवार के बीच झूलते, अधूरे नितीभाई ऐसे अनोखे संपूर्ण ढ़ंग से अधूरे है कि उनके सामने अपना अधूरापन जान पड़ता है । वे अधूरे रह जाते हैं । डैरी बिट्टी से प्रेम करते हुए जितना कुछ प्राप्त करते है निती भाई उतना भी प्राप्त नहीं कर पाते । इरा के स्नेह से वे वंचित रह जाते हैं । वह अपने ही अपराध बोध से कुंठित हैं ।

### ❀ मिसेज पंत :

'एक चिथड़ा सुख' उपन्यास के चौथे एवं अंतिम खंड में मिसेज पंत की उपस्थिति दिखाई देती है । उपन्यास में मिसेज पंत की जितनी भूमिका है वह स्वाभाविक है । वे बिट्टी की मकान मालकिन हैं । वे जब भी टॉर्च लेकर छत

पर आती है – 'लाल टीन की छत' वाले घर की मालकिन मिस जोसुआ की याद दिलाती है – "हाथ में ट्रांजिस्टर, दोनों तरफ कुत्ते, उनके सफेद बाल हवा में उड़ते रहते है । छत से वह बुढ़िया नहीं, गुडिया सी दिखाई देती थीं, नीला लहंगा, शोख रेशमी दुपट्टा और छोटे–छोटे गुजराती स्लीपर । जब ट्रेन गुजर जाती तो वह सिर उठातीं, जैसे उड़ते हुए धुएँ को अपनी निगाहों से नाप रहीं हों – और तब उनकी आँखे उस पर छिछक जाती ।"[४७] उपन्यास में उनकी भूमिका कम है । उनका काम बिट्टी को जगाना है । उनकी उपस्थिति साधारण होते हुए भी कथानक की योजना में महत्त्वपूर्ण है । उपन्यास के अंत तक पहुँचते–पहुँचते मिसेज पंत का व्यवहार थोड़े में ही सब कुछ बता देता है ।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'एक चिथड़ा सुख' मुख्य रूप से ऐसे पात्रों की गाथा है जो मन के दुःख से पीड़ित है । सभी पात्र स्वच्छंद होकर, अपनी अस्मिता की खोज में लगे हुए हैं । यह ऐसे नवयुवकों की त्रासदी है जो अपना घर–बार छोड़कर एक चिथड़े सुख की तलाश में बाहर भटक रहे हैं । वे सारे उपन्यास में संघर्ष अपने आप से करते हैं, तकलीफ भोगते हैं और परिस्थितियों का विद्रोह नहीं करते, नही दूसरों को तोड़ते हैं, पर स्वयं जर्जर एवं खोखले होते जाते हैं । पूरे उपन्यास का पात्र प्रेम संबंधी घुटन और अकेलेपन की संवेदना को मुखरित करता प्रतीत होता है ।

## *(III) देशकाल और वातावरण :*

'एक चिथड़ा सुख' उपन्यास में देशकाल और वातावरण का स्वाभाविक निर्वाह हुआ है । इस उपन्यास की समयावधि तीन महीने की है । अप्रेल से जून तक का समय इसकी घटनाओं को घटित होने में लगता है । कथावस्तु का केन्द्र दिल्ली शहर है । पात्र विदेश के भी हैं और भारत के विभिन्न स्थानों से आये हुए भी । परंतु घटनाएँ दिल्ली में घटित होती है । उन घटनाओं को वातावरण द्वारा सजीव बना दिया गया है । वातावरण का चित्रण पात्रों और उनकी भूमिका को ध्यान में रखकर किया गया हैं ।

'एक चिथड़ा सुख' में प्राकृतिक वातावरण निरंतर विद्यमान है । उससे उपन्यास में जीवन्तता आ जाती है । जैसे – "अप्रेल का मौसम । फाटक पर

सेमल का पेड़ फरफराता था । न गर्मी, न सर्दी, सिर्फ एक गुनगुनाती सी हवा छतों को लाँधती थी और जब शाम होती तो मकबरे का गुम्बद गुलाबी हो जाता था, धीरे-धीरे अंधेरे में डूब जाता था, किन्तु कुछ देर में वह फिर दिखायी देता, आकाश के गुम्बद तले, तारों में झिलमिलाता हुआ ।''[४८] इस प्रकार पूरे उपन्यास की कथावस्तु के अनुरूप ही वातावरण उपस्थित हुआ है । इस उपन्यास में भावुकतापूर्ण वातावरण का अंकन भी जगह-जगह पर हुआ है । उपन्यास के सभी पात्रों के क्रिया-कलापों से वातावरण का सामंजस्य हो जाता है । एक ओर जहाँ पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ, वेशभूषा की बनावट, पात्रों का अभिनय आदि उनकी मानसिकता के अनुरूप हैं वहीं दूसरी ओर वातावरण की योजना भी उनकी मानसिकता के अनुरूप हैं ।

निर्मल वर्मा अपने उपन्यासों में भयावह वातावरण को भी उपस्थित करते हैं । उपन्यास में भयावहता को लाने के प्रयत्न में उसका चित्रण रहस्यमय ज्यादा बन गया है । डैरी की पागल बहिन की उपस्थिति से वातावरण भयावह बन जाता है । जैसे तभी उसे एक दबी फूत्कार-सी सुनायी दी, जैसे कोई गोली सनसनाते हुए कानों के पास से गुजर जाती है ।''[४६] इस प्रकार पात्रों का और वातावरण का भी निकट संबंध है । पात्र जिस परिस्थिति में रहकर अपनी क्रियाओं को संपादित करता है उससे वातावरण का निर्माण होता है ।

'एक चिथड़ा सुख' उपन्यास के पात्र आधुनिक वातावरण से भी प्रभावित है । पीना, घूमना उनकी दिनचर्या है । निर्मल वर्मा ने इस माहौल के अनुरूप वातावरण का चित्रण भी किया है – ''वे बातें कर रहे हैं । वे पी रहे हैं । बीच-बीच में हंसने लगते है... इरा ने खिड़की खोल दी है, बाहर होस्टल का बाग दिखायी देता है, बेंचो पर लड़कियाँ बैठी हैं ।''[५०] इसी तरह नाटक की रिहर्सल, पात्रों की वेशभूषा आदि ने आधुनिक माहौल को और सजीव बना दिया है । इस प्रकार देशकाल-वातावरण की दृष्टि से भी यह निर्मल वर्मा का एक सफल उपन्यास ही माना जाता है ।

इस प्रकार सारे उपन्यास के पात्र प्रारंभ से अंत तक सुख प्राप्त करने वहाँ पहुँचते हैं जहाँ उसके प्राप्त होने की संभावना नहीं है । जहाँ संभावना है

वहाँ तक ये पात्र पहुँचते ही नहीं हैं । एक सामान्य व्यक्ति भी इस बात को समझता है कि सुख उसे कहां मिल सकता है । इस उपन्यास की तलास–उसकी केन्द्रीय समस्या बहुत सही है । लेकिन उस सत्य तक पहुँचने का तरीका सही नहीं है । यदि निर्मल वर्मा हस समस्या को बृहत अनुभवों की पृष्ठभूमि पर चित्रित करते तो समस्या प्रभावी ढ़ंग से अभिव्यक्त होती । इस उपन्यास की उपलब्धि यही है कि इसमें सुख की तलाश है और प्रेम के बल पर महत्त्व दिया गया है ।

## (४) 'रात का रिपोर्टर' :

'रात का रिपोर्टर' निर्मल वर्मा का चौथा उपन्यास है जिसका प्रकाशन १९८९ में हुआ । वह उपन्यास उनका नवीनतम उपन्यास है । व्यवस्था और स्वतंत्रता का परस्पर विरोध आधुनिक युग की मूल समस्या है । 'रात का रिपोर्टर' इसी समस्या को आधार बनाकर लिखा गया उपन्यास है । उपन्यास में निर्मल वर्मा ने यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि बाह्य और आंतरिक जगत में कोई अंतर नहीं है ।

उपन्यास की कथा १४ भागों में विभक्त है । मुख्य कथा, कथानायक रिशी, बिट्टु, उमा एवं माँ के आसपास मंडराती रहती है । वैसे इसमें कुछ गौण पात्र भी है, रायसाहब, अनूपभाई, हलिबॉख, दयालसाहब एवं परोक्ष रूप से खुफिया पुलिस । रिशी अपने मुहतल के दिन किस प्रकार भयभीत होकर बिताता है और अपने इर्द–गिर्द एक शक का वातावरण निर्मित कर, उससे आतंरिक होकर कैसे तनावग्रस्त स्थिति का शिकार हो जाता है यही सारा चित्रण इस उपन्यास में है ।

### (*I*) *कथावस्तु :*

उपन्यास का केन्द्रिय पात्र रिशी एक रिपोर्टर है । ३७ वर्षीय रिशी एक अंग्रेजी पत्रिका में कार्यरत है । उसे हर वक्त ऐसा लगता है कि कोई उसका पीछा कर रहा है । इसलिए वह पूरे उपन्यास में भयाक्रांत होकर बचने की कोशिश में, मुक्त होने के लिए तत्पर है ।

एक दिन रिशी को अजनबी दयाल साहब से सूचना मिलती है कि अनूपभाई गिरफ्तार हो गए हैं । रिशी के बारे में भी पुलिस ने दयाल साहब से पूछताछ की है । दयाल साहब बताते हैं खुफिया पुलिस की संदिग्ध व्यक्तियों की सूची में रिशी का भी नाम है और पुलिस उसे कभी भी गिरफ्तार कर सकती है । इस सूचना मात्र से रिशी का आंतरिक जीवन तहस–नहस हो जाता है । रिशी के इस आंतरिक संकट से उसके निकटतम व्यक्तियों का जीवन भी प्रभावित होने लगता है ।

आखिर में रिशी स्वयं ही इस भय को उतार फेंकने का निश्चय कर लेता है । रात को वह अपने घर जाने के बजाय खुली सड़क पर चलता बिल्डिगों के पास अलाव के आसपास मजदूरों और उनके परिवारों के बीच आकर बैठ जाता है ।

'रात का रिपोर्टर' की पृष्ठभूमि में आपातकाल का वातावरण है । निर्मल वर्मा ने इस उपन्यास में आपातकाल के भयग्रस्त माहौल का गहराई से चित्रण किया है । नायक रिशी के चरित्र पर पूरे समय अजीब सा आतंक छाया रहता है । आपातकाल के दौरान बाहरी राजनीतिक दबावों और मानसिक अंतर्द्वन्द्व से बुद्धिजीवियों का व्यक्तित्व किस तरह खंड़ित हो गया था, इसका चित्रण लेखक ने इस उपन्यास में रिशी के माध्यम से बहुत ही गहराई से प्रस्तुत किया है ।

उपन्यास में रिशी का चरित्र कई खण्डों में विभाजित है । एक ओर वह माँ से तारतम्य बनाए रख रहा है तो दूसरी ओर प्रेमिका बिन्दू और पत्नी उमा के साथ दोहरे स्तर पर जी रहा है । इसके अलावा बाहरी जीवन में वह राजनीतिक दबावों को भी झेल रहा है । उपन्यास में उमा का चरित्र है जो रिशी की पत्नी है, लेकिन वह रिशी पर सबसे अधिक अविश्वास करती है । उसे इस बात का भी यकीन नहीं है कि रिशी पिछले दिनों सचमुच बस्तर गया । लेकिन इस अविश्वास के बावजूद उसका रिशी से मोहभंग नहीं हुआ है । उसे उम्मीद है कि रिशी उसका होकर रहेगा । दूसरी ओर रिशी की प्रेमिका बिन्दू है । शंकाओ और अस्वस्थता के बावजूद वह रिशी के साथ

रहती है और लगातार उसे उसके अस्तित्व के प्रति सजग करती है । इसके बावजूद बिन्दू रिशी की आत्मीयता नहीं पा सकती । इस पीड़ा को व्यक्त करते हुए वह रिशी से कहती है ।... "मैं अस्पताल नहीं आ सकती, तुम्हारी पत्नी को देखने के लिए.. न मैं तुम्हारे घर आ सकती थी, जब तुम बस्तर में थे और तुम्हारी माँ घर में अकेली रहती थी, मैं तुम्हारे लिए कुछ भी नहीं हूँ ।"[५९] सारे उपन्यास में नायक रिशी के संकट का सार्वजनिक महत्त्व है । यह संकट अकेले रिशी का न होकर प्रत्येक व्यक्ति की सृजनात्मकता व स्वतंत्रता का संकट है और रिशी की पीड़ा पूरे जागरुक समाज की पीड़ा है ।

निर्मल वर्मा का यह उपन्यास मानवीय अस्तित्व के अर्थ की भी तलाश करता है, बिन्दू और हॉलबार्ख जैसे चरित्रों का सृजन इस बात का प्रतीक है । उपन्यास की नायिका बिन्दू भरे-पूरे घर की युवती है, और माँ-बाप, भाई-बहन के रहते हुए वह बड़ी निश्चितता से रिशी के साथ अपने कमरे में सोती है । उपन्यास के प्रारंभ से ही दोनों का संबंध स्पष्ट हो जाता है, साथ ही रिशी के व्यक्तित्व पर जो आतंक हावी हो गया है - बिन्दू का व्यक्तित्व उससे कितना अछूता रहा है, यह भी हम देखते हैं ।

दयालसाहब जेल होकर आये हैं, रिशी के एक मित्र अनूपभाई जेल में है । दयालसाहब की बातों और दी गई चेतावनी से रिशी पर आतंक सा छा जाता है । दयालसाहब कहते हैं कि इंटेलिजेंस ब्यूरो की लिस्ट में उसका कभी-भी उसका भी नंबर आ सकता है । लेकिन उसे लगता है कि वे उसे अचानक नहीं पकडेंगे । वे अपने शिकार को एकदम खुला छोड़ देते हैं, ताकि वह घेरे में होकर भी अपने आपको स्वच्छंद महसूस कर सके और यह देखने के बाद कि वह किन-किन लोगों से मिलता है, कहाँ-कहाँ जाता है ।

जिस प्रकार बिन्दू का चरित्र इस उपन्यास में विशिष्ट है, उसी प्रकार हॉलबार्ख का चरित्र भी विशिष्टता लिये हुए है । हॉलबार्ख किसी समय में बिन्दू का प्रेमी रहा था, रिशी को उस पर विदेशी जासूस होने की भी शंका थी । बिन्दू और हॉलबार्ख का चरित्र इस उपन्यास में मानवीय धरातल पर

आते हैं और लेखक की मानवीय अस्तित्व के अर्थ की तलाश इसमें दिखाई देती है ।

संक्षेप में कहें तो यह उपन्यास राजनैतिक विसंगतियों के शिकार एक बुद्धिजीवी रिपोर्टर के मानसिक संकट का संपूर्ण ब्यौरा प्रस्तुत करता है । जिसमें निर्मल वर्मा ने यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि बाह्य और आंतरिक जगत में कोई अंतर नहीं है । दोनों एक दूसरे-से छाया-प्रतिछाया की भाँति हिलते-मिलते रहते हैं, प्रभावित होते रहते हैं । जिसमें नायक की स्थिति अत्यंत ही संशयग्रस्त है । उसे हर क्षण यही भय लगा रहता है कि कोई उसकी राह देख रहा है और किसी भी क्षण उसे पकड़ा जा सकता है । अर्थात् वह एक रिपोर्टर है, उसे संशय की दृष्टि से देखा जा रहा है, क्योंकि तत्कालिन आपातकालीन स्थिति में प्रत्येक व्यक्ति पर शंका की जाती थी कि वह इस देश की खबरें देश में भेज रहा है या लोगों के इंटरव्यु छापकर जनता को भड़का रहा है और व्यक्ति यदि एक रिपोर्टर है, फिर तो इंटेलिजेंस वाले उसकी जिंदगी को तहस-नहस करके रख देते हैं ।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि 'रात का रिपोर्टर' आपातकाल की नहीं वरन आपातकाल से उत्पन्न आतंक और आतंकित मन की कथा है । बहुत पहले निर्मल वर्मा ने कहानी को 'टोटल टेरर' बताया था । उनकी किसी कहानी में हो या नहीं हो, लेकिन 'रात का रिपोर्टर' में पूरी तरह 'टोटल टेरर' की स्थिति है । उनका यह उपन्यास एक यातना-कथा से भरा हुआ उपन्यास है । एक व्यक्ति के माध्यम से समाज की यातना-कथा । उपन्यास की कथा सीमित होते हुए भी विस्तृत है, वह एक व्यक्ति के माध्यम से पूरे समाज को समेट लेती है । उपन्यास के अंत में रिशी की भागदौड, मजदूरों के बीच पहुँच जाना, जो उसके लिए अपरिचित है । नगर में होते हुए भी जंगल में है, अलाव के चारों ओर बैठे हुए लोग, आग जो आदिम वृत्तियों की प्रतीक है, आदिम हिंसा वृत्तियों की जैसे आज मनुष्य फिर उन्हीं की लपेट में आ गया है । ये सारे संकेत व्यतीत के संदर्भ में वर्तमान का रूपांतर कर देते

हैं । इस प्रकार संपूर्ण कथावस्तु आतक की छटपटाहट का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करती है ।

## *(II) पात्र या चरित्र :*

'रात का रिपोर्टर' उपन्यास आपातकालीन विशिष्ट परिस्थिति का बोधक है, जिसमें भयग्रस्त व तनावग्रस्त व्यक्ति की मानसिक पीड़ा का और उसके परिवर्तित होते हुए व्यवहार का सूक्ष्म बोध हुआ है यह उपन्यास आपातकाल के दौरान लेखकीय अस्मिता पर लगे अंकुश का परिणाम है ।

इस उपन्यास का मुख्य पात्र है – रिशी, जो कि एक पत्रकार है और उसी के माध्यम से लेखक ने संवेदना–बोध कराया है । अन्य पात्र हैं उमा, बिन्दु, माँ, दयालसाहब, अनूपभाई आदि । रिशी इस उपन्यास में आपातकाल की संकटकालीन स्थिति में राजनीति की शंका का शिकार बना हुआ है ।

### *(i) मुख्य पात्र :*

❀ **रिशी :**

३७ वर्षीय कथानायक रिशी पत्रकार है, फ्रीलासर के तौर पर एक अंग्रेजी पत्रिका में कार्यरत है । उसे हर वक्त प्रतीत होता है कोई उसका पीछा कर रहा है और पूरे उपन्यास में वह भयाक्रांत हो मुक्त होने के लिए तत्पर है ।

रिशी को एक अजनबी व्यक्ति द्वारा यह सूचना मिलती है कि अनुपभाई को गिरफ्तार किया जा चुका है और साथ ही जो लोग अनूपभाई के घर एक विशेष दिन उपस्थित थे उन सभी का नाम खुफिया पुलिस की लिस्ट में है । यह सुनने पर उसका जैसे बाह्य जगत भी एकाएक भयपूर्ण लगने लगता है । और असुरक्षा की भावना उसे ग्रसित कर लेती है । युगीन दबाव रिशी को इस प्रकार झकझोर देते हैं कि वह असहाय, अस्वस्थ व शंकालु बन जाता है तथा उसका अंतर अंधविश्वास, आशंका, तनाव व भय से भर जाता है । फलस्वरूप रिशी नहीं शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत कर सकता है, न एक पति की भूमिका निभा सकता है, न एक पुत्र की भूमिका निभा सकता है, अपनी बूढ़ी

माँ की व्यथा व पीड़ा भी कम नहीं कर सकता, न ही वह प्रेम कर पाता है, नहीं कुछ उत्पन्न कर पाता है ।

रिशी की द्विधाग्रस्त स्थिति मात्र उसे नहीं, उससे संबंधित अन्य सभी व्यक्तियों को भी प्रभावित करती है । वह स्वयं तो इससे छुटकारा पाना चाहता ही है, इसके साथ ही वह अपने प्रियजनों को भी इस संकट की आँच से अछूता रखना चाहता है । नायक रिशी की स्थिति अत्यंत संशयग्रस्त है । उसे यही भय सताता रहता है कि कोई उसकी राह देख रहा है, उसका पीछा कर रहा है और किसी भी क्षण वह सलाखों के पीछे बंद हो सकता है । रिशी अपनी कॉलेज की नौकरी छोड़कर यहाँ आया था । वह राजस्थान, बिहार, उड़ीसा जहां भी लोग तकलीफ में थे, वहाँ गया । सिर्फ यह देखने के लिए कि लोग कैसे मरते हैं । शायद उसने रिपोर्टर बनना इसलिए पसंद किया, क्यों कि कॉलेज में अध्यापन कार्य उसे फीका और निष्प्राण लगा । सामाजिक और राजनैतिक जीवन में फैली विसंगतियों को सबके सामने लाकर अनीति, अन्याय और अत्याचार का पर्दाफाश करना शायद उसका उद्देश्य हो ।

रिशी एक बुद्धिजीवी रिपोर्टर है पर यहाँ दिल्ली में एक पत्रकार के रूप में उसकी दिनचर्या नियमित सी हो गई है – अस्पताल से घर, घर से लायब्रेरी, लायब्रेरी से अस्पताल, गलियारे की बेंच पर सपनों में डोलती माँ को झिंझोडना, स्कूटर में बिठाकर घर लाना, खाली कमरों में घूमना, रात और दिन भागते रहना, अजनबी पर शंका करना और शंका में ही डोलते रहना शायद उसका नित्यक्रम हो गया है । रिशी के आसपास का वातावरण ही शायद ऐसा अजीब सा है । दिन–रात फोन चीखता रहता है, पर उठाते ही चुप हो जाता है । रिशी को लगता है आधी रात को कोई दरवाजा खटखटा रहा है, पर खोलने पर कोई नहीं मिलता । कभी कोई अजनबी व्यक्ति उसे घूर रहा होता है पर रिशी को पता चलते ही वह गायब–सा हो जाता है ।

भय ने रिशी को बुरी तरह से जकड़ लिया था । फोन पर बिन्दू की खामोशी उसे आशंकित सा कर देती कि कहीं वह सब कुछ देख तो नहीं गई । रिशी ने अघेड़ अवस्था तक आते–आते अनेक भय भोगे थे, पर वह

यह खास किस्म का डर था जो बाह्य जगत से उपजकर उसके भीतर समा गया था । बाहर का डर अंदर के भय से घुल–मिलकर रिशी के जीवन में तूफान खड़ा कर देता है जिससे न भागा जा सकता है और न ही जिसे भोगा जा सकता है । हर कदम पर उसे भ्रम होता था, लोग संदेह की दृष्टि से उसे ताक रहे हैं । रिशी को सर्वाधिक सुरक्षा लायब्रेरी में प्रतीत होती है । वही एक जगह थी जहाँ वह बैठ सकता था, सोच सकता था । कभी–कभी रिशी को लगता कि यदि वह इसी तरह अपने शको एवं शंकाओं को तौलता रहेगा तो अवश्य पागल हो जायेगा । रिशी की इस मनोदशा के कारण उपजी स्थितियों ने उसके निजी संबंधों और पारिवारिक संबंधों में भी अजीब–सा रुखापन फैला दिया था । रिशी की पत्नी, मानसिक रोग से पीड़ित हो गई थी । उसकी विधवा माँ दिन–भर घर से अस्पताल व अस्पताल से घर घिसटते हुए त्रस्त हो रही थी । बहू की बीमारी के साथ बेटे की चिंताजनक परिस्थिति दरवाजे का वक्त–बेवक्त खटकना, अनजाने व्यक्ति का बार–बार फोन करके रिशी के बारे में पूछताछ करना, फिर हँसना और अन्य रहस्यात्मक घटनाओं ने ढ़लती उम्र के जीवन को ओर भी दुःखमय एवं यातनामय बना दिया था ।

रिशी को लायब्रेरी में भी फोन की घंटी सुनकर घबराहट–सी होने लगती थीं । वह दिन में तो तनावग्रस्त हो, यहाँ से वहाँ दौड़ लगाता और रात में थका हुआ, यहाँ–वहाँ चक्कर काटता । मकान के खाली कोनों से आती हर आवाज एक अंदेशा जान पड़ती थी । लायब्रेरी और टेलीफोन बूथ उसका आधार घर बन गया है ऐसा प्रतीत होता है । उसे संदेह होता है कि कोई बिन्दू को भी सावधान कर देता है कि यदि कोई उसके बारे में पूछे भी तो वह कह दे कि वह कुछ नहीं जानती । रिशी के बदले हुए व्यवहार पर बिन्दू को आश्चर्य होता है । वह नीरव आँखों से उसे देखती है कि तीन दिनों में एक आदमी कितनी जिंदगियों को पार कर जाता है । एक बार रात को घंटी बजी तो वह दरवाजे की तरफ भागा पर घंटी दरवाजे से नहीं, फोन से आ रही थी । उसने रिसीवर उठाया परंतु दूसरी तरफ सन्नाटा था, कोई कान

लगाये उसे सुन रहा था । रिशी ने हताश होकर रिसीवर रख दिया । फोन की घंटी दुबारा बजी इस बार हॉलबार्ख का फोन था । उसने रिशी को बिन्दू के दफतर में मिलने को कहा था । थोड़ी देर बाद फिर फोन की घंटी सुनाई दी । रिशी ने भागकर रिसीवर उठाया पर कोई जवाब नहीं मिला ।

रिशी एक दिन दयाल साहब से अनूपभाई की पैरोल पर रिहाई के संबंधमें बात–चीत करने जाता है । पर दयाल ने उस स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि उसे उनकी चिंता नही करनी चाहिए जिनकी वह कोई मदद नहीं कर सकता । दयाल साहब को देखकर रिशी को हरबार लगता है कि जैसे वह उन्हें नये रूप में देख रहा हो – ''पहली बार उसने दयाल साहब को देखा और तब उसे लगा कि वह सचमुच किसी दूसरे आदमी को देख रहा है, दूसरे आदमी को पहली बार । पहली बार की छलना कहीं उनकी छलनी देह में छिप गयी थीं और दूसरी बार का सत्य उसकी ओर से झाँक रहा था – क्या इसे ही वह आत्मा का देहानीरण कहते है, पर वह कौन सी वैतरनी थी, जिसे पार करके वह दुबारा इस दुनिया में लौट आये थे ।''[५२]

रिशी दो–ढाई महीने के लिए बस्तर भी गया था । वहाँ उसे अकेलापन अनुभव नहीं होता था । वह वहाँ से लौट तो आया था पर अब उसे अफसोस होता है कि – ''वह बस्तर में रुक क्यों नहीं गया । जिस दैनन्दिन जीवन में वह अपने को पाता है उससे वितृष्णा और उससे छुटकारा पाकर स्वान्तलीन होना उसके स्वभाव की विशिष्टता है ।''[५३] रिशी की स्थितियाँ ऐसी है कि वह कोई भी निर्णय ले पाने में तटस्थ नहीं है । वह अनिश्चय, अनिवार्य की स्थिति में हताश होकर यहाँ से वहाँ भटकता रहता है । रिशी अब बेझिझक झूठ बोलते हुए कतराता नहीं है । वह अनूपभाई की पत्नी से झूठ बोलता है कि वह स्वयं उनसे मिलने आनेवाला था । रिशी एक ओर तो अपनी पत्नी से अलग होने की बात पर अत्यधिक प्रसन्न हो उठता है । वह सोचता है कि अब उसके और बिन्दू के बीच कोई बंधन नहीं है । पर फिर डाक्टर के मना करने के बावजूद वह उमा के कमरे के पास चला आया और उमा की आवाज सुनकर उसने निश्चय किया कि यदि अब उमा बुलाएगी तो

वह रुकेगा नहीं बल्कि डाक्टर की परवाह किए बिना उसके पास चला जाएगा और उसके चेहरे पर अपना चेहरा रख देगा ।

रिशी हिंसा का विरोधी अवश्य है पर वह इसीलिए रिहाई के पिटीशन पर दस्तखत नहीं करता, बल्कि वह अपनी लापरवाही के कारण अधैर्य के कारण अपने दस्तखत कर देता है । उसे हिंसा, हत्या और फाँसी पर बहस करना निरर्थक जान पड़ता है । दैनन्दिन जीवन की परेशानियों, आशंकाओं, दुविधाओं, तनावों आदि में पड़कर रिशी की स्थिति अत्यंत विकट प्रतीत होती है । उसकी परिस्थिति अन्य व्यक्तियों पर भी अपना प्रभाव डालती है । उमा असहाय मानसिक रोग से ग्रस्त है, वह रिशी से अलग होना चाहती है, माँ का बढ़ता बुढ़ापा और बढ़ती परेशानियाँ उन्हें और भी बूढ़ा बना देती हैं । बिन्दू को खेद है कि वह रिशी को तीन सालों से जानती है, किन्तु वह कभी अपने बारे में उसे कुछ नहीं बताता और यदि वह जान भी जाती है तो टुकड़ों में थोड़ा-बहुत बता देता है । रिशी अपने शुभचिन्तक, अजनबी दयाल साहब पर भी शक करता है कि कहीं वह खुफिया-पुलिस का व्यक्ति तो नहीं । पर अंत में उसे स्वयं अपनी सोच पर दुःख व खेद अवश्य होता है ।

इस प्रकार पूरे उपन्यास में रिशी का चरित्र तनाव और आतंक से मुक्त होने के लिए तड़पता रहता है । कभी-कभी उसे लगता कि खोट उसके रिपोर्ताज में नहीं, कहीं उसके भीतर के रिपोर्टर में है जो पिछले वर्षो के दौरान इतने झूठों और छलनाओं के बीच पनपा था ।

## *(ii) गौण पात्र :*

### ❀ उमा :

इस उपन्यास में उमा का चरित्र भी गौण चरित्र के रूप में हमारे सामने उभरता है । उमा रिशी की पत्नी है । रिशी उमा के व्यवहार में कुछ अजीब-सी दूरी परिलक्षित होती है । पहले उमा को यह मानसिक रोग नहीं था । वह तो रिशी के लेख और रिपोर्ताज तक अखबारों में पढ़ती थी । वह

रिशी को पत्र लिखती थी, किन्तु उसे उसका पता मालूम नहीं था । अतः वह रायसाहब के पास गई थी । उमा ने उनसे कहा कि कोई फोन करके उनके बारे में पूछता है तो वह कुछ बता नहीं पाती । रायसाहब ने उसे बताया कि अनेक दोस्त भीतर हैं, अतः उन्हें शक होता है । वह बेचारी समझ नहीं पाती थी कि बाहर और भीतर का वास्तविक अर्थ क्या है ।

उमा का दाम्पत्य–जीवन सुखी नहीं था । वह रिशी के बारे में कितना सच जानती थी, स्वयं रिशी को भी आश्चर्य होता था । उमा को रिशी पर विश्वास नहीं है । उसे शायद इस बात पर शक होता है कि रिशी अपने बारे में उसे कुछ नहीं बताता । वह बस्तर जाता है । तब भी उसे बताकर नहीं जाता । अतः उमा स्वयं ही दफ्तर जाकर पूरी पूछताछ करती है । उमा की बीमारी के संबंध में रिशी कहता कि वह केवल अधैर्य है, सत्य को बीच राह में पकड़ पाने का प्रलोभन है । वह हॉलबार्ख से उसकी बीमारी के बारे में कहता है कि – ‘‘वह बीमार नहीं है हॉलबार्ख ‘‘मैं उसकी बीमारी हूँ ... क्या तुम दूसरे को अपनी दुनिया से अलग रख सकते हो ?’’[५४] उमा स्वयं तो दुनिया से अनभिज्ञता की स्थिति में पहुँच रही थी, पर वह रिशी पर बहुत दया करती थी । वह तो बहुत पहले से ही रिशी से कहती थी कि वह दूसरा विवाह कर ले ।

उमा की मानसिक बीमारी का श्रेय शायद रिशी को जाता है । वह स्वयं तो बाहर घूमता रहता था । कभी बस्तर तो कभी बिन्दू के साथ । वह अपनी इच्छाओं की पूर्ति तो बिन्दू के सहयोग में कर लेता था, पर उमा, क्या वह भी इसी तरह करती ? नहीं, वह तो रिशी के बच्चे देखना चाहती थी । वह रिशी की तरह दूसरा मार्ग नहीं अपनाती । शायद उसकी यहीं वेदना, उसका असाध्य रोग एक कारण था । उमा मानसिक रोग से ग्रस्त है । वह रिशी को चाहती थी, किन्तु उसे पति का सुख नहीं मिला था, वह उस सुख से वंचित थी ।

पिछले कुछ वर्षो से उमा रिशी के घर रहती है, कभी अपने भाई के घर और जब दोनों घर असह्य हो जाते तो, अस्पताल में शरण लेनी

पड़ती । उमा जानना चाहती थी कि – "क्या रिशी दिल्ली में ही है, या बस्तर चला गया ? वह रिशी के बारे में जानना चाहती थी, पर रिशी उसे नहीं बताता था । यह उसका पागलपन नहीं, दुःख था, जो चारों तरफ भटकता था ।"[५५] रिशी के कुछ अजीब से व्यवहार के कारण उमा उस पर विश्वास नहीं करती है ।

उमा रिशी से छुटकारा पाना चाहती है अतः वह स्वयं कहती है कि उसने रिशी को मुक्त कर दिया है । यह बात सुनकर रिशी प्रसन्न हो जाता है कि अब उसके और बिन्दू में कोई उलझन नहीं है, वे जहाँ चाहे जा सकते हैं । उमा अपनी आत्मा के कष्ट को बुझाने के लिए अपने ही शरीर से बदला लेती है । वह अपनी वेदना व पीड़ा से झुलसती हुई और कुछ तो कर नहीं सकती । अतः वह स्वय को ही घायल करने की कोशिश करती है । उमा की स्थितियों ने ही उसे विक्षिप्त कर दिया है । अत्यधिक मानसिक वेदना ने उसे मानसिक रोगी बना दिया है । पर इस मार्मिक स्थिति में भी वह रिशी को अपने से मुक्त इसलिए करना चाहती है ताकि रिशी स्वच्छंद होकर अपना जीवन गुजार सके । और रिशी उसका पति इस बात से इतना प्रसन्न हो जाता है, मानो उसे हँसी का इन्तजार हो कि कब उसे उमा से छुटकारा मिले और वह बिन्दू को अपना सके ।

उमा के प्रति रिशी का अनुचित व्यवहार इसी बात से पता लगाया जा सकता है कि जब उमा अस्पताल में पड़ी हुई होश और दवा की बेहोशी के बीच झूल रही थी, तब वह बिन्दू के साथ घूम रहा था । ऐसा नहीं है कि उमा रिशी की गतिविधियों से अनभिज्ञ है । वह सबकुछ जानती है और इसी कारण दुःखी है । यह उसकी विक्षिप्तता नहीं, पीड़ा, दुःख व वेदना है जो चारों तरफ भटकती हैं ।

### ❀ दयाल साहब :

'रात का रिपोर्टर' उपन्यास में दयाल साहब एक ऐसे व्यक्ति हैं, जो पुलिस यातना के शिकार हो चुके हैं और कदम–कदम पर रिशी का आगाह किये रखते हैं कि उसे कहाँ और किन मोड़ों पर सतर्क रहना है । दयाल

साहब केवल उसे चौकन्ना रहते हैं । वे उसे पराजित नहीं देखना चाहते । पर यह भी नहीं चाहते कि वह बेमतलब सत्ता के कहर का शिकार हो जाए । दयाल साहब को देखकर रिशी को हर बार लगता है कि जैसे वह उन्हें धैर्य रूप में देख रहा हो । जैसे – ''पहली बार उसने दयाल साहब को देखा और तब उसे लगा कि वह सचमुच किसी दूसरे आदमी को देख रहा है, दूसरे आदमी को पहली बार । पहली बार की छलना कहीं उनकी छलनी देह में छिप गयी थी और दूसरी बार का सत्य उसकी ओर से झाँक रहा था – क्या इसे ही वह आत्मा का देहान्तरण कहते हैं, पर वह कौन सी वैतरनी थी, जिसे पार करके वह दुबारा इस दुनिया में लौट आये थे ।''[५६] इस तरह उपन्यास के अंत में दयाल साहब का यह चरित्र उनके समूचे व्यक्तित्व के संघर्ष को उजागर कर देता है ।

इस उपन्यास में इन्ही पात्रों के अतिरिक्त रायसाहब है जो उसे आत्मकथा लिखने का परामर्श देते है । दूसरा चरित्र इस उपन्यास में अनूपभाई का है जो स्थितियों से बराबर चल रहे हैं । एक और चरित्र हॉलबार्ख है जो रिशी के संघर्षो का साक्षी है । यह पात्र और चरित्र भी अपने–अपने ढ़ंग से इस उपन्यास में संपूर्ण रूप से अपना योगदान करते हैं । इस प्रकार 'रात का रिपोर्टर' के सभी पात्र अपने आप में एक अलग पहचान लेकर उपन्यास के आरंभ से अंत तक चलते हैं ।

## *(III) देश काल और वातावरण :*

'रात का रिपोर्टर' उपन्यास के साथ निर्मल वर्मा की वे सारी मान्यताएँ एक बार खुलकर सामने आ जाती है, जिन्हें वे इतिहास के धरातल पर लगातार व्याख्यायित करते रहे हैं । ''निर्मल काल संबंधी दो बोध रूपों को स्पष्ट करते हैं कि समय का मिथकीय बोध इतिहास को नकारता नहीं । वर्तमान की यह चेतना मनुष्य के भीतर हमेशा मौजूद रही है, किन्तु ऐतिहासिक समय हमेशा इस बोझ और चेतना को दबाने की चेष्टा करता रहा है, ताकि समूची मानवजाति प्रगति के भविष्यवादी अंधकार को स्वीकार कर सके ।''[५७]

वास्तव में निर्मल वर्मा इतिहास की जो चिरंतन व्याख्या करते हैं, उसी मूल विचार से अलग यह उपन्यास एक स्थूल राजनैतिक वातावरण की उपज है जो अनेक देश और समाजों में प्रकारान्तर से किसी सत्ता के साथ आता रहा है । भारत में यह स्थिति थोड़े समय के लिए आयी थी और निर्मल वर्मा ने इसे इतिहास की चिरंतन अवधारणा में देखने का प्रयास किया, जिससे उनकी सार्वकालिक विचारधारा का आलोचक कोई तालमेल नहीं निकाल सके । यही कारण है कि उदयन बाजपेयी इस उपन्यास पर बात करते हुए कहते हैं कि – '' 'रिपोर्टर' शब्द से अपनी आपत्ति जताते हुए निर्मल के 'सुलगती टहनी' नामक निबंध की ओर बढ़ जाते हैं ।''[५८]

यहाँ यह स्पष्ट होता है कि यह उपन्यास किसी भी देशकाल में सत्ता के उस अदम का प्रतिफल है, जहाँ आतंककारी शक्तियाँ अभिव्यक्ति को अपनी मुट्ठी में ले लेती हैं और पूरे देश समाज को अपनी सीमाओं में आबद्ध करना चाहती हैं । सन् १९७६–७७ के आसपास देश में आपतकाल का दौर एक ऐसा ही दौर था, जो सारा लेखन–जगत और सारी पत्रकारिता इसी पहरेदारी से गुजर रहीं थी । एक ओर जहाँ समाज में काले–धंधे करनेवाले सता के कोप–भाजन थे, वहीं देश समाज को जागृत करनेवाले लोग भी जेलों में बंद कर दिये गये । अपनी अनेक उपलब्धियों के बावजूद सता का यह प्रयास देश में कहीं से भी स्वीकार नहीं किया ।

यहाँ पर यह स्पष्ट होता है कि, इतिहास बोध को गहरे यथार्थ से जोड़नेवाले निर्मल वर्मा अपने इस उपन्यास में इतने कलात्मक और मनोवैज्ञानिक नहीं रह गये हैं, जितना कि वह 'वे दिन' में संवेदना के धरातल पर दिखायी देते हैं । यह शायद इसलिए भी है कि निर्मल वर्मा पर विदेशी होने की छाप लगी हुई थी, उसे भारतीयता के लेखन से वह घो देना चाहते थे । लेकिन इस कोशिश में निर्मल वर्मा इतने सतही धरातल पर उतर आते हैं कि उपन्यास उस इतिहास–बोध से जोड़कर देखने पर उतना महत्त्वपूर्ण साबित नहीं हुआ, जितना कि वह संवेदनाओं के धरातल पर महत्त्वपूर्ण हो सकता है । फिर भी उपन्यास को देशकाल और वातावरण की परिधि पर रखना ही होगा ।

यह शायद इसलिए भी आवश्यक है कि निर्मल वर्मा इतिहास के गहरे पक्षघर रहे हैं ।

इस प्रकार 'रात का रिपोर्टर' उपन्यास में निर्मल वर्मा ने आपातकालिन वातावरण को जीवन्तता देने का पूरा प्रयत्न किया है । उन्होंने अपने चरित्रों को देशकाल से जोड़कर कई स्थितियों से गुजरते हुए हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया है । इस प्रकार यह उपन्यास देशकाल और वातावरण से पूर्णतया सफलता प्राप्त किये हुए उपन्यास के रूप में स्वीकार किया जाता है ।

## (५) अंतिम अरण्य :

निर्मल वर्मा कथाकार होने के साथ-साथ एक चिंतक भी हैं । सामान्यतः वे चिंतन की अभिव्यक्ति का माध्यम अपने निबंधों को बनाते हैं । किन्तु जीवन, उसकी सार्थकता और मृत्यु जैसे कई सवाल हैं जो निर्मलजी की कहानियों और उपन्यासों में भी जगह पाते हैं । 'अंतिम अरण्य' इसी तरह का उपन्यास है । यह निर्मल वर्मा का पाँचवा और अंतिम उपन्यास है । यह उपन्यास जीवन और मृत्यु से संबंधित उन सवालों पर विचार करता है जो हर व्यक्ति के सामने आता है किन्तु जिनसे हम नजरें चुराकर दूसरी तरह निकल जाते हैं । यद्यपि सतही तौर पर यह उपन्यास एक पहाड़ी कस्बे में चार-पाँच पात्रों के सामान्य जीवन का वृतांत मात्र लगता है । किन्तु गहराई तक जाने पर यह जीवन और उससे जुड़े कई महत्व्पूर्ण सवालों से हमारा साक्षात्कार कराता है । इसकी कथावस्तु निम्न प्रकार हैं ।

### *(I) कथा वस्तु :*

'अंतिम अरण्य' उपन्यास एक रिटायर्ड अधिकारी मेहरा साहब को केन्द्र में रखकर लिखा गया है । मेहरा साहब अपनी पत्नी दीवा के साथ निर्जन पहाड़ी कस्बे में जीवन बिता रहे हैं । दीवा मेहरासाहब के बीते जीवन के अनुभवों को लिखने के लिए एक व्यक्ति की जरुरत का विज्ञापन अखबार में देती है । इस विज्ञापन को पढ़कर लेखक उस पहाड़ी कस्बे में आता है, जहाँ सभी लोग अपने जीवन के अंतिम सिरे में आते हैं । लेखक प्रतिदिन मेहरा

साहब के अनुभवों को बाँटता है और कलमबद्ध करता है । धीरे–धीरे लेखक का मेहरा साहब से विशेष लगाव हो जाता है । इसी लगाव के चलते लेखक दीवा की मृत्यु के बाद भी, डॉक्टर सिंह, निरंजन बाबू और अन्नाजी के बार–बार कहने के बाद भी मेहरा साहब को छोड़कर नहीं जाता । वह मेहरा साहब के प्रति विशेष प्रकार का उत्तरदायित्व महसूस करने लगता है ।

मेहरा साहब इस उपन्यास के केन्द्रीय पात्र हैं । पूरा उपन्यास मेहरा साहब की आसन्न मृत्यु और उससे उपजी स्थितियों पर रचा गया है । मृत्यु धीरे–धीरे ढलती शाम की तरह उनकी तरफ आ रही है । लेकिन वे इससे भयभीत नहीं है । जिस जीवन्तता से उन्होंने अपनी जिन्दगी जी है । उसी सहजता से वे अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे हैं । डॉ. सिंह लेखक और मुरलीधर मेहरा साहब से छिपाना चाहते हैं । मगर मेहरा साहब खुद इनसे अपनी मृत्यु के बारे में पूछते हैं । वे डॉक्टर सिंह अपने बाकी समय के बारे में पूछते हैं । वे लेखक से अपने मरने के बाद अपने संस्मरणों से उभरनेवाली अपनी छवि के बारे में पूछते हैं – ‘‘तुमने मेरे बारे में इतनी नोट बुक्स भरी है... यह बताओ जो उन्हें पढ़ेगा वह मेरे बारे में क्या सोचेगा । हाँ मैं उसे कैसा दिखाई दूँगा ? अगर में जीवित नहीं रहा तो कैसे शक्ल सूरत उसके दिमाग में आयेगी ?’’[५६]

डॉ. सिंह, तिया, निरंजन बाबू, अन्नाजी और मुरलीधर उपन्यास के अन्य महत्त्वपूर्ण पात्र हैं । तिया मन में विशेष अनुराग जगाती है । अपने माता–पिता के स्नेह से वंचित रही तिया अपने आप में अकेली सी नजर आती है । पैसे से डॉक्टर तिया अपने पिता मेहरा साहब को प्रेम भी करती है और घृणा भी, वह उन्हें अपनी माँ के घर छोड़कर चले जाने का जिम्मेदार मानती है । तिया हर दो–तीन महीनों में अवकाश लेकर कुछ दिनों के लिए मेहरा साहब के पास आती है । मेहरा साहब हर बार उसे और कुछ दिन रुकने को कहते हैं । लेकिन हर बार वह इन्कार कर चली जाती है । उसके मन में मेहरा साहब से अधिक चिंता और करुणा उन मरीजों के प्रति है जो उसके अस्पताल में आते हैं । तिया गाँवों की सरकारी डिस्पेंसरियों में दवा

बाँटने जाती है । उसे उम्मीद है कि इन्हीं गाँवों में एक दिन उसे उसकी माँ मिल जायेगी । वह कहती भी है – "आज भी जब मैं गाँव की सरकारी डिस्पेंसरियों में दवाईयाँ बाँटने जाती हूँ तो सोचती हूँ वह कहीं दिखाई दे जायें ।"[६०]

एक निरंजन बाबू हैं जो दर्शन की गुत्थियों को सुलझाते–सुलझाते जीवन की गुत्थियों में उलझ गये हैं । वे साल के छः महीने अपना घर छोड़कर इस पहाड़ी कस्बे में चले आते हैं । बहाना सेव के बगीचो की देखरेख करने का होता है । वस्तुतः वे वहाँ आकार जीवन को नये सिरे से शुरु करना चाहते हैं – "मैं जब यहाँ आया था, तो मैंने सोचा था, मेरी नीचे वाली जिन्दगी पूरी हो गई है... मैं सबकुछ नया सिरे से शुरु कर सकता हूं... नया सिरा ।"[६१] लेकिन निरंजन बाबू की पकड़ में कोई नया सिरा नहीं आता । वे हर बार वापस नीचे लौट जाते हैं । लेखक से निरंजन बाबू की पुरानी मित्रता है । इस मित्रता के बहाने के लेखक को बार–बार यहाँ से चले जाने को कहते हैं – "तुम एक मरी हुई औरत के कहने पर ऐसे आदमी के साथ रह रहे हो, जो खुद जानेवाले हैं ।"[६२]

अन्नाजी युद्धोपरान्त जर्मनी छोड़कर भारत आ गई है । वे कई जगह गवर्नेस रहने के बाद इस पहाड़ी कस्बे में बस गई है । वे यहाँ इस तरह से रहती है जैसे हमेशा से यहाँ थीं और हमेशा यहाँ रहेंगी । "मैं जब आज आपके घर आ रहा था... निरंजनबाबू ने कहा, तो सोचकर अचानक बहुत खुश हुई । मैं कितनी मुदत बाद इस शहर में क्यों न लौटूं । हमेशा आपके पास आ सकता हूँ । आप हमेशा यहाँ रहेगी ।"[६३] एक डाक्टरसिंह है जो अपना क्लिनिक चलाते हैं । वे अपने घोड़े सेबस्टियन के साथ मरीजों को देखने जाते हैं । मेहरा साहब समय–समय पर चैक–अप के लिए डाक्टर सिंह को बुलाते है ।

मृत्यु इस उपन्यास का मूल स्वर है । मृत्यु एक छाया की तरह पूरे उपन्यास पर छाई हुई है, लेकिन उपन्यास के पात्र मृत्यु से भयभीत नहीं हैं । वरन वे मृत्यु को सहजता से स्वीकार करने का प्रयत्न करते नजर आते है ।

दूसरे पात्र लेखक डॉक्टर सिंह, निरंजन बाबू, अन्नाजी भी मेहरा साहब की ओर धीरे–धीरे बढ़ती मृत्यु को महसूस कर रहे है । यह अनुभव उन्हें मेहरा साहब ही नहीं स्वयं अपने जीवन के प्रति भी करुणा बना रहा है । इसी अनुभव के चलते हुए जीवन की सार्थकता व नश्वरता पर गहराई से चिंतन करते है । यह चिंतन अक्सर इनकी बात–चीत में भी झलक जाता है । यहाँ मृत्यु अनहोनी नहीं बल्कि जीवन को संपूर्णता देनेवाली घटना लगती है । इस प्रकार पूरा उपन्यास मृत्यु पर्यंत जीवन की जिजीविषा का उपन्यास है ।

## *(II) पात्र या चरित्र :*

'अंतिम अरण्य' उपन्यास के पात्रों का यदि हम वर्गीकरण करेंगे तो हम देखेंगे कि इस उपन्यास के कथानक में 'मेहरासाहब' और कथानायक 'मैं' कि प्रमुख भूमिका रहीं है । कई जगह पर प्रमुखता अन्नाजी की भी है जो एक विदेशी महिला है और अपना देश छोड़कर भारत चली आई । अन्य सहायक पात्रों में डॉ. सिंह, निरंजन बाबू, तिया और मुरलीधर जैसे लोग है जो अपनी उपस्थिति से इस कथानक को सम्पन्न करता है । इन पात्रों की परख हम निम्नलिखित ढ़ंग से कर सकते हैं ।

## *(i) मुख्य पात्र :*

### ❀ मेहरा साहब :

'अंतिम अरण्य' उपन्यास का मुख्य नायक मेहरा साहब है । मेहरा साहब बिते हुए युग के आई.ए.एस. अधिकारी है, जो देश–विदेश में रहे हैं और जीवन के अंतिम छोर पर अपनी पत्नी के साथ एक पहाड़ी कस्बे में जीवन व्यतित कर रहा हैं । मेहरा साहब अपनी पत्नी दीवा के साथ निर्जन पहाड़ी कस्बे में जीवन बिता रहे है ।

पूरा उपन्यास मेहारा साहब की आसन्त मृत्यु और उससे उपजी स्थितियों पर रचा गया है । मृत्यु धीरे–धीरे ढलती शाम की तरह उनकी तरफ आ रहीं है । लेकिन वे इससे भयभीत नहीं होते । जिस जीवन्तता से उन्होंने अपनी जिन्दगी जी है । उसी सहजता से वे अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

जीवन के इन आखिरी क्षणों में मेहरा साहब के साथ रहते हुए लेखक ने उनके होने को इतना विशिष्ट माना है कि उनकी उपस्थिति से जैसे समय का एक चक्र पूरा हो जाता था । क्रमशः जिन्दगी का ग्राफ पूरा हो रहा है । मगर मेहरा साहब उस ग्राफ के बीच चट्टान की तरह है, जहाँ डॉ. सिंह हैरान है कि उन्हें यदि कोई बीमारी होती तो वे इलाज ढूँढ़ सकते थे, लेकिन इस स्थिति का क्या किया जाए कि उनके भीतर का हरापन सूखता जा रहा है । जैसे – ‘‘सत्तर बरस के ढ़ाँचे में कितना कुछ सुख गया है, बदल गया है, यह मैं आपको बता सकता हूँ । शायद बता सकता, यदि उन्हें कोई बीमारी होती, कोई बुखार किसी तरह का दुःख दर्द, किसी तरह की टीस, कोई टयूमर... तब उनमें से किसी को पकड़कर उनके भीतर झाँक सकता था... कौन सी जगह है, जहाँ रोड़ा अटक गया है, कैसे उसे निकाला जा सकता है... लेकिन अगर ऐसा कुछ न हो, सबकुछ शांत और समतल हो.. तब कोई दरवाजा नहीं जिसे खोलकर आप उनके भीतर प्रवेश कर सकें ।’’[६४] मेहरा साहब जिन्दगी के अंतिम क्षितिज तक इसी संपूर्ण व्यक्तित्व और स्वास्थ्य के साथ रहें ।

वे अपने जीवन की गाथा लिखवाना चाहते है कि इस बीच उनकी पत्नी उनका साथ छोड़ देती हे, जो एक लम्बे समय से बिमारी का शिकार है । मेहरा साहब के पास अब जीने को केवल उनके नाम का एक पत्थर है, जो उनकी कब्र पर बँधा हुआ है । मेहरा साहब अभी उस पत्थर से मुँह मोड़कर अपने अनुभवों का विस्तार देने में लगे हैं । लेकिन पगडंडी के एक मोड़ पर उनका धैर्य समाप्त हो जाता है । और वे जीवन और मृतयु की व्याख्या करते हुए स्वयं भी मृत्यु की ओर बढ़ जाते हैं ।

इस प्रकार ‘अंतिम अरण्य’ उपन्यास में लेखक शायद यह बताना चाहता है कि मौत जिन्दगी का अंतिम सच है, जिसका स्वीकार करना ही अंततः आदमी की नियति है ।

## ❀ *कथानायक 'मैं' :*

इस उपन्यास का दूसरा महत्त्वपूर्ण पात्र है कथानायक 'मैं' । महानगर दिल्ली का एक युवक महानगर की भीड़–भाड़ से ऊबकर उस पहाड़ी कस्बे की शरण लेता है, जहाँ मेहरा साहब अपने जीवन के अनुभव लिखवाने के लिए अखबार के विज्ञापन देते हैं । जिसके लिए उसे पारिश्रमिक के रूप में केवल आजीविका मिलेगी याने की खाना–पीना, रहन–सहन का खर्च । कथानायक दिल्ली के स्टेटमेन्स में वह विज्ञान देखता है और वहाँ जाकर मेहरा साहब की पत्नी से मिलकर यह काम स्वीकार कर लेता है । लेंकिन उसे पता चलता है कि मेहरा साहब की पत्नी उन्हें छोड़कर एकदम चल देती है । मेहरा साहब की देखभाल के लिए केवल कथानायक 'मैं' ही अकेला रह जाता है । यहाँ तक कि डॉ. तिया, डॉ. सिंह, निरंजन बाबू, मेहरा साहब की जिन्दगी में बहुत से लोग आते हे, लेकिन कथानायक 'मैं' अंततः उनके जीवन में प्रमुख भूमिका निभाता है । और उनकी अस्थियों को लेकर उस पहाड़ी नदी में प्रवाहित करने जाता है, जो वहाँ से बहुत मिल दूर होगी ।

इस प्रकार यहाँ यह स्पष्ट है कि कथानायक की यह भूमिका उस व्यक्ति की है, जो अपने पूर्वज का तर्पण कर रहा हो । इसलिए इस उपन्यास में आरंभ से अंत तक मेहरा साहब के जीवन से जुड़े हुए कथानायक 'मैं' का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है ।

## *(ii) गौण पात्र :*

### ❀ अन्नाजी :

इस उपन्यास में गौण चरित्र के रूप में अन्नाजी का स्थान भी महत्त्वपूर्ण है । अन्नाजी मेहरा साहब की जिन्दगी में एक ऐसी महिला पात्र है, जो बरसो पहले जर्मनी की दुनिया छोड़कर यहां आयी है और उस पहाड़ी कस्बे में रहकर अपना जीवन व्यतित करती है । अन्नाजी इतनी सुंदर है कि जैसे कोई बूढ़ि जादूगरनी हों । जैसे – "प्राचीन जर्मन, जंगली कबीलों की

कोई साम्राज्ञीं जिसे इशारे मात्र से समूचे वन्य स्थल के जीवजन्तु, प्रकृति का कण–कण हिलते लगते है ।"[६५]

अन्नाजी युद्धोपरांत जर्मनी छोड़कर भारत आ गई है । वे कई जगह गवर्नेस रहने के बाद इस पहाड़ी कस्बे में बस गई है । वे यहाँ इस तरह से रहती है जैसे हमेशा से यहाँ थी और हंमेशा यहाँ रहेंगी । अन्नाजी मि. मेहरा, निरंजन बाबू, और डॉ. सिंह के बिच एक ऐसी कड़ी है, जिनके घर पर लोगों की बैठके होती है और सिगरेट और विदेशी वाईन से उनके बीच एक युवा संसार लौट आता है । अन्नाजी मेहरा साहब और दीवा से किताबे ले जाती है, पढ़ती है और उस पहाड़ी कस्बे में उनके बीच एक खुशनुमा मौसम पैदा करती है । यहाँ इस उपन्यास में अन्नाजी का चरित्र भी महत्त्वपूर्ण रहा है ।

## ❀ निरंजन बाबू :

निरंजन बाबू राजस्थान के अपने राजसी ठाठ और दिल्ली विश्वविद्यालय की प्रोफेसर की नौकरी छोड़कर उस पहाड़ी कस्बे में सेव की खेती करते हैं और मौसम के दिनों में वहाँ आ जाते हैं । फिर मि. मेहरा, डॉ. सिंह, कथानायक 'मैं', अन्नाजी का संसार उनके होने से संपूर्ण हो जाता है । निरंजन बाबू को उन सेव के व्यापार की कोई जरुरत नहीं है । लेकिन मेहरा साहब और अन्नाजी की तरह वे भी इस पहाड़ी कस्बे में अपने जीवन का जैसे कोई सूत्र ढूँढ़ रहे हैं ।

वे साल के छः महीने अपना घर छोड़कर इस पहाड़ी कस्बे में चले आते हैं । बहाना सेव के बगीचों की देखरेख करने का होता है । मगर वस्तुतः वे यहाँ आकर जीवन को नये सिरे से शुरु करना चाहते है – "मैं जब यहाँ आया था, तो मैंने सोचा था, मेरी नीचे वाली जिन्दगी पूरी हो गई है.. मैं सब कुछ नये सिरे से शुरु कर सकता हूँ.. नया सिरा ।"[६६] निरंजन बाबू की पकड़ में कोई नया सिरा नहीं आता । वे हर बार वापस नीचे लौट जाते हैं । लेखक से निरंजन बाबू की पुरानी मित्रता है । इस प्रकार निरंजन बाबू उपन्यास में आधुनिक ढ़ंग से जीते हुए दिखाई देते हैं ।

### ❀ डॉक्टर सिंह :

इस उपन्यास में डॉ. सिंह उस पहाड़ी कस्बे में एक ऐसे डॉक्टर है, जो अपना क्लिनिक चलाते है और मेहरा साहब के निकट का डॉक्टर है । वे अपने घोडे सेबस्टियन के साथ मरजिों को देखने जाते हैं । मेहरा साहब समय–समय पर चैक–अप के लिए डॉक्टर सिंह को बुलाते हैं । वे दिन में अपने मरिजों की देखभाल करते दिखाई देते हैं और शाम को क्लब के बार में अपनी ड्रींक ले रहे होते हैं । ऐसे समय उनके भीतर जैसे एक लावा–सा उबलता रहता है । लेकिन इस लावे के बावजूद डॉ. अंततः उनकी देखभाल करता रहता है । वह उन्हें जीने के सूत्र देता रहता है । लेकिन मि. मेहरा उसकी बातों पर हँस देते है और डॉ. सिंह का सारा धैर्य तोड़कर रख देते है ।

### ❀ मुरलीधर :

मुरलीधर इस उपन्यास में मेहरा साहब का घरेलू नौकर हैं, जो मेहरा साहब की साँस तेज होते ही लाल टेन उठाये कथानायक के घर की ओर दौड़ता है । वह पास के पहाड़ी गाँव से आकर वहाँ रहता है और मेहरा साहब की ओर संपूर्ण भक्ति रखता हुआ कथानायक 'मैं' को भी अपनी आत्मीयता में बाँध लेता है । लेकिन एक नौकर और मालिक के बीच की दूरी को अंततः वह पार नहीं करता और अंतर बनाये रखता है ।

### ❀ दीवा :

दीवा इस उपन्यास में एक सहायक नारी चरित्र के रूप में हमारे सामने उपस्थित होती है । दीवा मेहरा साहब की दूसरी पत्नी है, जिसके साथ रहते हुए मेहरा साहब को पहली पत्नी के बारे में कभी कुछ याद नहीं आता । दीवा मेहरा साहब के बीते जीवन के अनुभवों को लिखने के लिए एक व्यक्ति की जरुरत का विज्ञापन अखबार में देती है । मेहरा साहब कभी चर्चा नहीं करते कि वह कौन थीं और किस हालांतो में मेहरासाहब से अलग हो गई । दीवा क्रिश्चियन है, और उन्हें इस बात का बोध है कि वे एक हिन्दू पति की

पत्नी है, जिसे वह अन्नाजी से भावुकता के क्षणों में कह देती है । मेहरा साहब उनके साथ छुट्टियाँ बिताने गये थे, जहाँ उन्हें पता चला कि वे एक ऐसी बीमारी का शिकार हुई जिसका इलाज संभव नहीं है । अंततः दीवा उस बीमारी के जलते उनका साथ छोड़ जाती है ।

### ❀ डॉक्टर तिया :

डॉ. तिया मेहरा साहब की बेटी है । वह सुदूर पहाड़ी कस्बों में डॉक्टर का काम करती है । अपने माता-पिता के स्नेह से वंचित रही तिया अपने-आप में अकेली-सी नजर आती है । पेशे से डॉक्टर तिया अपने पिता मेहरा साहब को प्रेम भी करती है और घृणा भी । वह अपनी माँ के घर छोड़कर चले जाने का जिम्मेदार मानती है । तिया हर दो-दीन महीने में अवकाश लेकर कुछ दिनों के लिए मेहरा साहब के पास आती है । मेहरा हर बार उसे कुछ दिन रुकने को कहते है । लेकिन हर बार वह इन्कार कर चली जाती है । उसके मन में मेहरा साहब से अधिक चिन्ता और करुणा उन मरीजों के प्रति है जो उसके अस्पताल में आते है । तिया उस कस्बे में लौटकर कथानायक के साथ अपने पिता का दाह संस्कार करती है, और गंगा तर्पण का काम कथानायक 'मैं' पर छोड़कर अपने को निरीह अनुभव करती है । इस प्रकार उपन्यास में तिया का चरित्र अपने-आप में स्वतंत्र रूप में अकेलेपन को लिये हुए दिखाई देता है ।

## *(III) देशकाल वातावरण :*

निर्मल वर्मा का 'अंतिम अरण्य' उपन्यास स्वयं में अवसाद की गहरी छाया से परिपूर्ण है । इसी अवसाद को निर्मल वर्मा ने सारे उपन्यासों में बार-बार अभिव्यक्त किया है । यहीं कारण है कि आलोचक उनके उपन्यासों को दृश्य की कसक मानकर उनके स्मृतिमय उन्माद को रेखांकित करते हैं । यही कारण है कि डॉ. त्रिभुवनसिंह कहते है कि – ''निर्मल अपने उपन्यासों के लिए अवसादमयी स्थितियाँ चुनते है । इसी कारण अनुभूति का एक जैसा रूप सर्वत्र विद्यमान है । द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद भ्रमण करते हुए निर्मल वर्मा

ने अवसाद और अंतर्हीन घुटन के लिए अर्तहीन धरातल पा लिया है । युद्ध से निर्मित मानसिकता, टूटती-दरकती सभ्यता में एकाकीपन से पीड़ित व्यक्ति उनका प्रिय विषय है । निर्मल कलाकार लेखक है । मनुष्य में छिपे दर्द को कलात्मक ढ़ंग से कुरेदने का ढ़ंग उनके पास है । दृश्य और घटनाएँ इसी कसक, अतृप्ति और निराशा के वातावरण में डूब-डूब जाती है और पाठक उस विचित्र मनोदशा में तल्लीन हो जाता है ।... वह वर्तमान चोट नहीं करता, सिर्फ दुःखी होता है और यह भी नहीं जानता कि ऐसा क्यों ?''[६७]

यहां पर यह स्पष्ट है कि निर्मल की रचनाओं का संबंध दूसरे महायुद्ध से सीधा रहा है । उनकी रचनाओं में दूसरे महायुद्ध के बाद जिस समाज में स्मृतियों के दंश बार-बार उभरकर सामने आते है । मलयज ने उनके स्मृतिबोध को रचना के लिए निर्भर नहीं माना है । मलयज कहते हैं कि - ''निर्मल वर्मा स्मृति के संवेदन और यथार्थ के संवेदन के बीच स्थित वस्तुगत दशा को महसूस करते हैं । निर्मल वर्मा वर्तमान को अतीत बनाकर ही जीते हैं, क्योंकि वे अतीत के साथ-साथ वर्तमान के अनुभव को भी स्मृति में ही जीते हैं ।''[६८] निर्मल वर्मा के स्मृति-विमर्श को कथाकार कृष्णा सोबती अपने वर्तमान से कही हुई एक सोची-समझी धारणा मानती है । ''प्यारे दोस्त, शाम भले कन्सल पर जाओ.. तुम्हारी लाजवाब कलम से कोई यथार्थ तो उभरे ।''[६९]

यहाँ पर स्पष्ट हो जाता है कि निर्मल वर्मा का स्मृति-बोध एक खास मुकाम पर, खास तरह की रचनात्मकता के लिए ठहरा हुआ बोध है, जो उनकी रचनाओं में बार-बार आता है । निर्मल वर्मा ने प्रेम के लिए भी सदैव आतंक को ही जन्म दिया है, और वह उपन्यास क्योंकि मृत्युबोध से संबंधित हैं । निर्मल वर्मा ने मेहरा साहब के पूरी तरह तटस्थ रहने के बावजूद अन्नाजी के पूरी तरह रागमय होने के विपरीत ढलती शामों के प्रभाव को जिस तरह अंकित किया है वह महायुद्धोतर समाज में उम्र के अंतिम पड़ाव पर जी रहे वृद्ध का अनिवार्य देशकाल और वातावरण है, जिसकी मर्मान्तक त्रासदी से इन्कार नही किया जा सकता । भले ही यह दुनिया मेहरा साहब, अन्नाजी, निरंजन बाबू जैसे लोगों की दुनिया है, जो अर्थ के धरातल पर इतने सुखी

और सम्पन्न हैं कि उनके लिए दुनिया की महंगी लायब्रेरियाँ, महंगी शराब, महेल हिल स्टेशन और डनहिल के पैकेट सुविधा से उपलब्ध हैं । भले ही वे आत्मकथा लिखवाने के लिए किसी को महँगे वेतन पर नियुक्त कर रहे हों, लेकिन मौत का अकेलापन उन्हें अपने ही धरातल पर जीना होता है, जिसमें जिन्दगी के वह सारे देश है, जो एक भारतीय व्यक्ति और समाज के साथ हो सकते हैं ।

इसी प्रकार निर्मल वर्मा ने इस उपन्यास में देशकाल और वातावरण की दृष्टि से एक ऐसा वातावरण खड़ा किया है, जो मृत्यु एक छाया की तरह फैली हुई आदि से अंत तक दिखाई देती है । प्रकृति, पहाड़ियों की गोद में चलते हुए चरित्रों को ध्यान में रखकर सुन्दर वातावरण का निर्माण करना ही एक अच्छे कलाकार की पहचान बनती है । निर्मल वर्मा ने इस उपन्यास में देशकाल–वातावरण को सहजता के साथ पत्रानुकूल, घटनानुकूल, वातावरण का निर्माण प्रस्तुत किया है ।

## ❀ निष्कर्ष :

हिन्दी साहित्य में निर्मल वर्मा कलावादी उपन्यासकार माने जाते हैं । उनके सारे उपन्यास विशेष व्यक्तियों की विशिष्ट परिस्थिति से उपजी मनःस्थिति का चित्र प्रस्तुत करते हैं । समाज का सबसे कमजोर व्यक्ति शायद अत्यंत भावुक एवं संवेदनशील व्यक्ति है । ऐसा प्रतीत होता है जैसे इसी वर्ग का बोझ निर्मल वर्मा अपने पर समग्र रूप से लादे हुए चलते हैं और संक्षेप में कहें तो वे समाज के खामोश एवं टूटे हुए व्यक्ति की भावनाओं के प्रवक्ता हैं ।

निर्मल वर्मा ने हिन्दी–उपन्यास क्षेत्र में पहला कदम १९६४ में 'वे दिन' उपन्यास लिखकर रखा । इसके बाद उन्होंने चार उपन्यास आज तक हिन्दी साहित्य जगत को भेट किये । निर्मल वर्मा के पांचों उपन्यास व्यक्तिवादी हैं । अतः उनमें वैयक्तिक अनुभूतियों की प्रधानता रही है । कई बार उपन्यास पढ़ते हुए लगता है जैसे यह उपन्यास स्वयं निर्मल वर्मा के भोगे हुए यथार्थ का अनुभव हैं ।

क्योंकि उनको पात्रों की जो स्थिति है वह निर्मल के स्वीकृत अनुभवों से मेल खाती प्रतीत होती है । निर्मल वर्मा के उपन्यासों में एक विशेष बात परिलक्षित होती है – पात्रों की लगभग एक जैसी संवेदना । उनके सभी पात्रों की स्थिति एक–दूसरे से कहीं–न–कहीं मिलती–जुलती प्रतीत होती है । उनके सारे पात्र अकेले है, घर से टूटे हुए है और अपनी–अपनी व्यथा में झुलसते हुए मौन धारण किये हुए है ।

निर्मल वर्मा के उपन्यासों में व्यक्ति की निजी, सूक्ष्म संवेदना की अभिव्यक्ति हुई है । यह पात्र पीड़ा सहन करते हैं पर किसी दूसरे को परेशान नहीं करते । वे अपनी अग्नि की उष्मा से दूसरों को सर्वथा परे ही रखते है, चाहें स्वयं झुलस–झुलस कर, तड़प कर मरे, किन्तु पात्रों की विशेषता यह है कि वे अपना दुःख किसी के आगे रोते नहीं हैं, बल्कि ऊपरी सतह पर मौन, खामोश दिखते हुए वे अंदर ही अंदर कुढ़ते रहते हैं, कुंठित होते रहते हैं और जब यह पीड़ा असहनीय हो जाती है तब कोई आत्महत्या कर लेता है, कोई शराब का सहारा लेता है, कोई अपनी आत्मा के कष्ट का बदला अपने शरीर से लेने की कोशिश करता है तो कोई नैतिक–अनैतिक की सीमा–रेखा से परे वहीं करने पर बाध्य होता है जो उसका मन चाहता है । इस प्रकार समस्त कथा–पात्र अपनी–अपनी मन की वेदना से पीड़ित है और उससे मुक्त होने की चेष्टा में लगे रहते हैं ।

'वे दिन' के पात्रों की मूल संवेदना है – अकेलेपन, परायेपन व निर्मूलता का बोध तथा गृह–वितृष्णा । सारी कथा में उनके प्रायः सभी पात्र पुनः घर लौटने के इच्छुक नहीं हैं, क्योंकि घरों के प्रति उनका लगाव समय के साथ–साथ बिगड़ता चला गया है । उनके संबंध आत्मीयता के नहीं औपचारिकता के हैं । युद्धोपरांत मोहभंग की अनुभूति के फलस्वरूप जो क्षण को भोगने की आसक्ति पैदा हुई, वह इन पात्रों में कहीं–कहीं परिलक्षित होती है । वैसे ही "लाल टीन की छत" बाल मनोवैज्ञानिकता से संबंधित उपन्यास है जिसमें काया, लामा तथा बीरु को मार्मिक स्थिति है उसकी सूक्ष्म अभिव्यंजना यहाँ हुई है । इस उपन्यास में चारों पात्र ऐसे है जो घर को छोड़कर जंगलों,

मंदिरों, गिरजों, पहाड़ों, एवं रेल्वे लाईनों पर दिन भर चक्कर काटते रहते हैं । इसी प्रकार ''एक चिथड़ा सुख'' उपन्यास असफल प्रेमी–युगलों के निरुद्देश्य प्रेम, असफल पात्र अंत तक अपने सीमित दायरे में ही रहकर अनिस्वय अनिर्णय में ही डोलते रहते हैं । उनका अगला उपन्यास ''रात का रिपोर्टर'' का ढाँचा कुछ भिन्न प्रकार का है । इसके संकट कालीन स्थिति में व्यक्ति–मन में उत्पन्न भय, संत्रास, अकेलापन तथा तनाव आदि का सूक्ष्म चित्रण है । साथ ही द्वंद्वग्रस्त विभाजित व्यक्तित्व के कारण अन्य व्यक्तियों के जीवन पर पड़नेवाले प्रभाव को भी उभारा गया है । निर्मल वर्मा का अंतिम उपन्यास ''अंतिम अरण्य'' है जो कि इस उपन्यास का मूल स्वर मृत्यु को लेकर कथा चलती है । यह उपन्यास मूल में जीवन और मृत्यु से संबंधित उन सवालों पर विचार करता है जो हर व्यक्ति के सामने आते रहते हैं, किन्तु जिनमें हम नजरे चुराकर दूसरी तरह निकल जाते हैं । यहाँ पर मृत्यु एक छाया की तरह पूरे उपन्यास पर छाई हुई है लेकिन उनके पात्र मृत्यु से भयभीत नहीं है, वरन वे मृत्यु को सहजता से स्वीकार करने का प्रयास करते नजर आते हैं ।

इस प्रकार निर्मल वर्मा ने अपने सभी उपन्यासों के माध्यम से समाज की इकाई 'व्यक्ति' को केन्द्र में रखकर उसकी विडंबनाओं, विसंगतियों, उसकी सूक्ष्म आंतरिक मनोदशाओं का और उसके अनुभवों का बारीकी से प्रस्तुतीकरण किया है । इस प्रकार उपर्युक्त संवेदनाओं की अतिसूक्ष्म अभिव्यक्ति एक ऐसी विशेषता है जो निर्मल वर्मा को अपने समकालीन रचनाकारों से अलग करती प्रतीत होती है ।

## संदर्भ सूची :

| क्रम | | पृष्ठ क्रमांक |
|---|---|---|
| १ | आधुनिक हिन्दी उपन्यास – इन्द्रनाथ मदान | ७६ |
| २ | ‘वे दिन’, निर्मलवर्मा | १६३ |
| ३ | ‘वे दिन’, निर्मलवर्मा | ३३ |
| ४ | ‘वे दिन’, निर्मलवर्मा | ७३ |
| ५ | ‘वे दिन’, निर्मलवर्मा | ६५ |
| ६ | ‘वे दिन’, निर्मलवर्मा | १६३ |
| ७ | ‘वे दिन’, निर्मलवर्मा | १०६ |
| ८ | ‘वे दिन’, निर्मलवर्मा | २०८ |
| ९ | ‘वे दिन’, निर्मलवर्मा | २१० |
| १० | ‘वे दिन’, निर्मलवर्मा | ६७ |
| ११ | ‘वे दिन’, निर्मलवर्मा | ६० |
| १२ | ‘वे दिन’, निर्मलवर्मा | ६७ |
| १३ | ‘वे दिन’, निर्मलवर्मा | ५८ |
| १४ | ‘वे दिन’, निर्मलवर्मा | ४५ |
| १५ | निर्मल वर्मा – संपादक अशोक – बाजपेयी | ४८ |
| १६ | निर्मल वर्मा और उत्तर उपनिदेशवाद –सुधीश पचौरी | ३१ |
| १७ | निर्मल वर्मा सृजन और चिंतन – डॉ. प्रेमसिंह | ४७ |
| १८ | ‘चीड़ों पर चाँदनी’ – निर्मल वर्मा | १६४ |
| १९ | ‘लाल टीन की छत’ – निर्मल वर्मा | १३४ |
| २० | ‘लाल टीन की छत’ – निर्मल वर्मा | ८७ |
| २१ | ‘लाल टीन की छत’ – निर्मल वर्मा | ७७ |
| २२ | ‘लाल टीन की छत’ – निर्मल वर्मा | १६७ |
| २३ | ‘लाल टीन की छत’ – निर्मल वर्मा | २० |
| २४ | ‘लाल टीन की छत’ – निर्मल वर्मा | २०.२१ |
| २५ | ‘लाल टीन की छत’ – निर्मल वर्मा | १३१ |
| २६ | ‘लाल टीन की छत’ – निर्मल वर्मा | ३८ |
| २७ | ‘लाल टीन की छत’ – निर्मल वर्मा | १०६ |
| २८ | ‘लाल टीन की छत’ – निर्मल वर्मा | १०६ |
| २९ | ‘लाल टीन की छत’ – निर्मल वर्मा | ३८ |
| ३० | ‘लाल टीन की छत’ – निर्मल वर्मा | १५६ |
| ३१ | ‘लाल टीन की छत’ – निर्मल वर्मा | १४८ |
| ३२ | निर्मल वर्मा सृजन और और चिंतन – रमेशचंद्र शाह | ६८ |
| ३३ | निर्मल वर्मा और उत्तर उपनिवेशवाद – सुधीश पचौरी | ४२ |
| ३४ | हिन्दी उपन्यास – ममता कालिया | ५० |
| ३५ | ‘एक चिथड़ा सुख’ – निर्मल वर्मा | ८६ |

| | | |
|---|---|---|
| ३६ | ‘एक चिथड़ा सुख’ – निर्मल वर्मा | ६७ |
| ३७ | ‘एक चिथड़ा सुख’ – निर्मल वर्मा | २१ |
| ३८ | ‘एक चिथड़ा सुख’ – निर्मल वर्मा | ६० |
| ३६ | ‘एक चिथड़ा सुख’ – निर्मल वर्मा | २२ |
| ४० | ‘एक चिथड़ा सुख’ – निर्मल वर्मा | १०५ |
| ४१ | ‘एक चिथड़ा सुख’ – निर्मल वर्मा | १२६ |
| ४२ | ‘एक चिथड़ा सुख’ – निर्मल वर्मा | २८ |
| ४३ | ‘एक चिथड़ा सुख’ – निर्मल वर्मा | ८६ |
| ४४ | ‘एक चिथड़ा सुख’ – निर्मल वर्मा | ३८ |
| ४५ | ‘एक चिथड़ा सुख’ – निर्मल वर्मा | ११० |
| ४६ | ‘एक चिथड़ा सुख’ – निर्मल वर्मा | ७६ |
| ४७ | ‘एक चिथड़ा सुख’ – निर्मल वर्मा | ४५ |
| ४८ | ‘एक चिथड़ा सुख’ – निर्मल वर्मा | ११२ |
| ४६ | ‘एक चिथड़ा सुख’ – निर्मल वर्मा | ६८ |
| ५० | ‘एक चिथड़ा सुख’ – निर्मल वर्मा | ६० |
| ५१ | ‘रात का रिपोर्टर’ – निर्मल वर्मा | ५५.५६ |
| ५२ | ‘रात का रिपोर्टर’ – निर्मल वर्मा | १२४ |
| ५३ | निर्मल वर्मा – संपादक अशोक बाजपेयी | १८६ |
| ५४ | ‘रात का रिपोर्टर’ – निर्मल वर्मा | ६३ |
| ५५ | ‘रात का रिपोर्टर’ – निर्मल वर्मा | ३६ |
| ५६ | ‘रात का रिपोर्टर’ – निर्मल वर्मा | १२४ |
| ५७ | निर्मल वर्मा – सृजन और चिंतन – डॉ. प्रेमसिंह | १५८ |
| ५८ | निर्मल वर्मा – सृजन और चिंतन – डॉ. प्रेमसिंह | २४० |
| ५६ | ‘अंतिम अरण्य’ – निर्मल वर्मा | २११ |
| ६० | ‘अंतिम अरण्य’ – निर्मल वर्मा | १५७ |
| ६१ | ‘अंतिम अरण्य’ – निर्मल वर्मा | २२६ |
| ६२ | ‘अंतिम अरण्य’ – निर्मल वर्मा | २३६ |
| ६३ | ‘अंतिम अरण्य’ – निर्मल वर्मा | ३८ |
| ६४ | ‘अंतिम अरण्य’ – निर्मल वर्मा | ६६ |
| ६५ | ‘अंतिम अरण्य’ – निर्मल वर्मा | ४० |
| ६६ | ‘अंतिम अरण्य’ – निर्मल वर्मा | २२६ |
| ६७ | हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रयोग – डॉ. त्रिभुवनसिंह | २५८ |
| ६८ | स्मृति में बंद रचना – मलयज – पूर्वग्रह | २६ |
| ६६ | धर्मयुग – कृष्णा सोबती | |


***

# पंचम अध्याय
# ''निर्मल वर्मा के उपन्यासों में संवेदना''

(१) संवेदना : अवधारणा

*१.१ संवेदना का अर्थ*

*१.२ संवेदना का कोशगत अर्थ*

*१.३ संवेदना विभिन्न विद्वानों के मत*

(२) नवीन संदर्भों में वस्तु निरूपण

(३) यथार्थ के प्रति नूतन दृष्टिकोण

(४) टूटते संबंधों का आलेखन

(५) व्यक्तिगत स्वतंत्रता को समर्थन

(६) मृत्युबोध

(७) महानगरीय समस्या

(८) जिजीविषा

(९) मोहभंग

(१०) प्रेम के प्रति नवीन दृष्टिकोण

(११) पीढ़ियों का संघर्ष

(१२) बदलते मूल्य–बोध

(१३) संस्कृतियों का द्वंद्व

❀ संवेदना के विविध धरातल

# पंचम अध्याय
# ''निर्मल वर्मा के उपन्यासों में संवेदना''

## (१) संवेदना : अवधारणा :

प्रत्येक साहित्यकार अपनी युगीन चेतना से संवेदित होकर ही साहित्य रचना की ओर प्रवृत होता है । युगीन बोध जब लेखक एवं कवि चेतना से संयुक्त होकर अपने संप्रेषित स्वरूप में लोक-चेतना से जुड़ जाता है तभी श्रेष्ठ साहित्य का निर्माण होता है । जिसकी सर्जनता एवं सार्थकता का मूलभूत तत्त्व मानव संवेदना ही होता है ।

''प्रेम के बाद संवेदना ही मानव के अंतरतम की सर्वाधिक पवित्र भावना है, सहानुभूति के दो शब्द किसी के दुःख-कष्ट का निवारण भले ही न कर सकें, उसके दिल को तसल्ली तो दे ही सकते हैं । दुःखी मनुष्य जब किसी पर दुःखकारकता को देखता है तो उसका हृदय अधिक भाव-विह्वल, नयन अधिक अश्रुमंड़ित तथा मुखाकृति और अधिक करुणा विह्वलित हो उठती है । निश्चय ही संवेदना हमें आत्मीयता के प्रगाढ़ बंधन में बाँधती है । यह हमें कोमल अनुभूतियों के उस भाव-लोक में ले जाती है जहाँ कृतज्ञता की मौन स्वीकृति है, रागात्मक उष्मा का भाषा-रहित संप्रेषण है और निनादित होते हुए प्राणों का दिव्य संगीत है । यदि संवेदना न हो तो मनुष्य पाषाण हो जाए । दूसरों के सुख-दुःख को कोमलता से महसूस करनेवाला हृदय ही न रहा तो मनुष्य के पास मनुष्य कहलाने के लिए बचेगा क्या ? ।''[१]

साहित्य की सबसे बड़ी उपयोगिता या सार्थकता इस बात में मानी गयी है कि यह हमारे संवेदन का विस्तार करता है । संवेदन तो जीव-मात्र की मजबूरी है । एक क्षण भी हमारे अस्तित्व का ऐसा नहीं जब हमारी इन्द्रियाँ मन और बुद्धि किसी न किसी संवेदन की गिरफ्त में नहीं आती ।

हजारी प्रसाद द्विवेदी ने संवेदन को संप्रेषणीयता के अंतर्गत जोड़ते हुए लिखा है - ''यह ठीक है कि भाषा का मुख्य काम विचारों का संप्रेषण ही

है । परंतु भाषा द्वारा दो प्रकार का संप्रेक्षण होता है, एक तो सूचनात्मक संप्रेषण है जिसमें हम श्रोता के चित्त में किसी बात की सूचना का संचार करते हैं और दूसरा रचनात्मक संप्रेषण है जो श्रोता के चित्त में गाढ़ अनुभूति द्वारा जगाई गयी संवेदनाओं को मूर्त और अनुभव योग्य बनाता है । वस्तुतः इस दूसरी श्रेणी के संप्रेषण को ही सही अर्थ में संप्रेषण कहा जाता है ।"[२]

सच तो यह है कि साहित्य का मूल संबंध मानव की संवेदना से है । संवेदनाहीन साहित्य का कोई मूल्य नहीं चाहे उसमें बुद्धिवाद का कितना ही ऊहापोह क्यों न हो ? बुद्धि, दर्शन, चिंतन, ज्ञान–विज्ञान सबको पहले जीवन में आत्मसात होना पड़ता है । आत्मसात होकर मानव–संवेदना का अंग बनना पड़ता है, तभी साहित्य में सत्यम्, शिवम् और सुंदरम् की भावना प्रस्फुट हो सकती है ।

संवेदनायुक्त मानव–जीवन की सभी स्थितियाँ, घटना, संबंध, संघर्ष एवं अनुभव ही मूल्यों को जन्म देते हैं । मूल्य शब्द का प्रयोग जब मानव जीवन में होने लगता है तब उसका संबंध मानवीय संवेदनाओं से हो जाता है ।

## *१.१ संवेदना का अर्थ :*

विभिन्न विद्वानों ने संवेदना का अर्थ स्पष्ट करने की कोशिश की है ।

" 'संवेदना' शब्द में 'सम्' उपसर्ग है । सम् उपसर्ग जुड़ने पर संवेद, संवेदन और संवेदना शब्द बनते हैं । जिनका सामान्य अर्थ क्रमशः है अनुभव या वेदना, अनुभव या प्रतीति करना और सहानुभूति ।"[३]

"साधारणः संवेदन या संवेदना शब्द का अर्थ होता है अनुभव करना, सुख–दुःख आदि की प्रतीति करना, बोध ज्ञान अथवा अनुभूति । अनुभूत, ज्ञात या विदित होना अर्थात् शरीर में किसी प्रकार का वेदन होना । संवेदन शब्द के मूल में 'वेद' शब्द है । वेद से वेदन और वेदन से संवेदन शब्द बना । हिन्दी में यह शब्द प्रायः सहृदयता, सहानुभूति (सह+अनुभूति) के यथार्थ के रूप में ही प्रचल्ति है ।"[४]

“संवेदना शब्द साहित्य और मनोविज्ञान दोनों विषयों में गृहीत है और भिन्न अर्थों का द्योतक है । मनोविज्ञान में संवेदना का अंग्रेजी पर्यायवाची शब्द ‘Sensation’ है और वहाँ इसका अर्थ ज्ञानेद्रियों का अनुभव है ।”[५]

“अंग्रेजी में संवेदन के करीब पड़नेवाला शब्द है – संसेशन (Sensation), फीलिंग (Feeling), सेन्सीटीव (Sensitive) । अंग्रेजी पर्याय के अनुसार संवेदना शब्द के अंतर्गत इन्द्रियानुभव, भावानुभव, सहानुभूति, अनुभव प्राप्ति की प्रक्रिया आदि का समाहार हो जाता है ।”[६]

“साहित्य में इस शब्द का प्रयोग इस सीमित अर्थ में नहीं किया गया है । विशेषतः जब हम मानवीय संवेदना की बात कहते हैं तो उसका आशय मात्र ज्ञानेद्रियों का अनुभव न रहकर मानव–मन की अतल गहराईयों में छिपी करुणा, दया एवं सहानुभूति की उदात्त वृत्तियों तक हो जाता है । अपने व्यापक अर्थ में संवेदना ‘अनुभूति’ का भी व्यंजक है ।”[७]

समग्रतः संवेदना का अर्थ हुआ “वस्तुबोध की प्रक्रिया में मस्तिष्क की विशिष्ट उत्तेजना की भाव विह्वल हृदय से निःसृत विशिष्ट अर्थ–दृष्टि । किसी के प्रति उपजी करुणा या दुःख को देखकर स्वयं भी वैसा ही अनुभव करना संवेदना है । आधुनिक साहित्य संज्ञा कोश (गुजराती) में उसे अंतःक्षेप (Empathy) ‘सम–संवेदन’ कहा गया है ।”[८] भाषा, भाव और प्रेरणा तीनों ही प्रत्येक काल में संवेदना को नई अर्थवत्ता प्रदान करते हैं । इसी तरह संवेदना का मूल अर्थ हुआ अनुभूति करना, सहृदयता, सहानुभूति, करुणा, सम–संवेदन रूप से अभिव्यक्त करना, इन्द्रियानुभव आदि संवेदना के अर्थ की पुष्टि करते हैं ।

## *१.२ संवेदना का कोशगत अर्थ :*

### *१.२.१ नालंदा विशाल शब्द सागर के अनुसार :*

(i) “मन में होनेवाले बोध या अनुभव अनुभूत और

(ii) किसी को कष्ट में देखकर मन में होनेवाला दुःख, सहानुभूति ।”[९]

*१.२.२ हिन्दी–संस्कृत कोश के अनुसार :*

"संवेदनम्, अनुभवः सुख–दुःखादि प्रतीति ।"[१०]

*१.२.३ गुजराती ग्रंथ भगवद्गोमंडल के अनुसार :*

"संवेदन जानना अनुभवजन्य ज्ञान, इंदियों के माध्यम से ज्ञान–जानकारी इस संवेदना–लगाव आंतर चेतना उर्मि ।"[११]

*१.२.४ हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार :*

"साधारणतः संवेदना शब्द का प्रयोग सहानुभूति के अर्थ में होने लगा है । मूलतः वेदना या संवेदना का अर्थ ज्ञान या ज्ञानेन्द्रियों का अनुभव है । मनोविज्ञान में इसका यही अर्थ ग्रहण किया जाता है । उसके अनुसार संवेदना उत्तेजना के संबंध में देह–रचना की सर्वप्रथम सचेतन प्रक्रिया है, जिसमें हमें वातावरण की ज्ञानोपलब्धि होती है ।"[१२]

*१.२.५ संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर के अनुसार :*

"संवेदना अर्थात् सम–वेदना का द्योतक है ।"[१३]

*१.२.६ दिनमान हिन्दी शब्द कोश के अनुसार :*

"संवेदना अर्थ, अनुभव, अनुभूति है ।"[१४]

*१.२.७ मानविकी पारिभाषिक कोष के अनुसार :*

"आजतक सामान्यतः इस शब्द का प्रयोग सहानुभूति के अर्थ में होने लगा है । साहित्य में इसका प्रयोग स्नायायिक संवेदनाओं की अपेक्षा मनोगत संवेदनाओं के लिए ही अधिक होता है... संवेदनशील व्यक्ति दूसरे किसी व्यक्ति के सुख–दुःख को समझकर उससे अपना तादात्म्य स्थापित कर लेता है ।"[१५]

अतः विभिन्न कोशगत अर्थ भी अनुभव, वेदना, सम्–वेदना, अनुभूति सुख–दुःख का तादात्म्य स्थापित करने की पुष्टि करते हैं ।

## *१.३ संवेदना विभिन्न विद्वानों के मत :*

संवेदना शब्द को व्याख्यायित करने का प्रयत्न अनेक विद्वानों ने किया है । जिनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं –

➢ *डॉ. देवीप्रसाद गुप्त ने संवेदना शब्द को इस प्रकार परिभाषित किया है–*

''साहित्यकार की चेतनानुभूति की उस मनोदशा या अवस्था को संवेदना कहते हैं, जो उसे सृजन की प्रेरणा, रचनाविधान की क्षमता एवं लोकजीवन के प्रति आस्था प्रदान करती है ।''[१६]

➢ *रामदरश मिश्र ने संवेदना को इस प्रकार विश्लेषित किया है –*

''मानवीय संवेदनाएँ सामान्यतः एक सी होती हुई भी वैशिष्ट्य धारणा करती रहती है । संवेदना के इस वेशिष्ट्य का अपने आपमें व्याख्येय नहीं हो सकता । वह अनुभव कराया जा सकता है और विशिष्ट परिवेशों के माध्यम से ।''[१७]

➢ *डॉ. अज्ञेय ने संवेदना शब्द को इस प्रकार व्याख्यायित किया है –*

''संवेदना रचनाकर्म को जीवित रखनेवाली ऊर्जा है हाँ अनुभव संवेदना की तेजस्विता को बनाये रखनेवाला एक विशिष्ट ईंधन है । अनुभव को इंधन के रूप में इस्तेमाल करनेवाला माध्यम भी संवेदना है ।''[१८]

➢ *मुक्तिबोध ने संवेदना शब्द को इस प्रकार से समझाया है –*

''संवेदना एक आंतरिक तत्त्व है जिसमें भाव, संवेग, मनोवृत्तियाँ, प्रच्छन्न, विचारों और अवधारणाओं का संयमित आवेग रहता है ।''[१९]

संवेदना के उपर्युक्त विवेचन से अर्थगत गहराई का ज्ञान होता है लेकिन ऐसा एक भी मत नहीं है जिसे एक मात्र निर्णय बिन्दु मानकर चलना संभव हो । आज के उपन्यास साहित्य में तो जटिल परिवेश तथा परिवर्तनशील संदर्भो के मध्य लेखक विभिन्न कोणों से मानवीय स्वरूप के उद्घाटन में रत है, यही आयाम ही संवेदना के वास्तविक स्वरूप समझे जा सकते हैं । सामान्यतः संवेदना से अभिप्राय वह अनुभूति प्रवणता है जो अति सूक्ष्म भावों को ग्रहण करने की क्षमता रखती हों । इसीसे अनुभूति की व्यापक पकड़ को युगचेतना युगबोध नामों से अभिहित किया जाता है और उपन्यास में तो युग चेतना का स्वर ही किसी न किसी रूप में उभरकर सामने आता है । युग चेतना में ही

युग का यथार्थ छिपा रहता है । युग के यथार्थ को ही उपन्यासकार अपनी संवेदना में ढालकर नव्यतम रूप से प्रस्तुत करता है ।

समग्र रूप से औपन्यासिक संवेदना के संबंध में कहा जा सकता है कि इसमें मानव–मात्र की आशाओं, अपेक्षाओं, सुख–दुःख, राग–द्वेष, हर्ष–शोक, प्रेम–घृणा, विस्मय, उत्साह इत्यादि के साथ–साथ सामाजिक विषमता, रूढ़ियों –परंपराओं में जकड़ा निरीह मनुष्य और उसकी टूटती–बिखरती आशा, मध्यमवर्गीय तनाव, घुटन तथा अजनबीपन आदि की सोद्देश्य अनुभूति करा देना ही व्यापक संदर्भ में आज की औपन्यासिक संवेदना है ।

कोई भी रचनाकार अपनी रचनाओं में कथा के अनगिन मोड़ों से गुजरता हुआ, पात्रों का एक अनंत संचार निर्मित करता चलता है । इस प्रक्रिया में वह चाहे–अनचाहे बहुत से पात्रों और घटनाओं का सृजन करता है । पर इन घटनाओं और पात्रों में से कुछ पात्र और चरित्र ऐसे होते हैं, जिनके प्रति रचनाकर की पक्षधरता बहुत प्रबल हो जाती है । इस पक्षधरता के बहाने ही वह अपनी कृति में अपनी इच्छित भावनाओं की अभिव्यक्ति करता है, और ये इच्छित भावनाएँ ही अतंतः उसकी संवेदना का रूप ले लेती हैं । इस प्रक्रिया में रचनाकार अपनी ऐतिहासिक परंपरा से होता हुआ अतीत संस्कृति के आलोक में वर्तमान का रूप गढ़ने का प्रयत्न करता है और उस वर्तमान को अपनी उन संवेदनाओं से भर देता है, जो रचनाकार का अंततः रचित अभिप्राय होती हैं । यह अभिप्राय और संवेदना यदि अपने समय के साथ न्यायोचित संवेदना है तो वह आने–वाले समय का एक लम्बा पथ आलोकित करेगी । रचनाकार का यह पथ अतीत के गहरे अंधेरों परंपराओं से होकर अपने समय को अतीत की विरासत देता हुआ भविष्य के लिए एक निधि होता है । यह तभी संभव है जब रचनाकार की संवेदना अपने काल के धरातल पर निष्पक्ष एवं प्रासंगिक होती है ।

निर्मल वर्मा के उपन्यासों की संवेदना के बारे में विचार करते हुए हमें इस बात का पर्याप्त आधार मिलता है कि उन्होंने अपने समय की पड़ताल न केवल भारतीयता के परिप्रेक्ष्य में की है; बल्कि उसे महायुद्धों और पश्चिम के

अनेक परिवर्तनों की पृष्ठभूमि में रखकर देखा है । निर्मल ने अपने साक्षात्कारों से लेकर अनेक निबंधों तक में मिलान कुंडेरा, अल्बेयर कामू, रिल्के और नीत्से जैसे विचारकों और रचनाकारों को बार–बार उद्धत कर उनकी वैचारिकता को अपने वर्तमान के संदर्भ में रचनात्मक रूप देने का प्रयत्न किया है । स्पष्टतः निर्मल वर्मा ने अपने ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को अपनी रचनाओं के संदर्भ में बहुत महत्त्वपूर्ण ढ़ंग से रेखांकित किया है । प्रख्यात आलोचक कवि अशोक वाजपेयी उनके रचनात्मक चिंतन को उनके समय की व्याकुलता के संदर्भ में परखते हुए, उनके उपन्यासों की संवेदना को अपने वर्तमान में कहीं केन्द्रित करना चाहते हैं । श्री वाजपेयी कहते हैं – ''निर्मलवर्मा की भारत व्याकुलता क्या है ? सबसे पहले तो यह कि स्वयं उन्हें अपनी स्थिति की विडंबना का तीखा और सहज एहसास है । दूसरे शब्दों में वे अपने ऐतिहासिक अनुभव के स्पष्ट स्वीकार और आलकन से ही भारतीयता के प्रश्न को अपने लिए पुनर्परिभाषित करते हैं ।''[२०]

निर्मल की संवेदनाओं को ऐतिहासिकता के धरातल पर स्थापित करते हुए डॉ. सुधीश पचौरी भारतीयता का आधार मानते हैं । पचौरीजी कहते हैं – ''निर्मल वर्मा ने अपनी रचनाओं में रामकृष्ण, विवेकानंद, गांधी, अरविंद, जयप्रकाश, आनंदकुमार स्वामी, हेडेगर, नीत्से, काफ्का, रिल्के और पता नहीं कितने विभर्शकारों और प्रसंगो से अपनी भारतीयता का ताना–बाना बुनते हैं । उनकी भारतीयता पश्चिम से लगातार अतिप्रचारित भारतीयता है, जो सहनशीलता है ।''[२१]

निर्मल की रचनाओं को एक ओर जहाँ से प्रख्यात आलोचक इतिहास के गहरे संदर्भो में रखकर देखते हैं, वहीं कुछ आलोचक उनकी संवेदनाओं को रचनात्मक उष्मा के धरातल पर परखते हैं । डॉ. नरेन्द्र इष्टवाल इन संबंधों को समय की परिणति मानकर निर्मल वर्मा की रचनात्मक संवेदना को युग–बोध देते है । डॉ. इष्टवालजी का कहना है – ''इस गहराई में उतरकर भी निर्मल को संबंधों की नर्म उष्मा नहीं मिलती, बल्कि पारिवारिक टुटन, पति–पत्नी का

अलगाव, पिता–पुत्र के बीच उदासीनता और प्रेमी–प्रेमिका के संबंधों में तनाव ही उनके हाथ आता है ।"[२२]

इसी तरह डॉ. रेखा शर्मा निर्मल की अनुभूतियों को एक खास वर्ग की अनुभूति मानती है । रेखाजी ने यह स्पष्ट करने की कोशिश की है कि निर्मल के पात्रों का संसार और संवेदनाएँ महानगरों में बसे हुए एक खास वर्ग की संवेदनाएँ हैं । रेखाजी कहती हैं, "एक निश्चित साँचे में ढले हुए, निश्चित गुण–अवगुण लिए हुए इस वर्ग के सारे पात्र कोन्वेन्ट नुमा होते हैं । निर्मल उन पात्रों से या उनके यथार्थो से खुद जूझते हैं । वे उन पात्रों के सृष्टा हैं और उन स्थितियों के दृष्टा मात्र न होकर उसके भोक्ता हैं । ये उन सारी स्थितियों में से खुद गुजरते हैं और इसलिए हमें उनके कथा–साहित्य में घटनाएँ नहीं बल्कि विविध मनःस्थितियाँ मिलती हैं ।"[२३]

इसी तरह डॉ. ज्योति शर्मा स्वातंत्र्योतर भारत के आधुनिक बोध से उपजी संवेदनाओं को निर्मल वर्मा के उपन्यासों की मूल संवेदना रेखांकित करती हैं । उनका कहना है – "टूटते हुए परिवार, घर से अलगाव, घर से छूटकारा पाने का प्रयत्न, स्त्री–पुरुष के अजीब से संबंध और असुरक्षा का भाव, अपनी अस्मिता की खोज, कुण्ठित व्यक्तित्व आदि निर्मल के उपन्यासों में सूक्ष्म अभिव्यक्ति के रूप में चित्रित हुई है ।"[२४] स्वयं अपनी संवेदनाओं के बारे में निर्मल का कहना है – "कला का सामना करते हुए हम एक ऐसी दुनिया का सामना करते हैं, जो हमारी रोजमर्रा की दुनिया से मिलती–जुलती हुई हू–ब–हू बिल्कुल वैसी नहीं होती । यह सपने की तरह होती है और सपने की दुनिया के बावजूद कि उसमें हमारी चेतन जिन्दगी के अंश होते हैं, जीती–जागती दुनिया से अलग होती है ।"[२५] "अपनी लिखी हुई चीजों के बारे में ही लिखना एक हताश और दूभर किस्म का धंधा है, एक हद तक परजीवी काम, क्योंकि वह काम न होकर उन गड़े मुर्दो को उखाड़ना है, जिनका रस और जीवन हम आखिरी बूंद तक हम अपनी रचनाओं में पहले से ही निचोड़ चुके होते हैं ।"[२६] "किसी कला–विधा की पवित्रता वास्तव में वह फार्म या रूप है, जिसमें लेखक का समूचा दर्शन, स्वप्नजगत और कथ्य समाहित हो

जाता है ।..... जिस फार्म में रचना ने रूप और सत्य ग्रहण किया है वह अपनी विशिष्टता में अद्वितीय है ।"[२७]

स्पष्ट है कि निर्मल की ये आत्म–स्वीकृतियाँ संवेदनात्मक ढ़ंग से इसकी ओर ले जाती है कि वे अपने संवेदनाओं का संसार अपने आस–पास अवलोकित दुनिया से खींचकर स्वप्न की तरह रचते हैं और एक बार उस स्वप्नलोक से गुजर जाने के बाद, उसकी रचना प्रक्रिया के बारे में बात करना जैसे अपनी ही रची हुई संवेदना के बारे में छेड़–छाड़ करने जैसा अपराध अनुभव करते हैं । यहाँ तक कि निर्मल इस विवशता तक पहुँच जाते हैं कि यह संवेदना केवल इसी फार्म में व्यक्त होनी थी । निर्मल की यह आत्म–स्वीकृतियाँ उनकी संवेदनाओं के उस रचनात्मक स्वरूप का परिचायक है जिन्हें उन्होंने जिन्दगी से एक–गहरे स्वप्न की तन्द्रा में जाकर रचा होगा । इन संवेदनाओं को यदि रूप–शिल्प के आधार पर देखे तो निर्मल का रचनात्मक संवेदन निम्नलिखित दृष्टियों से देखा–परखा जा सकता है ।

## (२) नवीन संदर्भों में वस्तु निरूपण :

स्वातंत्र्योत्तर कथा–रचना में वस्तु–निरूपण का ढ़ंग क्षण–प्रतिक्षण बदलता रहा है । प्रेमचंद पहले कथाकार थे, जिन्होंने भारतीय समाज की कहानी पात्रों और घटनाओं के आधार पर कहना आरंभ किया तो जैनेन्द्र ने घटनाओं से उत्पन्न प्रभावों को अपनी कथा का आधार बनाया । निर्मल वर्मा इस प्रभाव को उस स्वप्नलोक के धरातल पर ले जाकर घटना के पार एक ऐसे संसार का निर्माण करते हैं, जो अपनी बुनावट के पीछे इतना सघन हो जाता है कि घटना निर्मूल हो जाती है और अतंतः वह स्वप्नलोक ही हमारे सामने घटना बनकर उभरने लगता है । निर्मल वर्मा इस स्वप्नलोक की रचना में कथाकार से अधिक चिंतक के रूप से दिखायी देते हैं और अंततः यह चिंतन ही उनके लेखन की चरम उपलब्धि बन जाता है । उदाहरण के लिए उनके उपन्यासों के कुछ अंशों पर दृष्टि डालना आवश्यक होगा –

"एक उम्र में यह विचार ही बहुत रुआसा लगता है कि कोई खाली–खाली सा होकर तुम्हारी प्रतिक्षा कर रहा हो .... एक संग बहुत

सुख–सा भी होता है – बाद में । बाद में लगता है, तुम सबसे अलग हो । तुम एकदम बड़े हो गये हो... और यह असंभव सा लगता है कि जिस घड़ी तुम सो रहे हो उस घड़ी तुम्हारी कोई बाट जोह रहा हो ।... तुम्हें अचानक पहली बार अपनी अनिवार्यता का पता चलता है ।''[२८]

''एक अनाम हाहाकारी सी चीज ऊपर उठने लगी – वह उसे रोकना चाहता था । कोई और दिन होता तो वे घर जा सकते थे, एक–दूसरे को छूकर कुछ देर के लिए तसल्ली पा सकते थे, जो एक–दूसरे की देहों से उठकर बिसूरती हुई आत्मा को चुप करा देती थी ।.... लेकिन आज नहीं है ।''[२९]

''डर के भीतर से उगता फूल जिसे मैंने इतनी खाली–सूनी जिन्दगी के मरुस्थल में उगते हुए देखा था । क्या वह रात की उड़ती धुंध में उसे देख पा रही थी ? वह अपने ध्यान में निमग्न चली जा रही थी ।''[३०]

स्पष्ट है कि निर्मल वर्मा वस्तु–निरूपण में अपनी संवेदनाओं को दर्शन की हद तक पहुँचा देते हैं । यह भी दृष्टव्य है कि उनका यह स्वप्नलोक किसी घटना की उपज नहीं होता, बल्कि सहसा कोई पात्र एक संवाद करता है और सामनेवाला उत्तर न भी दे तो भी उसके भीतर यह स्वप्नलोक बड़ी तेजी से बनता चला जाता है ।

निर्मल वर्मा एक ओर जहाँ वस्तु निरूपण में स्वप्नलोक का सहारा लेते हैं, वहीं उनकी रचनाओं में पहाड़ी धुंध और शहर गिरिजाघर, ढ़लानों पर उतरना, जैसी स्थितियाँ बार–बार चित्रित हुई हैं । ''वे दिन'' उपन्यास हो या ''अंतिम अरण्य'' निर्मल बार–बार अपने आसपास के परिप्रेक्ष्य से क्या को पुष्ट करते चलते हैं । जैसे –

''हम मोनेस्टरी के पीछे मैदान पर चल रहे थे । शाम हो चली थी । दूर लेतना की पहाड़ी पर बर्फ का रंग–बैंगनी सा हो आया था ।''[३१]

''चुपचाप चलते रहे । बीहड़ में आकाश के तारे और भी अधिक उज्जवल दिखायी दे रहे थे । पैरों के नीचे सूखे पत्तों की चरमराहट के अलावा कुछ भी सुनायी नहीं देता है ।''[३२]

इस तरह वातावरण को बार–बार रेखांकित करते हुए निर्मल वर्मा इस हद तक वातावरण पर आधारित हो जाते हैं कि सहसा उनके कथा–कथन की शैली हमें एक जगह ठहरी और ऊबाऊ लगने लगती है । पर वास्तव में यह निर्मल वर्मा के वस्तु–निरूपण का सर्वथा निजीपक्ष है, जो दूसरे रचनाकारों में दिखायी नहीं देता ।

## (३) यथार्थ के प्रति नूतन दृष्टिकोण :

वस्तु निरूपण के नूतन आयामों के साथ निर्मल वर्मा भले ही स्वप्नलोक की रचना करते हों, उनका स्वप्नलोक गहरे यथार्थ पर आधारित है । ‘‘वे दिन’’ का इन्दी जिस तरह प्राग शहर में टूरिस्ट गाइड की नोकरी करता हुआ बदहाली में जी रहा है और एक ओर जहाँ आर्थिक आधार पाने की कोशिश करता है वहीं दूसरी ओर रायना के प्रेम में पड़कर जीवन की सार्थकता खोजने का प्रयत्न करता है, वह गहरे यथार्थ का परिचायक है । इसी यथार्थ से जुड़कर मारिया और फ्रांज न तो वीसा पाने में सफल हो पाते हैं और न उनका प्रेम अपने दाम्पत्य तक पहुँचता है । इसी यथार्थ के चलते टी.टी. वर्मा वापस नहीं लौटना चाहता और अपनी अकेली पड़ गयी माँ के पुनर्विवाह की खबर इन्दी के साथ सेलीब्रेट करता है । टी.टी. अपनी ही भाषा में जीनेवाला व्यक्ति है । वह होशो–हवास में चेक भाषा नहीं बोलता । लेकिन यथार्थ यह भी है कि वह प्राग छोड़कर अपने देश वापस नहीं लौटना चाहता । सबसे बड़ा यथार्थ यह कि एक दिन रायना इन्दी को छोड़कर चली जाती है । इन्दी पहले की तरह टूरिस्ट गाईड बनकर रह जाता है । यह वैसे ही है, जैसे पाश्चात्य देशों में अनेक विद्यार्थी अपने अध्ययन के दौरान विभिन्न रेस्ट्रां और होटलों में काम के लिए भटकते रहते हैं ।

यथार्थ का यही धरातल ‘‘एक चिथड़ा सुख’’ में रंगमंच के पात्रों के माध्यम से व्यक्त हुआ है, जहाँ मुन्नू को बिट्टी का व्यक्तित्व समझ में नहीं आता । लेकिन वह इसलिए चुप है, क्योंकि इलाहाबाद से चलते हुए पिता ने उसे चुप रहने की हिदायत दी थी । बिट्टी का यथार्थ यह है कि वह रंगमंच के प्रति समर्पित होते–होते डैरी को समर्पित हो गयी है । डैरी एक ऐसे

यथार्थ से जुड़े हैं, जिसमें ऊर्जा नहीं है । डेरी स्वयं में खोखले होते चले गये हैं । यथार्थ का यहीं रूप इरा और निली भाई के बीच उपस्थित होकर निली भाई को आत्महत्या करने पर विवश करता है और इरा दिशाहीन होकर लंदन लौट जाती है ।

निर्मल वर्मा अपनी रचनाओं में जिस गहरे यथार्थ से गुजरते हैं, उसमें व्यक्ति निरंतर अपनी दुनिया में अकेला होता चला जाता है । यह व्यक्तित्व का अलगाव ''लाल टीन की छत'' में काया के माध्यम से है तो ''रात का रिपोर्टर'' का पत्रकार इसी अकेलेपन से जूझता है, जिसे न तो दयाल साहब खत्म कर पाते हैं और न राय साहब । यहाँ तक कि बिन्दु भी उसे परामर्श देती हुई किसी विकल्प की ओर नहीं ले जा पाती । यथार्थ का यही दृष्टिकोण ''अंतिम अरण्य'' में है । जहाँ मेहरा साहब क्रमशः चेतनाशून्य होते चले जाते है । यथार्थ के कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं –

''जब सर्दी असहनीय हो जाती तो अपना डफल–कोट पहनकर बाहर निकलता था । तीन साल पहले लंदन में बहुत कम दाम पर उसे खरीदा था ।''[३३]

''सहसा वह रुक गया । क्या इस आदमी पर भरोसा किया जा सकता है ? कोई सबूत नहीं कि वह पुलिस का आदमी न हो, जो सिर्फ मुझे टोहने (जानने) आया था ।''[३४]

''हम उनके बारे में क्या जानते थे । उन्होंने जैसे सब देशो में जंजाल से छुटकारा पाकर अपनी जमीन पा ली थी । वही जमीन, जिसके नीचे दीवा लेटी थी ?''[३५]

## (४) टूटते संबंधों का आलेखन :

निर्मल वर्मा का यथार्थ वास्तव में टूटते हुए संबंधों का यथार्थ है जहाँ हर पारिवारिकता व्यक्ति को अंततः उस टूटन की ओर ले जाती है, जिसमें व्यक्ति अपने को ऐसे चौराहे पर पाता है, जहां उसका कोई और मित्र नहीं रह जाता । वह अपनी स्थितियों का स्वयं भोक्ता बनकर संबंधों को मुट्ठी में रेत की तरह कैद करता हुआ रह जाता है । ''वे दिन'' से लेकर अपने

अंतिम उपन्यास ''अंतिम अरण्य'' तक की यात्रा में निर्मल वर्मा संबंधों के इसी विघटन को बार-बार चित्रित करते हुए दिखायी देते हैं । ''वे दिन'' में इन्दी, रायना और मीना से जुड़ता है, फ्रांज मारिया से जुड़ता है, लेकिन ये सारे पात्र अंततः टी.टी. और उस अंतिम मंजिल पर बसे पात्र की तरह अपनी स्थितियों में अकेले रह जाते हैं, जो युद्ध के कारण अपने घर नहीं लौट सकता । इसी तरह अपने तमाम उपन्यासों से होते हुए निर्मल वर्मा ''अंतिम अरण्य'' तक पहुँचते हैं, जहाँ संभावना में कथा नायक ''मैं'', निरंजन बाबू, डॉ. सिंह, अन्नाजी, तिया और मुरलीधर क्रमशः अपनी ही दुनिया में लौट जाते हैं । दीवा ने उन्हें सबसे पहले अकेला कर दिया, अंततः मेहरा साहब ने उनके रहे-सहे संबंध भी तोड़ डाले । यहाँ तक कि कथानायक मैं, जो चालीसी की उम्र के आस-पास मेहरा साहब के अनुभवों को ऐतिहासिक रूप से लिपिबद्ध कर रहा है, और युवा होने के बावजूद जिन्दगी के किसी मुकाम पर लौटना नहीं चाहता । वह कथानायक भी अंततः एक अंधी सुरंग में उतरता चला गया । इन स्थितियों से गुजरने के लिए निम्नलिखित संवादों पर दृष्टि डालना उचित होगा -

''मेरे भीतर एक अजीब-सा विषाद आ जमा था... लगता था जैसे बीच के वर्षों की एक अदृश्य छाया सी हम दोनों के बीच आकर बैठ गयी है... और हम उसका कुछ नहीं कर सकते ।''[३६]

''अन्नाजी अपनी बुढ़ी जर्द आँखों से अँधेरे में ताक रही थीं । आवाज अब भी वहीं थी, लेकिन अन्नाजी की नहीं वह अब उनसे अलग होकर एक प्रेत-प्रतिध्वनि बनकर जंगल के सन्नाटे पर मंडरा रही थी ।''[३७]

''एक हल्की सी खरखराहट उनकी छाती में उठती है, जैसे कहीं खोखल में फँसा पशु गुर्रा रहा हो ।''[३८]

वास्तव में निर्मल वर्मा ने संबंधों के अजनबी होते जाने का जो चित्रण ''वे दिन'' में शुरु किया था, अंतिम अरण्य तक पहुँचकर वह शीर्ष पर पहुँच गया है ।

## (५) व्यक्तिगत स्वतंत्रता को समर्थन :

निर्मल वर्मा अपनी कृतियों में प्रायः ऐसे चरित्रों का निर्माण करते हैं, जो सामाजिक रूप से स्वीकृति पाने के हकदार दिखायी नहीं देते । "वे दिन" की नायिका रायना जिस तरह सामाजिक संबंधों को नकारकर व्यक्ति की स्वतंत्रता के धरातल पर जी रहीं है, वह न तो भारतीयता के धरातल पर बल्कि विदेशी माहौल में भी स्वीकृत नही माना जाएगा । रायना अपना देश छोड़कर जिस तरह जगह-जगह भटक रही है वह जिस तरह खुले आम शराब और सिगरेट का उपयोग करती है, वह किसी भी सभ्य समाज में स्वीकृत नहीं माना जाएगा ।

इसी तरह "एक चिथड़ा सुख" में रंगमंच की दुनिया जीती हुई बिट्टी डैरी, नित्तीभाई और इरा के साथ जिस स्वतंत्र माहौल में रह रही हैं, और जिसके प्रति मुन्नू को हिदायत देते हुए पिता ने कहा था कि वह वहाँ कुछ देखे-सुने नहीं । वह दुनिया भारतीय समाज में कहीं भी स्वीकार दुनिया नहीं मानी जाएगी । यहाँ तक कि काया जिस तरह खुले-आम देह-संबंधों के परिवर्तित रूप-स्वरूप को जुगुप्सा बनाकर घूम रही है । वह भी किसी भारतीय को तिलभर भी स्वीकार नहीं होगा । शायद यहीं कारण है कि 'रात का रिपोर्टर' की उमा निरंतर विक्षिप्त होती चली जाती है और कथानायक मैं उससे छुटकारा पाना चाहता है ।

निर्मल वर्मा के उपन्यासों में यह स्थितियाँ निर्मल के निरंतर स्वतंत्र होते जाने का समर्थन करती है । यहाँ तक कि अंतिम अरण्य के मेहरा साहब और उनकी बेटी तिया भी दो अलग-अलग धरातलों पर जी रहे हैं । तिया के ये कथन इस व्यक्तिगत स्वतंत्रता के चरम उदाहरण हैं -

"वह दूसरा डर है... उससे मैं डरती हूँ ।... तभी तो मैं यहाँ ज्यादा दिन नहीं रह सकती ।"[३९]

"आप ठीक कहते हैं । अब दीवा नहीं रहीं । तो आप कहीं भी जा सकते हैं ।"[४०]

"सच बताइए क्या आपको सब सचमुच यहाँ रहना अखरने लगा है ?"[४१]

स्पष्ट है कि तिया का डर उन्हें अपने पिता से एक ओर जहाँ दूर ले जा रहा है, वही दूसरी ओर कथानायक को इस बात के लिए संकेत भी कर रहा है कि दीवा के न रहने पर जैसे उसकी भूमिका खत्म हो गयी है । तिया यह भी संकेत कर देती है कि उसे अब यहाँ रहना अखरने लगना चाहिए । भला ऐसा क्यों नहीं होता ? वास्तव में तिया को इस बात का गुमान है कि जैसे उसके पिता ने अपनी जिन्दगी को अपने ही धरातल पर जिया, उनकी बेटी को भी वह स्वतंत्र धरातल मिलना चाहिए ।

वास्तव में निर्मल वर्मा इन स्थितियों के माध्यम से व्यक्ति की एक एसी स्वतंत्रता की परिकल्पना कर रहे हैं, जो उसे संबंधों में बाँधकर सीमित न कर पाये । व्यक्ति अपनी नियति स्वयं जीता हुआ अपने जीने का तर्क और क्षण निर्मित कर सके ।

## (६) मृत्यु बोध :

निर्मल वर्मा के अधिकांश पात्र जिंदगी में उपस्थित होते हुए भी जैसे मृत्यु को जी रहे हों, जैसे मृत्यु ही जीवन का असली आधार हो और जिन्दगी हमें उस विकल्प की ओर ले जाती हो । ये पात्र अपने जीवन में होते हुए भी मृत्यु की मानसिकता जी रहे है । चाहे "वे दिन" की रायना रहमान हो या "एक चिथड़ा सुख" के नित्ती भाई हो, "रात का रिपोर्टर" की उमा हो या "अंतिम अरण्य" के डॉ. सिंह, निरंजन बाबू, मुरलीधर और कथानायक मैं । निर्मल वर्मा की मृत्यु बोध यात्रा "वे दिन" के रायना, फ्रांज और मेलन्कोविच से आरंभीत होकर अंततः दीवा और मेहरा साहब पर पहुँच गयी थी, जहाँ डॉ. सिंह, कथानायक मैं और मुरलीधर एक ओर निस्पंद होकर देख रहे हैं तो अन्नाजी अपने कदमों के पीछे कहीं दूर से मृत्यु की आवाज सुन रहा है, और डॉ. तिया हैं कि लगातार पिता की स्थिति को अस्वीकार करते हुए अपने अकेलेपन का मृत्यु बोध रच रहीं हैं ।

''वे दिन'' में मेलन्कोविच रात के सन्नाटे में होस्टल की आखिरी मंजिल से जब पियानो की दर्द भरी गूँज माहौल में बिखेरता है तो हर कोई इस करुणा पर नम हो जाता है, जो उसे अपने बीवी बच्चों से अलग रहकर जाने कितने समय तक और सहनी होगी । इसी तथ्य से जुड़ा हुआ टी.टी. हैं, जो न तो बर्मा लौटना चाहता है और न प्राग के माहौल को स्वीकार कर पाता है । उसे अपनी भाषा में उस खुशबू का सतत इन्तजार रहता है, जिसे वह अपने पीछे हजारों मील दूर छोड़ आया है ।

''तीसरी मंजिल से युगोस्वाल मेलन्कोविच के एकोर्डियन का स्वर हवा में सिहरता हुआ सुनायी दे जाता है । वह शाम को कहीं नहीं जाता था । वह शायद होस्टेल का सबसे पुराना निवासी था । उसकी पत्नी और बच्चे लेलीनग्रेड मे थे, लेकिन वह राजनैतिक कारणों से वहाँ वापस नहीं जा सकता था । हमेशा हमें आधी रात को उसके कमरे से एकोर्डियन का स्वर सुनायी देता था । उसे सुनकर ही लड़के एक–दूसरे के कानों में फुसफुसाने लगते थे । यह मेलन्कोविच है, जो अपने घर नहीं जा सकता ।''[४२]

''कमरे में टी.टी. मेरे बिस्तर पर लेट गया । वह कोई बर्मी अखबार पढ़ रहा था । बर्मी अखबारों के अलावा ''लाइफ'' और ''टाइम'' की पुरानी प्रतियाँ आती थी । जिस दिन यह पुलिन्दा आता था वह उसका सबसे सुखद दिन होता था ।''[४३]

स्पष्ट है कि वे दिन के ये पात्र अपनी जिन्दगी में निर्विकल्प जीते हुए क्रमशः मृत्यु का वरण करते जा रहे हैं । लेकिन अंतिम अरण्य के मेहरा साहब तो जैसे मृत्यु का वरण कर चुके हैं –

''लेकिन इससे ज्यादा भयानक बात क्या हो सकती है कि कोई आदमी अकेलेपन के अनजाने प्रदेश की ओर घिसटता जा रहा हो और उसके साथ कोई न हो । कोई आखिर तक साथ नहीं जाता, लेकिन कुछ दूर तक तो साथ जा सकता है । हर दिन गुजरने के साथ मुझे लगता है कि मैं उनके गुजरने के साथ मुझे लगता है कि मैं उनके साथ कुछ और आगे निकल आया

हूँ । मुझे डर है, एक दिन वे इतने आगे निकल जायेंगे कि मुझे पता भी नहीं चलेगा, कि वे किसी पहाड़ी के पीछे लोप हो गये ।"[४४]

वास्तव में निर्मल वर्मा मनुष्य से मृत्यु का भय निर्मूल करते हुए उस दुनिया में ले जाना चाहते हैं जहाँ अकेलापन ही मृत्युबोध की हद तक उसकी नियति है । यही उसके जीवन का भविष्य है, जिसे वह अलग–अलग मोडों पर पार करता हुआ क्रमशः आगे बढ़ रहा है । ऐसे में मृत्यु का भय मनुष्य का आदिम भय नहीं होना चाहिए । वह हमारे समय की एक भयानक त्रासदी से उत्पन्न एक कड़वी सच्चाई है, जिसे हर व्यक्ति को स्वीकार करना होगा । वह व्यक्ति इस देशकाल में चाहे भारत का हो या यूरोप का ।

## (७) महानगरीय समस्या :

निर्मल वर्मा एक ऐसे लेखक हैं, जिन्होंने अपने समय और समाज को देशकाल और परिस्थितियों के बदलते हुए मूल्यों के आधार पर गहराई तक जाकर अपने पात्रों के संसार की रचना की है । इस यात्रा में उन्होंने व्यक्ति के आर्थिक संघर्ष से अधिक उसके मानसिक संघर्ष को महत्त्व दिया है । वह संघर्ष प्रायः उस अभिजात्य वर्ग में बहुत स्वाभाविक है जो अर्थ के धरातल पर इतना स्वाभाविक है जो अर्थ के धरातल पर इतना समृद्ध है, जो महानगरीय वातावरण में अर्थ की चिन्ता से अलग, अपने मन के धरातल पर गहरे तक उतर सकता है । यह महनागर बोध उस मध्यमवर्ग का भी है, जो अपनी मानसिकता में लगातार उपर उठने की कोशिश करता हुआ, एक ओर अपनी पारंपरिकता से टूटकर बेडौल हो रहा है तो दूसरी ओर महानगर की आधुनिकता उस ऐसे मृत्यु बोध की ओर ले जाती है, जिसका भविष्य व्यक्ति के लिए करुणा का सृजन करता है ।

पर इन पात्रों का संसार महानगर के वातावरण में यह सब इसलिए भोगने को विवश है । यह वातावरण अंतर्राष्ट्रीय धरातल पर सर्जित होता चला गया है । महायुद्धों के बाद अंतर्राष्ट्रीय बाजार ने जो मोड़ लिया है, उससे महानगर अपनी यांत्रिकता में शिखर तक ऊँचे होते चले गये हैं । इन महानगरों में रहनेवाले इन्दी, बिट्टी, काया, दयाल साहब, और निरंजन बाबू जैसे

लोग अपनी व्यक्तिगत सत्ता खो बैठे हैं । ये समस्याएँ गाँव-कस्बे के लोगों की समस्याएँ नहीं हैं, जहाँ दूर तक पसरा हुआ सूनापन व्यक्ति को इतने संवादो में घेर लेता है कि वह अपने मन के धरातल पर गहरे तक उतरने के बदले रोटी-रोजी और बंधुत्व की जिन्दगी जीता हुआ सदैव रागमय बना रहता है ।

निर्मल वर्मा के उपन्यासों के ये पात्र जहाँ एक ओर महानगरों की परिणति जीते हैं, वहीं दूसरी ओर अपने अकेलेपन के लिए किसी ऐसे पहाड़ी कस्बे और शहरों की छोह लेते हैं, जो बर्फ की ढ़लानों, गिरिजे के घंटे और देवदार के पेड़ों से स्वप्नवत दिखायी देता है । ''वे दिन'' की रायना और इन्दी इन्हीं पहाड़ों ढ़लानों पर चढ़ते-उतरते एक-दूसरे के प्रेम में आबद्ध हो जाते हैं । ''एक चिथड़ा सुख'' की बिट्टी इसी मानसिकता के कारण इलाहाबाद के उस गंगा-तट तक लौट जाती है, जो दिल्ली जैसे महानगर के थियेटर प्रेम और रात्रिकालीन शराब की पार्टीयों से कहीं मेल नहीं खाता । महानगर से छूटने की इसी कोशिश में काया चाचा के घर चली जाती है और इसी कोशिश में ''रात का रिपोर्टर'' का पत्रकार बस्तर के जंगलों में भटकने चल देता है । यही नहीं ''अंतिम अरण्य'' में निरंजन बाबू को छोड़कर शायद ही कोई पात्र हो, जो उस पहाड़ी कस्बे की ढ़लानों बर्फ और बारिश से बाहर निकलना चाहता हों ।

लेकिन महानगरों से इन कस्बों में भागकर आने-वाले अपने साथ महानगरीय संबंधों के तनाव लेकर आते हैं, और उसे जीवन-भर अपने व्यक्तित्व के धरातल पर जीते रहते हैं । उनसे दिल्ली और प्राग का परिवेश न तो अलग हो पाता है और न वे देवदास की दुनिया में गँवार पहाड़ियों जैसे निश्चछल और निरम्र हो पाते हैं ।

वास्तव में निर्मल वर्मा का संसार महानगरीय बोझ का संसार है, जो सुदूर जंगलों और पहाड़ों तक व्यक्ति का पीछा करता हुआ उसे अस्ताचल के उस कोने तक भी दंश देता रहता है । एक स्थूल पहाड़ी सौंदर्य उन्हें अपने

में समेट नहीं पाता । जिसके प्रति निर्मल वर्मा बहुत गहरे तक आकर्षित दिखायी देता हैं ।

## (८) जिजीविषा :

यह सच है कि महानगरपन और मृत्यु बोध को जीते हुए निर्मल वर्मा के पात्र अंततः मृत्यु का वरण उस जिजीविषा के लिए करते हैं, जो उन्हें जीवन के प्रति निर्मम और निष्कंटक बनाती है । प्राग में उस होस्टल की छत से आता हुआ संगीत हजारों मील दूर अपनी अनुगूंज में न तो अनुपस्थित होता है, न टी.टी. के भीतर का ज्वार कभी कम हो पाता है और न ही इन्दी, रायना के जाने के बाद अपनी टूरिस्ट गाईड की भूमिका छोड़कर उसकी यादों के बियावान में खो जाता है । एकोडियन की आवाज में अब भी इस बात की उम्मीद है कि उसका नायक एक दिन अपने बीवी बच्चो के बीच जरुर लौटेगा । इन्दी इस बात से संपूर्ण रूप से परिचित है कि प्रेम आदमी को तोड़ता नहीं जोड़ता है । उसे रायना के बाद प्रेम और संबंधों की उस दुनिया तक विस्तृत होना चाहिए, जो कहीं आसपास उसका इन्तजार कर रही होगी ।

जिजीविषा का यही रूप ''रात का रिपोर्टर'' के सारे पात्र अपने–अपने धरातलों पर जीते हुए दिखायी देते हैं । कथानायक रिशी अपने को आपातकाल के भय से ग्रस्त पाता हुआ, लगातार इस उम्मीद में है कि वह अपनी कलम को कहीं पीछे बस्तर के जंगलों में लौटा ले जाए, जहाँ वह सत्ता से मजदूरों के हक की लड़ाई लड़ सके । यही जिजीविषा अपनी पीठ का घाव दिखाते हुए दयाल बाबू के भीतर है । वह रिशी को पल–पल उस खतरे से सतर्क रखना चाहते हैं, जिसने उन्हें अडतालीस घंटों तक कठोर यातना के बीच रखा । यही जिजीविषा माँ के भीतर है कि एक दिन उनकी बहू परिवार में लौट आयेगी और सब कुछ पहले की तरह ठीक हो जायेगा । राय साहब इसी जिजीविषा की तरह रिशी को आत्मकथा लिखने और उन लोगों को साक्षात्कार करने का परामर्श देते हैं, जो सत्ता की कोप–दृष्टि से अब भी बच

निकले हैं । यह जिजीविषा आपातकाल के उस दौर तक कलमजीवी की सबसे बड़ी जिजीविषा है ।

निर्मल के उपन्यासों में मनुष्य की यह शाश्वत जिजीविषा हर कहीं दिखायी देती है । यह जिजीविषा काया और लामा के भीतर होकर, उन्हें अपने परिवार के बीच संदेहास्पद बना देती है तो यही जिजीविषा बिट्टी को प्रेम-संबंध और थियेटर प्रेम के बीच झूलते रहने पर विवश करती है । यही जिजीविषा दिवा की मौत के बाद भी मेहरा साहब को उन ढ़लानों पर रोके रखती है, जो उनके लिए उम्र के उस दौर में निरंतर भयावह होती जा रही है । निर्मल के उपन्यासों में जिजीविषा के रंग निम्नलिखित संदर्भों में देखे जा सकते हैं -

"धूल और अंघड के बाद तारे निकल आये थे । और वे इतने चमकदार थे कि लगता था जैसे हवा में एक सुनहरा - सा चूरा-झर रहा है... कभी-कभी कोई पक्षी मकबरे से उड़कर छत पर फड़फड़ाने लगता, लोगों की आवाजें उसके पंखों-तले दब जाती । और जब वह दुबारा हवा में उड़ता तो बातों की कतरने फिर आपस में जुड़ जाती, जैसे कुछ हुआ ही न हों ।"[४५]

"एक क्षण अजीब-सा भ्रम हुआ कि वह दिल्ली की सड़कों पर नहीं कहीं भूले से बस्तर के जंगलों में चला आया है । ढ़ोलक और चांदनी और महुआ में महकती लपलपाती आग के चारों ओर घूमने लगते.... स्मृति का समूचा मांसल, कायालोक ।"[४६]

## (६) मोहभंग :

निर्मल वर्मा के ये पात्र जीवन-जगत के प्रति एक ओर जहाँ निरंतर संघर्षरत हैं, वहीं अपनी सामाजिकता के प्रति मोहभंग की स्थिति से गुजर रहे हैं । "वे दिन" में प्राग के माहौल में इण्डी और टी.टी. आर्थिक रूप से विपन्न होने के बावजूद अपने देश के प्रति स्वदेश प्रेम खो चुके हैं, वहाँ संबंधों के धरातल पर भी उनका मोहभंग हो चुका है । यह मोहभंग प्राग के उस माहौल में और भी सघन हो चुका है, जहाँ टूरिस्ट एजेन्सी में काम करवाने

वाले लोग एक ओर जो उनसे अपनी एजेन्सी के लिए काम लेते हैं, और दूसरी ओर उनके प्रति रंग–भेद की वितृष्णा से भरे हुए दिखायी देते हैं । इण्डी इस नफरत के बावजूद आर्थिक रूप से विवश होकर गाईड का काम स्वीकार करता है । लेकिन रायना रहमान के प्रति उसका मोहभंग इस हद तक जाग्रत होता है कि एक ओर जहाँ वह यंत्रवत् पुनः उस एजेन्सी में डेलीवेजेस का काम संभाल लेता है, वहीं वह नेशनल स्ट्रीट के पार इस बात की कल्पना करता है कि रायना की ट्रेन अगले आधे–घंटे के बाद छूट जायेगी –

"आधा घंटा.. वह कुछ नहीं होता वह बीत रहा है । नेशनल स्ट्रीट पार करके मैं एम्बेकर्मेन्ट पर चला आया । बल्तावा नीचे थी ।.... रेलिंग पर खड़ी बूढ़ी स्त्रियाँ कबूतरों को रोटी के टुकडे फेंक रहीं थी ।... स्टेकिंट रिंक जाते हुए वह इसी जगह खड़ी हुई थी ।... वह अब भी स्टेशन पर होगी । प्राग के स्टेशन पर ।"[४७]

"क्रिसमस ईव का दिन है । मैं शाम तक यहाँ बैठा रहूँगा । शाम को मारिया और टी.टी. वहाँ होंगे । हम देर रात तक पीते रहेंगे । पिछले साल की तरह । यह आखिरी बार है, जब हम सब एक साथ होंगे ।"[४८]

निर्मल वर्मा के ये पात्र विदेशों के अतिरिक्त स्वदेश में भी उतने ही मोहभंग की स्थिति में हैं, जहाँ उनके पास संबंधों का अटूट सिलसिला है और जीवन जीने का पर्याप्त आधार भी । फिर भी वे भूखे हैं । भूख ने उन्हें बदहाली की हद तक फटेहाल कर दिया है । यहाँ तक कि वे पहचाने भी नहीं जाते कि कौन हैं ? और कहाँ रहते हैं ।"[४९]

'एक चिथड़ा सुख' के डेरीभाई अपने रंग–रूप और आकार में जैसे दिखायी देते है वह मुन्नू के लिए बहुत रहस्यमय है कि आखिर इन साहब का रंग–रूप क्या है ? और जब वह बिट्टी से यह पूछता है तो बिट्टी सिर्फ हँस देती है । मुन्नू देखता है – "वह अचानक बड़े से दिखायी देने लगते थे, जब वह बोलते थे लेकिन चुप्पी के क्षणों में सहसा छोटे हो जाते थे – जैसे

यह कोई जादू का खेल हो । खेल नहीं, यह सच था । उनकी उम्र हमेशा घटती–बढ़ती रहती थी ।[५०]

वास्तव में ये पात्र अपनी उम्र के इन मोड़ो पर जिस मानसिकता में जी रहें हैं, वह मोहभंग के कारण उन्हें स्थूल रूप से पहचान हीन कर देती हैं । यहाँ तक कि उनमें अपनी पहचान के लिए कोई संघर्ष नहीं है । वे क्रमशः मोहभंग की मानसिकता में और गहरे तक उतरते चले जाते हैं ।

## (१०) प्रेम के प्रति नवीन दृष्टिकोण :

निर्मल वर्मा के उपन्यासों में प्रेम की स्थितियाँ दैहिक धरातल से अधिक मानसिक धरातल पर पल्लवित होती दिखायी देती हैं । यही कारण है कि उनका प्रेम, प्रेमी–प्रेमिका का प्रेम न होकर संबंधों के हर उस दायरे में हैं, जो मानव–मानव के बीच होता है । रायना इन्दी और फ्रांज मारिया का प्रेम ही अंततः कथाकार के प्रेम का विषय नहीं है । यह प्रेम टी.टी. से अपनी माँ का भी है जो पुनर्विवाह की सूचना देता है और टी.टी. उसके लिए सेलीब्रेट करता है । यह प्रेम ''अंतिम अरण्य'' में दीवा और कथानायक में का भी है, जिसे मेहरा साहब के चले जाने के बाद भी कथानायक अपने से अलग कर पाने की स्थिति में नहीं है । यह प्रेम काया का लामा से है, जिसे केवल इसलिए ब्याह दिया जाता और इस बात का शक था कि वह काया को बिगाड़कर रख देगी ।

निर्मल वर्मा प्रेम के इन नवीनतम संदर्भो के द्वारा यह चित्रित करना चाहते हैं कि प्रेम के केवल दैहिक धरातल नहीं होते, सबंधों के विविध रूप आदमी के अंतस में किसी गहरे तक इस तरह बैठ जाते हैं कि उनकी अनुगूंज से वह जीवन भर छूट नहीं पाता । दूसरे धरातल पर वह उनके प्रति इतना मोहगस्त होता है कि छूटना भी नहीं चाहता । भले ही वह दैहिक संबंधों की सीमा पारकर मृत्यु के उस पार चला गया हो । भले ही वह हजारो मील दूर किसी उस पराये मुल्क में खो गया हो, जहाँ व्यक्ति के लौटने का कहीं कोई आसार दिखायी नहीं देता ।

जहाँ तक दैहिक संबंधों की बात है, नथवाली पहाड़ी स्त्री हो, बिन्दु हो, मारिया हो, या रायना रहमान – इनके दैहिक संबंधों की अनुगूंज व्यक्ति के मन किसी सितार की तरह निरंतर बजती रहती हैं । यही कारण है कि नथवाली पहाड़ी स्त्री अपना गाँव छोड़कर उस घर में रह रही है, जों लोगों के लिए जादूगरनी है –

“और वह पहाड़ों को ताकती शाम की धूप में नथ को हिलाती एक कंटीली मुस्कान में हौठ खुले रहते । उस कोठरी में, सर्दी ठंड से अलग, अकेली अपने अकेलेपन से बिल्कुल बेखबर–पहाड़न, नथवाली औरत या सिर्फ एक स्वप्न, जो दिन–रात उस मकान, फाक्सलैंड के उपर मंडराता रहता ।”[५१]

नथवाली का चाचा के प्रति ये दैहिक प्रेम का स्वप्न बनकर जिस तरह मंडरा रहा है, वह निर्मल वर्मा द्वारा वर्णित प्रेम संबंधों का एक अदभुत उदाहरण है । यही प्रेम संबंध बिट्टी और डैरी के बीच इतना गहरे तक उतर जाता है कि बिट्टी को उनका प्रेम हवा का एक झोंका महसूस होता है और उससे रोशनी के अनंत दरवाजे खुलते हुए दिखायी देते हैं –

“अचानक हवा का एक झोंका आया और दरवाजा खुल गया । बाहर की रोशनी भीतर आ रही थी । भूरा सा आलोक, जो मार्च के दिनों में चमकीली चाँदी–सा झरता था । बिट्टी तार–पर कपड़े टाँग रही थी । वह साफ और खुली शाम थी । बिट्टी के बाल खुले थे । हवा में फड़फड़ाता हुआ कोई गीला कपड़ा उसके चेहरे पर लिपट जाता । उसकी देह को ढ़ँक लेता था । वह हल्के से सिर को झटका देती और चेहरा बाहर निकल आता ।”[५२]

## (११) पीढ़ियों का संघर्ष :

निर्मल वर्मा के उपन्यासों में पीढ़ियों का संघर्ष उतना नहीं है, जितना कि अपने देश–काल में नयी पीढ़ी का सार्वकालिक संघर्ष विद्यमान है । यह संघर्ष “वे दिन” के सभी पात्रों में गहरे तक दिखायी देता है । तो यही संघर्ष “एक चिथड़ा सुख” में डैरी, बिट्टी, नित्तीभाई और इरा के भीतर है । यदि उनमें पीढ़ियों का अलगाव करनेवाला कोई दृष्टिकोण हैं तो वह मुन्नू की उम्र के धरातल पर है, जो रंगकर्म की दुनिया में जीने वाले पात्रों की दिनचर्या को

हैरत से देख रहा है । इलाहाबाद में मुन्नू को हिदायत देनेवाले पिता और बिट्टी के बीच यह द्वंद्व हो सकता है, जिसे पिता यह कहकर खत्म कर देते हैं कि मुन्नू को बिट्टी के साथ रहते हुए भी उसकी गतिविधियाँ देखना–सुनना और हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए । पीढ़ियों का द्वंद्व ''रात का रिपोर्टर'' में भी अनुपस्थित है जहाँ अपने वर्तमान के प्रति जागरुक बुद्धिजीवियों से सत्ता का संघर्ष है ।

निर्मल वर्मा की रचनाओं में पीढ़ियों का संघर्ष अगर कहीं है तो वह ''अंतिम अरण्य'' के मेहरा साहब और तिया के बीच है, जहाँ दीवा के चले जाने के बाद मेहरा साहब की सारी उम्मीदे डॉ. तिया पर टिक जाती हैं । लेकिन तिया उन्हें छोड़कर उस पहाड़ी कस्बे की ओर भागती रहती है, जहाँ अपने मरीजों के बहाने जाकर वह स्वयं के मेहरा साहब के आयातित संसार से मुक्त हो लेती है । लेकिन मेहरा साहब तिया पर इतना आधारित हैं कि अपने अंतिम समय की निस्पंद स्थितियों के बीच भी वे बस की लम्बी यात्रा कर उस कस्बे में जाने के लिए अपने सामानों की पैकिंग कर लेते हैं, जहाँ दीया उन्हें अचानक पाकर हैरत में आ जाएगी । मगर वह उनकी आखिरी रात प्रमाणित होती है और उसके बाद वे तिया से हंमेशा के लिए मुक्त हो लेते हैं ।

पीढ़ियों का द्वंद्व निर्मल वर्मा के उपन्यास ''लाल टीन की छत'' में साफ दिखायी देता है, जहाँ एक ओर उम्र के कैशोर्य पर खड़ी काया और लामा है तो अधेड़ावस्था की कगार पर रहनेवाली मिस जोसुआ है, जो लड़ाई के बाद अपने पति के साथ इस पहाड़ी कस्बे में आयी थी, और पति के स्वदेश जाने के बाद वे यहीं रह गयीं । मिस जोसुआ उस परिवार की एक ऐसी जादूगरनी की तरह जुड़ी थीं जिनकी छाया से मुक्त हो पाना उस परिवार के लिए संभव नहीं था । घर में बाबू और माँ थे । बाबू दिल्ली में अपनी नौकरी पर चले जाते थे और वर्ष के गिने–चुने दिनों जब वे मकान पर लौटते थे, उनके घर के सामने कुलियों का जमघट लग जाता था । लेकिन परिवार की निगाह में उस घर और नौकरी के बीच खाना–बदोश बनकर रह गये थे । वे घर के

थे न घाट के । बाबू से अलग उस परिवार में माँ थी, जो लम्बे समय से अस्वस्थ पड़ी थी और जिनके मन में हर वक्त आशंकाएँ कुशंकाएँ भरी होती थीं । घर में भोलू, मंगतू जैसे नौकरों की दुनिया थी, जो काया के कैशोर्य को अपनी चालाक उंगलियों से स्पर्श करने और उसमें रंग भरने की कोशिश कर रहे थे ।

"एक चिथड़ा सुख" में काया और लामा का मिस जोसुआ, माँ, बाबू और बुआ से संघर्ष उभरकर सामने आता है । जो उस परिवार को स्वीकार्य नहीं होता । लामा बढ़ती उम्र के धरातल पर प्रश्नों से आहत है और लामा का साहचर्य उसे सुखद लगता है । लेकिन काया से लामा को छीन लिया जाता है । अंततः काया चाचा के घर फॉक्सलैंड भेज दी जाती है, जहाँ वीरु यह देख रहा है कि नथवाली पहाड़ी स्त्री को चाचा ने किस तरह अपने सम्मोहन में उलझा लिया हैं । वीरु काया के प्रति उस लामा की भूमिका में खड़ा हो जाता है, जो काया को दीक्षित करने के अपराध में गोपनीय ढ़ंग से ब्याह दी गयी थी । इस उपन्यास में पुरानी पीढ़ी के प्रति नयी पीढ़ी का संघर्ष देखा जा सकता है –

"वह टके–से बिस्तर पर बैठ गयी । कितने खटके थे, इतने बड़े मकान में कहीं न कहीं दरवाजा खटकता है, छत हिलती है ।"[५३]

"लामा को न भूत दिखायी देते थे न प्रेत – हर जगह उसे जानवरों वेष में जाने पहचाने प्राणी दिखायी देते थे ।"[५४]

## (१२) बदलते मूल्य बोध :

निर्मल वर्मा की सारी चिन्ता सार्वदेशिक और सार्वकालिक जीवन में बदलते हुए मूल्य–बोधों को लेकर है । जहाँ यूरोप के प्रगतिशील देश में अपने–आप में मूल्यहीनता की इतनी यंत्रणाएँ स्वयं में समेटे हुए हैं, जो स्वयं में चिंताजनक स्थितियों तक दारुण है और जिनसे एकबार साक्षात्कार कर लेने पर कभी–पीछा नहीं छोड़ा जा सकता । यहाँ तक कि यदि उन स्थितियों से निकलकर कोई स्वदेश भी जाए तो भी ये मूल्य–बोध अंतर्राष्ट्रीय धरातल पर उनका पीछा नहीं छोड़ेंगे । "वे दिन" के इण्डी और टी.टी. एक ओर जहाँ

यूरोप में यह विवशता झेलने पर तत्पर है, वहीं फ्रांज, मारिया जैसे पात्र विभिन्न देशों में लौटकर इस मूल्य हीनता को अपने-अपने धरातलों पर स्वीकार करने को विवश हैं । मूल्यहीनता की यही स्थिति ''लाल टीन की छत'' में बाबू अपने धरातल पर जी रहे हैं उस घर में प्रमुख सदस्य होकर भी वे न घर के हैं न घाट के । इन्हीं स्थितियों में मिसेज जेसुआ हैं, जिनका पूरा सुख इस बात में है कि वे किसी तरह इस परिवार को अपने तथाकथित जादू से पूरी तरह ढँक ले । यही स्थिति लामा की है, जिसे एक आवारा लड़की मानकर ''देश निकाला'' दे दिया जाता है, जहाँ से लौटकर वह काया को स्पर्श भी न कर पाये और काया इस मूल्यहीनता का सबसे बड़ा उदाहरण है जो बढ़ती उम्र के साथ उस परिवार के लिए आशंकाओं का एक अदभुत साधन बनती जा रही है । वास्तव में काया के निरंतर परिवर्तित होते उम्र-बोध और प्रश्नों को वह परिवार स्वाभाविक ढ़ंग से ग्रहण नहीं कर पाता ।

निर्मल वर्मा ने एक ओर जहाँ काया और लामा के नितांत मध्यमवर्गीय परिवार के धरातल पर इस मूल्यहीनता को व्यक्त किया है, वहीं दूसरी ओर ''एक चिथड़ा सुख'' में दिल्ली जैसे महानगर में रंगकर्म को समर्पित और आधुनिकता से भरपूर चरित्रों की मानसिकता को भी स्पर्श किया है । अंतराष्ट्रीय मूल्यबोधों ने आधुनिकता की सतह पर जीनेवाले बिट्टी और, इरा और नित्ती भाई को भी नहीं छोड़ी है । एक ओर वे अपनी स्वतंत्रता चेतना के धरातल पर जी रहे हैं तो दूसरी ओर उनके जीवन में रंगकर्म का एक परम लक्ष्य भी हैं । पर अंततः नित्तीभाई की तरह इरा, बिट्टी और डैरी भी अपनी आस्थाओं में टूट जाते हैं । न तो रंगकर्म उन्हें सहायता देता हैंक्ष और न वह आधुनिकता, जो इस महादेश के पढ़े-लिखे समाज की सबसे बड़ी पूँजी है ।

मूल्य हीनता का सबसे बड़ा दौर निर्मल वर्मा के उपन्यास ''रात का रिपोर्टर'' में देखने को मिलता है । जहाँ आपातकाल के दौर में उन सारे बुद्धिजीवियों को पंगु बना दिया है, जो अपने देशकाल की लड़ाई लड़ रहे थे ।

इस लड़ाई में दयालबाबू अडतालीस घंटे पुलिस की यातना में रहकर आये हैं तो अनूप भाई के बारे में उन्हें कुछ भी पता नहीं है कि वे किस जेल में रखे गये हैं ? पता नहीं वे जिन्दा हैं भी या नहीं ? और यही मूल्यहीनता ऋषि को हर वक्त सत्ता द्वारा गिरफ्तार किया जा सकता है । मूल्यहीनता का यही चरम अंतिम अरण्य में व्यक्ति को मृत्यु के प्रति आकर्षित करता हुआ दिखायी देता है ।

वास्तव में निर्मल वर्मा यह स्पष्ट कर देते हैं कि बदलते वक्त में मूल्यों का जो ह्रास होता चला जा रहा है, उसे चुपचाप सहने के अतिरिक्त आदमी के पास उससे मुक्ति का कोई रास्ता नहीं है । निर्मल वर्मा उसे मुक्ति संघर्ष के लिए प्रेरित करना चाहते हैं ।

## (१३) संस्कृतियों का द्वंद्व :

निर्मल वर्मा के उपन्यासों में महानगरों से लौटे हुए पात्र अंततः पहाड़ी कस्बों की शरण लेते हैं । पर अंततः ढलानों और बर्फ के बीच, चीड़ और देवदार और पानी के चकबंधी से स्वयं को सराबोर करने के बावजूद वे अपने को उस बोझ से अलग नहीं कर पाते, जो उन ढलानों से दूर महानगर में उनके आस-पास रही होगी । इन उपन्यासों में एक ओर जहाँ भारतीय समाज है, वहीं पश्चिमी समाज की छाया उनमें सर्वत्र दिखायी देती है । "वे दिन" में इंडी भारतीय मुल्क का है । रायना जर्मन है, टी.टी. बर्मी मुल्क का है तो फ्राँज आस्ट्रलियन था और मेलन्कोविच अपने पीछे लैलीनग्रेड में अपना परिवार छोड़ आया था । स्पष्ट है कि "वे दिन" उन विभिन्न संस्कृतियों में जीते हुए लोगों का संगम है जो अंतर्राष्ट्रीय परिवर्तनों को न केवल अपने देशकाल के धरातल पर जी रहे थे वरन् उसकी छाया सारी दुनिया में मौजूद थी ।

संस्कृतियों का यही संगम और द्वंद्व "एक चिथड़ा सुख" में है, जहाँ मुन्नू और बिट्टी इलाहाबाद के मध्यमवर्गीय परिवार से हैं तो नित्तीभाई और इरा लंदन के अत्याधुनिक माहौल से और बिट्टी के अनुसार डैरी भाई के पास महानगर में अक्षय सम्पति है और उनके पिता एक बड़े अधिकारी हैं । ये सारे पात्र रंगमंच की दुनिया में आकर एक-दूसरे की सोच-समझ के बहुत

निकट हो गये हैं । लेकिन यह भी सच है कि विभिन्न संस्कृतियों में पले–पढ़े ये समर्पित लोग अंततः रंगमंच से उतरकर उस दुनिया में लौट जाते हैं, जो उनकी सोच–समझ और रहन–सहन की निजी सांस्कृतिक दुनिया है । उस दुनिया से निकलकर वे हर दिन एक–दूसरे से मिलते हैं और अंततः अपनी दुनिया में लौट जाते हैं ।

संस्कृतियों का यही द्वंद्व ''लाल टीन की छत'' में काया, लामा, नथवाली पहाड़ी स्त्री और मिसेज जेसुआ के धरातल पर देखा जा सकता है । मिसेज जेसुआ लड़ाई के बाद वहां आयी थीं, जिन्हें उनके पति स्वदेश जाते हुए भी इसलिए छोड़ गये थे कि वह कस्बा उन्हें बहुत प्रिय था । मिस जेसुआ विवाहित होने के बाद भी मिस थी । वे अंतर्राष्ट्रीय दुनिया के निकट होने के बावजूद न तो उस परिवार में लामा को स्वीकार सकीं और न काया के स्वभाविक प्रश्नों को । संस्कृतियों के द्वंद्व का ही यह परिणाम है कि नथवाली को उस माहौल में जादूगरनी समझा जाता है और उसे कभी–भी वह दर्जा नहीं दिया जाता जो चाचा से जुड़ाव के बाद अंततः उसे प्राप्त होना चाहिए ।

सांस्कृतिक द्वंद्व का एक रंग ''रात का रिपोर्टर'' में है तो दूसरा रंग ''अंतिम अरण्य'' में । ''रात का रिपोर्टर'' में ऋषि का निम्न मध्यमवर्गीय परिवार है तो दयाल बाबू और रायसाहब जैसे साधन–सम्पन्न लोग भी । वहाँ हॉलबाख जैसा विदेशी शोधार्थी भी है । इसी तरह ''अंतिम अरण्य'' में मेहरा साहब जैसे रिटायर्ड आई.सी.एस. है । अन्नाजी जैसी जर्मन गर्वनस है, निरंजन बाबू जैसे व्यापारी और दर्शनशास्त्री है तो डॉ. सिंह जैसे चिकित्सक और कथानायक मैं जैसे पात्र भी हैं । ये सारे पात्र विभिन्न संस्कृतियों की उपज हैं । दर्शन के धरातल पर कहीं एक होते हुए भी अंततः अपनी ही दुनिया में जी रहे हैं । इन पात्रों की दुनिया निर्मल वर्मा के शब्दों में विभिन्न धरातलों पर देखी जा सकती है –

''उनकी भूख और कटेहाली को देखकर कभी–कभी बहुत दया आती थी । बिट्टी से पूछा तो काफी देर तक वह हंसती रही – तुम्हें नहीं मालूम, अकबर रोड़ पर इनके पिता का बंगला है ।''[५५]

"पहले दिन जब वह यहाँ आया था तो उसे बहुत हैरानी हुई थी दिल्ली भी कैसा शहर है ? मुर्दो के टीले तले लोग जिन्दा रहते हैं ।"[५६]

"मिस जेसुआ बहुत दुबली–पतली औरत थीं – सींक सी लम्बी । सिर पर हंमेशा ऊनी हैट पहने रखतीं, जिसके बाहर सफेद बाल छितराकर माथे पर सूकते रहते ।"[५७]

## ❀ संवेदना के विविध धरातल :

निर्मल वर्मा अपने उपन्यासों में उस युद्धोत्तर समाज का चित्र खींचना चाहते हैं, जिसकी संवेदनाएँ उन सारे मोड़ों पर केन्द्रित हैं जो बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में अंतर्राष्ट्रीय धरातल को गहराई से प्रभावित कर रहे थे । जहाँ व्यक्ति के व्यक्ति से बनते–बिगडते संबंध थे तो उन संबंधों से अलग मन के धरातल पर उसकी संवेदनाओं की निजी दुनिया थी, जहाँ पहुँचकर बाहर का संसार अपनी चमक खो देता था और एक बदरंग उजास गहरे तक फैल जाती थी ।

यह बदरंग आलोक निर्मल वर्मा की रचनाओं में बार–बार उभरता है, जो नंगी ढलानों, बर्फ, देवदास और चीड़ के पेड़ों और गिरिजाघर के पीछे लुकता–छिपता अचानक फिर से प्रकट हो जाता है । यह आलोक अंत तक उनका पीछा नहीं छोड़ता, जिसकी सर्वोपरि सत्ता का एहसास लिए हुए रचनाकार एक के बाद दूसरे पात्रों–कथाओं और संवेदनाओं की रचना करता चलता है ।

कोई भी देशकाल जिन राष्ट्रीय–अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों की उपज होता है, उसमें यह संभव नहीं है कि देशकाल के धरातल पर दुनिया कहीं समरूप हो और सारे पात्रों की संवेदनाएँ एक जैसी हो जाए । उनमें विविध मानसिकताओं के धरातल पर बहुरंगी संवेदनाओं का अनंत विस्तार बहुत स्वाभाविक है । यहाँ तक कि ये सारे पात्र रंगों के आधार पर इतने अलग–अलग हैं कि एक–दूसरे से कहीं भी मेल नहीं खाते । यहाँ तक कि "वे दिन" का कथानायक "मैं', "रात का रिपोर्टर" "मैं" से बिल्कुल अलग है । "अंतिम अरण्य" का "मैं" स्वयं में एक अलग चरित्र संजोए हुए है ।

यहाँ तक कि इन पात्रों में रायना रहमान, बिन्दु, नथवाली पहाड़ी स्त्री, बिट्टी और दीवा जैसी प्रेमिकाएँ है, जिनके चरित्रों का बहुरंगी संसार नारी के उस स्वरूप को रेखांकित करता है जो प्रेमिका के रूप में उसकी भूमिका को अनेक रंगों से भर देते हैं ।

संवेदनाओं के विविध धरातल ''वे दिन'' में फ्रांज, मारिया, मेलन्कोविच और फादर पीटर के माध्यम से है तो ''एक चिथड़ा सुख'' में मुन्नू डैरी, नितीभाई, बिट्टी और इरा के माध्यम से है । इन सबके पीछे मुन्नू की स्मृतियों का वह संसार है जो उम्र के इस धरातल तक उसका पीछा नहीं छोड़ता ।

लेकिन निर्मल वर्मा की संवेदनाओं का संसार यहीं पर खत्म नहीं हो जाता । मन के नितांत अंतरतम में उतरकर जीनेवाले निर्मल वर्मा आपात स्थिति की उस पीड़ा से गुजरते हैं, जो उस देशकाल में गलियों – चौराहों में स्थूल होकर लोगों के चेहरों पर देखी जा सकती थीं । यही कारण है कि निरंतर संवादों से बचनेवाले निर्मल वर्मा का कथानायक इस उपन्यास में संवाद भी करता है और उन घटनाओं से भी गुजरता है, जिन्हें निर्मूल कर निर्मल वर्मा निरंतर शब्द के रुमानी वातावरण में डूबने से दिखायी देते हैं । यहाँ निर्मल वर्मा की संवेदना स्थूल रूप में राजनैतिक सत्ता के विपरीत केन्द्रित है और ''अंतिम अरण्य'' तक जाकर कथाकार को यह लगता है कि व्यक्ति जीवनभर जो कुछ नहीं पाता जैसे मृत्यु के स्वीकार्य से वह सबकुछ पा लेता है –

''वह अपनी लकड़ी के सहारे चलते थे, कभी अपना हाथ नहीं पकड़ने देते थे । अपनी छड़ी की खट–खट और झाड़ियों में झीगुरों की तान... एक दूसरे की जुगलबंदी में इतना मस्त हो जाते कि देर तक हमें पता भी नहीं चलता कि साथ होते हुए भी हम कैसे रात के बनैले, चमकीले मौन में सिर्फ वह सुन रहे हैं, जिसका संबंध हमसे नहीं किसी आदम जगत से है ।''[५८]

''अंतिम अरण्य'' में मृत्यु के कगार पर खड़े मेहरा साहब प्रकृति से इस तरह एकाकार होते चले गये हैं कि उनके लिए अब किसी सहारे की

जरुरत नहीं । उनके जीवन की लाठी के अतिरिक्त प्रकृति भी उनके लिए लाठी बन गयी है ।

संवेदनाओं का यह संसार रचते हुए निर्मल वर्मा जिन्दगी के उन आयामों को स्पर्श करते है, जो भारतीय और पश्चिमी समाज में मनुष्य का एक अनिवार्य हिस्सा हो सकती है । "भारतीय वातावरण और पश्चिमी आधुनिकता के मध्य वे अपने को निरंतर असमंजस की स्थिति में पाते हैं । उनकी यही स्थिति इन उपन्यासों में विवेकहीन स्वातंत्र्य, दायित्व हीन मर्यादा, आत्म संघर्ष की व्यथा ता अपरिचय के संत्रास के रूप में व्यक्त हुई हे ।"[५९]

प्रश्न हो सकता है कि इन पात्रों की कथा का पाठक के जीवन से क्या कोई संबंध भी है ? "भारतीय जीवन में गत दो विश्व महायुद्धों का प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से अनुभव नहीं किया गया । विश्व की महान शक्तियों के बीच जो होड़ चल रहीं है और शीतयुद्ध का वातावरण उनके बीच है, वह भारत को अधिक नहीं छूता । यहाँ का मनुष्य अब भी सीधी-सादी शांत जिन्दगी बिताता है । किन्तु यहाँ सब कुछ सामान्य है, ऐसा नहीं कहा जा सकता । आधुनिक जीवन की कशमकश देश के अनेक भागों में देखी जा सकती है ।"[६०]

स्पष्ट है कि जिन्दगी की यह कशमकश अंतर्राष्ट्रीय धरातल पर फैले हुए उस युद्धोतर प्रभाव की प्रतिश्रुति है, जो सारी दुनिया में एकरूप होकर फैला हैं । यह एकरूपता व्यक्ति में अकेलेपन पैदा करती है । जैसे "यह अकेलेपन की व्यर्थता की अनुभूति है । इस परत के नीचे जीवन की विवशता है और इसकी स्वीकृति में आधुनिकता की स्वीकृति है ।"[६१]

इस स्वीकृति के लिए निर्मल वर्मा निरंतर अभिजात्य वर्ग का सहारा लेते है । जैसे - "अब प्रश्न यह उठता है कि उन्होंने इसी वर्ग का चित्रण क्यों किया ? निम्न वर्ग को अपने उपन्यासों में स्थान क्यों नहीं दिया ?"[६२]

वास्तव में निर्मल वर्मा अनुभूतियों के जिस संसार में उतरकर रचना को जन्म देते हैं, वह मानसिकता के धरातल पर उतरकर जीनेवालों की दुनिया है । जहाँ खाया-पिया संसार है और रोजी-रोटी के संघर्ष को कोई महत्त्व नहीं है । उनके पात्रों की दुनिया में प्रेम सर्वोपरि है । जैसे - "यह प्रेम ही

जाति, वर्ण, भाषा, देश और उम्र के बंधनों से ऊपर है । ऐसा प्रेम ही हमें अपने को पहचानने की शक्ति देता है और हम उन संत्रासों से बच जाते हैं, जिनमें हमें महायुद्धों ने और आधुनिक व्यवस्थाओं ने झोंक दिया है ।''[६३]

इस प्यार के धरातल पर निर्मल वर्मा का अंतराष्ट्रीय संसार विभिन्न पात्रों के माध्यम से एकाकार हो जाता है । यह प्रेम ही उन्हें अंतर्राष्ट्रीय धरातल पर एक–दूसरें से जोड़ता है । ''इसी कारण उनमें आपस में कोई विरोध या संघर्ष नहीं है ।''[६४] वे एक–दूसरे को तोड़ते नहीं जोड़ते हैं ।

निर्मल वर्मा के उपन्यासों में सबसे प्रमुख संवेदना उन स्त्रियों की है, जों रायना रहमान से आरंभ होकर डॉ. तिया और दीवा के रूप में अपने बहुरंगी रूपाकार में विस्तृत दिख आयी देती है । ''हिन्दी उपन्यासों में प्रायः स्त्री प्रायः समर्पिता ही रही है । पुरुष ने स्त्री को सदैव एक्सप्लायड किया है या भोगा है । स्त्री मात्र भोग्या रही है, जैसे यही उसकी नियति हो ।''[६५] इसके विपरीत रायना अपनी स्थितियों में स्वतंत्र है । बिट्टी, इरा, काया, लामा, नथवाली पहाड़ी स्त्री, बिन्दु और डॉ. तिया जैसी पात्र अपने ही रचे गये संसार में पूरी स्वतंत्रता से अपनी नियति जी रहे हैं । यह निर्मल वर्मा की नारी संवेदना का एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण है ।

निर्मल वर्मा के उपन्यासों में संवेदना के जितने भी रंग हैं, ये उनके पात्रों के संसार में पूरी तरह उभरकर सामने आते हैं । इन संवेदनाओं से गुजरने के लिए हमें उस संसार में उतनी ही संवेदना से प्रवेश करना होता हैं ।

# संदर्भ सूची :


| क्रम | | पृष्ठ क्रमांक |
|---|---|---|
| १ | हिन्दी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना – डॉ. उषा यादव | २२ |
| २ | हजारी प्रसाद द्विवेदी – चुने हुए निबंध – मुकुन्द द्विवेदी | ६५ |
| ३ | आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य में काम मूलक संवेदना – श्री रामबा महाजन | १०३ |
| ४ | अग्निसागर : संवेदनापक्ष – डॉ. विरेन्द्र भारद्वाज | ४१ |
| ५ | हिन्दी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना – डॉ. उषा यादव | ११ |
| ६ | अग्निसागर : संवेदनापक्ष – डॉ. विरेन्द्र भारद्वाज | ४१ |
| ७ | हिन्दी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना – डॉ. उषा यादव | ११ |
| ८ | आधुनिक साहित्य संज्ञा कोश (गुजराती) डो चंद्रकान्त टोपीवाला | ६५ |
| ९ | नालंदा विशाल शब्दासागर – श्री नवलजी | १३८५ |
| १० | हिन्दी संस्कृत कोश – डॉ. समस्वरूप 'रसिकेश' | ५६१ |
| ११ | भगवदगोमंडल (गुजराती) – सं. भगवतसिंहजी | ८६६२ |
| १२ | हिन्दी साहित्य कोश भाग–१ – सं. धीरेन्द्र वर्मा तथा अन्य | ८६३ |
| १३ | संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर – सं. रामचंद्र वर्मा | ६६४ |
| १४ | मानवी की पारिभाषिक कोष : साहित्य खंड – सं. श्री राय | २३२ |
| १५ | दिनमान साहित्य सिद्धांत और समालोचना – डॉ. देवीप्रसाद गुप्त | २२१ |
| १६ | दिनमान हिन्दी शब्द कोश – सं. श्री शरण | ६६४ |
| १७ | हिन्दी कहानी एक अंतरंग पहचान – डॉ. रामदरश मिश्र | ३६ |
| १८ | सामाजिक यथार्थ और कथा–भाषा – डॉ. सच्चिदानंद वात्स्थायन | ४६ |
| १९ | अग्निसागर : संवेनदापक्ष – डॉ. विरेन्द्र भारद्वाज | ४३ |
| २० | राग–विराग की गोधुलि का गल्प, अशोक वाजपेयी, निर्मल वर्मा | ६ |
| २१ | निर्मल वर्मा और उत्तर उपनिवेशवाद, डॉ. सुधीश पचौरी, | ६४ |
| २२ | कथाकार निर्मलवर्मा, नरेन्द्र इष्टवाल | ८२ |
| २३ | निर्मल वर्मा और सुरेशजोशी का साहित्य, डॉ. रेखा शर्मा | ७० |
| २४ | निर्मल वर्मा के उपन्यास, ज्योति शर्मा | ८८ |
| २५ | कला का जोखिम, निर्मल वर्मा | ४७ |
| २६ | शब्द और स्मृति, निर्मल वर्मा | १५ |
| २७ | शताब्दी के ढलते वर्षों में निर्मल वर्मा | ६८ |
| २८ | वे दिन, निर्मल वर्मा | ७६ |
| २९ | रात का रिपोर्टर, निर्मल वर्मा | १०४ |
| ३० | अंतिम अरण्य, निर्मल वर्मा | १६० |
| ३१ | वे दिन, निर्मल वर्मा | ६२ |
| ३२ | अंतिम अरण्य, निर्मल वर्मा | १५५ |

| | | |
|---|---|---|
| ३३ | वे दिन, निर्मल वर्मा | १० |
| ३४ | रात का रिपोर्टर, निर्मल वर्मा | १५ |
| ३५ | अंतिम अरण्य, निर्मल वर्मा | ३६ |
| ३६ | अंतिम अरण्य, निर्मल वर्मा | ७६ |
| ३७ | अंतिम अरण्य, निर्मल वर्मा | १५४ |
| ३८ | अंतिम अरण्य, निर्मल वर्मा | १६७ |
| ३६ | अंतिम अरण्य, निर्मल वर्मा | १५८ |
| ४० | अंतिम अरण्य, निर्मल वर्मा | १५६ |
| ४१ | अंतिम अरण्य, निर्मल वर्मा | १५६ |
| ४२ | वे दिन, निर्मल वर्मा | २२.२३ |
| ४३ | वे दिन, निर्मल वर्मा | २३ |
| ४४ | अंतिम अरण्य, निर्मल वर्मा | १७६ |
| ४५ | एक चिथड़ा सुख, निर्मल वर्मा | ३४ |
| ४६ | रात का रिपोर्टर, निर्मल वर्मा | १३१ |
| ४७ | वे दिन, निर्मल वर्मा | १८१ |
| ४८ | वे दिन, निर्मल वर्मा | १८१.१८२ |
| ४६ | एक चिथड़ा सुख, निर्मल वर्मा | १८ |
| ५० | एक चिथड़ा सुख, निर्मल वर्मा | १६ |
| ५१ | लाल टीन की छत, निर्मल वर्मा | १४७ |
| ५२ | एक चिथड़ा सुख, निर्मल वर्मा | २१ |
| ५३ | लाल टीन की छत, निर्मल वर्मा | १२ |
| ५४ | लाल टीन की छत, निर्मल वर्मा | १४ |
| ५५ | एक चिथड़ा सुख, निर्मल वर्मा | १८ |
| ५६ | एक चिथड़ा सुख, निर्मल वर्मा | १०.११ |
| ५७ | लाल टीन की छत, निर्मल वर्मा | १६ |
| ५८ | अंतिम अरण्य, निर्मल वर्मा | २०४.२०५ |
| ५६ | हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास, डॉ. मफतलाल पटेल, | १४ |
| ६० | हिन्दी उपन्यास नये क्षितिज, डॉ. शशिभूषण सिंहल, | २६१.२६२ |
| ६१ | आज का हिन्दी उपन्यास, डॉ. इन्द्रनाथ मदान, | १०३ |
| ६२ | हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास, डॉ. रणवीर रांगा, | ५४ |
| ६३ | निर्मल वर्मा, दिनमान, 'फरवरी १६७६', | २३ |
| ६४ | आज का हिन्दी साहित्य, डॉ. रामदरश मिश्र, | २३ |
| ६५ | हिन्दी लघु उपन्यास, घनश्याम मधुप, | २०३ |

⁂

# षष्ठ अध्याय
# निर्मल वर्मा के उपन्यासों का शिल्प पक्ष

- शिल्प : अवधारणा :
- निर्मल वर्मा के उपन्यासों का शिल्पगत वैशिष्ट्य
  - (१) सर्जनात्मक वैशिष्ट्य
  - (२) कथानक की विरलता
  - (३) घटनाओं का विशिष्ट उपयोग
  - (४) आत्मकथात्मक रूप से कथन
  - (५) सूक्ष्म सांकेतिकता
- निर्मल वर्मा के उपन्यासों में भाषागत वैशिष्ट्य
  - (१) संवेदनशील गद्य
  - (२) लयात्मकता
  - (३) उपन्यासों में प्रयुक्त शब्द–समूह
    - *(i) अंग्रेजी शब्द*
    - *(ii) अंग्रेजी वाक्य*
    - *(iii) अंग्रेजी शब्दों का हिन्दी करण*
    - *(iv) संस्कृतनिष्ठ शब्दावली*
    - *(v) उर्दू शब्दावली*
    - *(vi) बोलचाल की शब्दावली*
    - *(vii) ध्वनियुक्त शब्द*
    - *(viii) शब्द प्रयोग में व्याकरणिक अशुद्धियाँ*
    - *(ix) शब्द शक्तियों का सर्जनात्मक उपयोग*
  - (४) मुहावरे और लोकोक्तियाँ
  - (५) भाषा में निहित संगीतमय तत्त्व
  - (६) बिम्ब और प्रतीक योजना का निरूपण
  - (७) अमूर्त को मूर्त बनाती भाषा

# षष्ठ अध्याय
# निर्मल वर्मा के उपन्यासों का शिल्प पक्ष

## ❀ शिल्प – अवधारणा :

"साहित्य में वस्तु तत्त्व की भाँति कला और शिल्प का भी अपना विशिष्ट महत्त्व होता है । कोई साहित्यिक कृति वस्तु तथा विचार तत्त्व की वाहिका होते हुए भी एक कलात्मक इकाई भी होती है । मूलतः वह एक कलात्मक सृष्टि ही है, जो कलाकार की अपनी संवेदनाओं, अनुभवों तथा चिंतन को इस रूप में पाठकों तक संप्रेषित करती है कि पाठक सहज ही उससे एक तादात्म्य का अनुभव करता हुआ इच्छित आनंद तथा संतोष प्राप्त करता है । कहने की आवश्यकता नहीं कि कला के आवरण में प्रस्तुत की गई संवेदनाएँ तथा विचार कला ही साहित्य को साहित्य बनाते है और उसे स्थायी महत्त्व भी प्रदान करते है । साहित्य के अंतर्गत कला और शिल्प दोनों की अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है ।"[१]

भाषा अभिव्यकित का मूल माध्य है । भावों को संप्रदाय की स्थिति भाषा से ही मिलती है । मनुष्य के सफल उद्घाटन एवं अभिव्यकित के लिए साहित्य की रचना करते समय साहित्यकार को शिल्प का सहारा लेना पड़ता है । साहित्य के शिल्प के अंतर्गत उन सभी विधिओं, नियमों, तरीकों का समावेश हो जाता है जिनकी सहायता से सर्जक किसी घटना, पात्र–वार्तालाप अथवा दृश्य और वातावरण का सजीव वर्णन प्रस्तुत करता हुआ मानवजीवन के किसी विशिष्ट पहलू पर प्रकाश डालता है । शिल्प के कोशीय अर्थ निम्नांकित है –

- "शिल्प – संज्ञा पु. (सं.) निर्माण सर्जन, सृष्टि रचना ।"[२]
- "शिल्प गुण, कलाकृति के विभिन्न अंगो की शिल्पगत एकांतविति ।"[३]
- "शिल्प से अभिप्राय हाथ से कोई वस्तु तैयार करने अथवा हस्तकारी या कारीगरी से है ।"[४]

साहित्य गजत में शिल्प का तात्पर्य कलापक्ष है । इसके अंतर्गत भाषा, शैली, छन्द, अलंकार, प्रतीक, बिम्ब आदि का अध्ययन किया जाता है । उदात्त भावों की अभिव्यकित के लिए उदात्त भाषाशैली, शिल्प सौष्ठव की आवश्यकता होती है । हम इसकी परिभाषाओं पर दृष्टिपात करेंगे ।

### ❀ *परिभाषा :*

शिल्पविधि को स्पष्ट करने का प्रयास अनेक विद्वानों ने किया है जिनमें से प्रमुख निम्नांकित है । डॉ. सत्यपाल चुध के मतानुसार – "उपन्यास रचना में जिस प्रक्रिया से लक्ष्य तथा संवेदनाभूति उसके तत्त्वों, कथानक, पात्र, वातावरण आदि – में परिणत हो औपन्यासिक रूप का निर्माण करते हैं, वहीं उसकी शिल्पविधि है ।"[५]

शिल्पविधि के संदर्भ में डॉ. ओम शुक्ल का मत है कि – "कला की रचना में जिन तरीकों, रीतियों और विधियों का उपयोग किया जाता है, वे ही उस कला की शिल्पविधि के नाम से पुकारी जाती है ।"[६]

सारांश यह है कि लेखक का दृष्टिकोण, उद्देश्य और विषयवस्तु की अभिव्यकित ही शिल्प है जिसके लिए भाषा–शैली की आवश्यकता होती है ।

### ❀ *साहित्य में वस्तु और कला–शिल्प की सापेक्षिक भूमिका :*

#### ➢ *वस्तु–कला और शिल्प :*

कला और शिल्प के बल पर श्रेष्ठ साहित्य की रचना नहीं की जा सकती, उसी प्रकार कोरा अनुभव तथा चिंतन भी लिपिबद्ध होकर श्रेष्ठ साहित्य की संज्ञा प्राप्त नहीं कर सकता । साहित्य में वस्तु और शिल्प का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है ।

"प्रतिभा के साथ–साथ कुशल शिल्प का होना बहुत जरुरी है । शिल्प विहीन प्रतिभा उत्कृष्ट रचना का सृजन करने में असमर्थ है । ऐसी प्रतिभा उस कुशल कारीगर के समान है जो औजार न होने के कारण अपनी कारीगरी दिखाने में असमर्थ है ।"[७] साहित्य में कला और शिल्प का अनन्य सम्बन्ध है ।

इस प्रकार हम कह सकते है कि किसी उपन्यास की श्रेष्ठता उसके वस्तु, कला और शिल्प के संतुलित समन्वय पर निर्भर करती है ।

## ❀ निर्मल वर्मा के उपन्यासों का शिल्पगत वैशिष्ट्य :

निर्मल वर्मा एक ऐसे रचनाकार हैं जिन्होंने शिल्प के धरातल पर हिन्दी जगत को एक ऐसा कथा आयाम दिया, जिससे उनकी सर्जनात्मकता हमेशा चर्चा में रहीं । यह उनकी अभिव्यक्ति की विशेष शैली के कारण हुआ । उन्होंने कथानक के स्वरूप को संपूर्णरूप में बदलकर रख दिया और नूतन शिल्प का उपयोग किया, जो पश्चिमी धरातल पर शायद प्रचलित रहा हो, लेकिन हिन्दी साहित्य में वह स्वरूप अनुपस्थित था और उसे यहाँ स्थापित करने का काम निर्मल वर्मा ने किया । उनकी सर्जनात्मकता के वैशिष्ट्य को निम्नलिखित धरातल पर देखा जा सकता हैं ।

### (१) सर्जनात्मक वैशिष्ट्य :

सर्जनात्मक वेशिष्ट्य के बारे में डॉ. गोपालराय का कथन है कि – ‘‘यह सर्वमान्य तथ्य है कि पुस्तक का कोई न कोई रूप (फॉर्म) होता है । किसी पुस्तक का रूप कैसा है, वह अच्छा है या बुरा, वह महत्त्वपूर्ण है या नहीं यह विवाद का विषय है । पर पुस्तक उपर्युक्त होती है यह विवाद रहित है ।’’[८] अर्थात् शिल्प या रूप रचना में अनिवार्यतः होता है । यह बात और है कि कोई रचनाकार शिल्प को अधिक महत्त्व देता है तो कोई कथ्य केन्द्रित रह जाता है । एक सार्थक रचनाकार अपनी रचना में कथ्य और शिल्प के समुचित समन्वय का ध्यान रखता है । रचना में कथ्य प्राथमिक और महत्त्वपूर्ण होता है । जबकि उसकी अभिव्यक्ति महत्त्वपूर्ण होते हुए भी गौण हो जाती है ।[९]

निर्मल वर्मा ने अपनी रचनाओं में उपरोक्त कथन के अनुरूप एक ऐसा कथाशिल्प दिया है, जो सर्जन की दिशा में पिछले सारे कथारूपों का अस्वीकार कर एक एसा सर्जनात्मक वैशिष्ट्य पैदा करता है, जो प्रबुद्ध पाठक के लिए संप्रेषण की ऐसी मानसिकता पैदा करता है जिसमें कथा की नवीन दृष्टिकोण से

उसका मन सराबोर हो जाता है । 'वे दिन' का इन्दी प्राग में भटकता हुआ एक ऐसा पात्र है, जो अपनी सामाजिक स्थिति में न केवल दयनीय है, बल्कि भारतीयता की ऐसी तस्वीर प्रस्तुत करता है जो घृणित और अस्विकार के योग्य है । उसके पास कहने के नाम पर अपना कुछ भी नहीं है । यही हाल टी.टी., फ्रांज और मारीया, मेलेन्कोवीच और रायना रहमान का भी है । किन्तु लेखक ने उनके जीवन के कड़वे अनुभवों से उत्पन्न संवेदनाओं को सर्जन की वह विशिष्टता प्रदान की है, कि उनका निराशा और घुटन से परिपूर्ण संसार सारी दुनिया के लिए सहसा पहचान युक्त हो उठता है । और उस दुनिया में वे फिर से जीने की आकांक्षा पालने लगते हैं । 'वे दिन' उपन्यास के अंत में इन्दी सबकुछ भूल जाता है और अपने लिए नये सपने देखने लगता है। यहाँ तक कि उसे खुशी है प्राग में पहाड़ों पर रहकर वह सबकुछ भूल जायेगा । वह बीयरबार में जाकर एक बीयर मँगवाता है और हवा के चमकीले नीले आलोक में सबकुछ सुंदर और सौंदर्य युक्त पाता है ।[१०]

इसी तरह 'लाल टीन की छत' में कथानायिका काया अपनी जिन्दगी के अंतिम मोड़ पर पहुँचकर सारे दुःखों से हल्की हो जाती है । वह कहती है – ''अचानक मुझे लगा कि मैं हल्की हो गई, सबसे मुक्त और स्वच्छ । मेरा शहर दब गया था, हमेशा के लिए और मैं उस पर उगी बसंत की घास और कीचड़ में लिथड़ी बर्फ से अपना खून पोंछ रही थी । मैं ईश्वर के पास पहुँचकर उससे परे निकल गई थी ।''[११] इसी तरह 'रात का रिपोर्टर' के अंत में कथानायक कथा के अंत में जाकर मजदूरों के बीच बैठ जाता है और उसे लगता है कि वह बस्तर में आदिवासियों के बीच बैठा है । ''धुएँ के गुंजन, दूर से ढोलक का धुमिल मादक स्वर चला आता, जिसके सुनते ही जंगल के काले जूमुंटो से पता नहीं कितने देवी–देवता निकल आते ।''[१२]

इसी प्रकार यह स्पष्ट है कि निर्मल वर्मा के सर्जनात्मक वैशिष्ट्य ने इन हारी थकी जिन्दगियों को संवेदनाओं की एक–एक ऊर्जा में बाँधकर जिस तरह रचनात्मक वैशिष्ट्य उपस्थित किया है, उससे उसकी जिन्दगी के टूटे–बिखरे क्षण अचानक बहुमूल्य होकर उनके लिए संवेदनाओं का नया संसार रचने लगते

हैं । यह स्पष्ट है कि निर्मल वर्मा ने अपने उपन्यासों में सर्जनात्मकता को विशिष्ट स्थान देकर एक नया वातावरण खड़ा किया है ।

## (२) कथानक की विरलता :

निर्मल वर्मा एक ऐसे कथाकार रहे है जिन्होंने प्रेमचंद से प्राप्त कथानक के वे सारे सूत्र तोड़ दिये जो भारतीय परंपरा में स्वीकृत रहे हैं । इसे डॉ. नामवरसिंह कथानक का ह्रास स्वीकार करते हैं । डॉ. नामवरसिंह कहते हैं ''निर्मल वर्मा ने स्थूल यथार्थ की सीमापार करने की कोशिश की है । उन्होंने तात्कालिक वर्तमान का अतिक्रमण करना चाहा है.. यहाँ तक कि शब्द की अभेद दीवार को लाँधकर शब्द के पहले के मौन–जगत् में प्रवेश करने का भी प्रयत्न किया है । वहाँ जाकर प्रत्यक्ष इन्द्रियबोध के द्वारा पहलुओं के मूल रूप को पकड़ने का साहस दिखाया है ।''[९३] इसी तरह डॉ. धनंजय वर्मा ने उनकी कथात्मकता के बारे में लिखा है कि – ''उनमें दृश्य जगत की घटनाओं का स्थान, मनः जगत के द्वंद्व और चिंतन ने ले लिया है ।''[९४]

इन दृष्टिकोणों से निर्मल वर्मा के उपन्यासों की परख करें तो हम पाते हैं कि उनकी रचनाओं के पीछे वक्त से पूर्व एक अव्यक्त संसार फैलता चला आता है । जैसे – 'रात का रिपोर्टर' में कथानायक अपने घर की सीढ़ियाँ उतर रहा है और पाता है कि सीढ़ियों पर एक हल्की सी आहट होती है । कोई लड़की मिलने आयी है और वह उसे आगे बढ़ने का रास्ता दे देता है । लड़की उसके सामने खड़ी होकर किसी कागज पर हस्ताक्षर करवाना चाहती है जिसके परिणाम स्वरूप आंध्र में फाँसी की सजा पाये हुए तीन लड़के छूट जायेंगे । यहाँ पर लेखक कहता है – ''वह हताश होकर लड़की के पीले चेहरे और कंधे पर झूलते जूड़े को देखता रहा । जीने के आधे अँधेरे में हिंसा, हत्या और फाँसी पर बहस करना कितना निरर्थक था । मैं उस लड़की से छूटकारा पाना चाहता था । जैसे वह कोई मन का पाप हो, जिसे मैं फाउन्टेन पेन की स्याही में डूबो देना चाहता था ।''[९५] कथानक की दृष्टि से यह प्रसंग कोई बहुत विशिष्ट नहीं है कि आपके जीने पर एक लड़की खड़ी हो और आप उसके कागज पर हस्ताक्षर करने पर पाठकों के सामने कथा के

रूप में परोसे । उसके फैले हुए जूड़े को देखें और उसे अपने मन का पाप समझें । इसी प्रकार यह स्पष्ट है कि इस तरह का कथानक किसी साधारण पाठक को बाँध नहीं पायेगा । लेकिन उस लड़की के आने के पीछे उन तीन लड़कों का शोषण के विरुद्ध किया गया विद्रोह दूर छूटी हुई कथाधारा का एक ऐसा सिलसिला है जिसे लेखक उस लड़की की उपस्थिति से संपूर्ण रूप से चित्रित कर देता है और जिसे आलोचक कथाधारा के पार जाता हुआ कथानक के ह्रास की संज्ञा देते हैं ।

कथानक का यह ह्रास ही निर्मल वर्मा के कथ्य की विरलता है । जिसे उनके उपन्यासों में बहुत गहराई तक देखा जा सकता है । निमल वर्मा जैसे ही किसी पात्र की उपस्थिति से टकराते हैं, दूर तक फैली हुई उदासी के दृश्यबिम्ब सघन होकर कथाधारा में फैलने लगते हैं । और कथानक उनके बीच से इस तरह विलिन हो जाता है कि उसे ढूँढ़ना भी मुश्किल हो जाता है । यहाँ तक की निर्मल वर्मा इन दृश्य बिम्बों के बीच सहसा उपदेश भी देने लगते हैं और लगता है कि वे एक कथाकार नहीं उपदेशक हैं, जो अपनी मान्यताओं और स्थापनाओं को इन पात्रों के बहाने हमें बाँटकर चलता है । 'अंतिम अरण्य' में कथानायक अनुभव करता है कि – ''कैसी विचित्र बात है, सुखी दिनों में हमें अनिष्ट की छाया सबसे साफ दिखाई देती है, जैसे हमें विश्वास न हो कि हम सुख के लिए बने हैं । हम उसे छूते हुए भी डरते हैं कि कहीं हमारे स्पर्श से वह मैला न हो जाए और इस डर से उसे भी खो देते हैं, जो विधाता ने हमारे हिस्से के लिए रखा था । दुःख से बचना मुश्किल है, पर सुख को खो देना कितना आसान है – यह मैंने उन दिनों जाना था ।''[१६]

कथाकार का यह उपदेशक रूप उस समय का है जब मेहरा साहब पहाड़ी ढलानों पर उसके साथ टहल रहे है और टहलते हुए जोरो से हँसते हैं, उसके साथ मजाक करते हैं । यह स्पष्ट है कि जिन्दगी जीने के ये सूत्र लेखक को उस हँसी के पार दुःखों के असीम संसार से प्राप्त हुए हैं जो 'अंतिम अरण्य' के कथानक में कहीं नहीं हैं । लेकिन निर्मल वर्मा ऐसे ही

अपने पात्रों की कथनी कहते हैं । यह कथाहीनता ही उनके कथानक की विरलता प्रमाणित करती है ।

## (३) घटनाओं का विशिष्ट उपयोग :

निर्मल वर्मा जिस तरह घटनाओं का उपयोग करते हैं, उनके बारे में डॉ. रेखा शर्मा का कहना है – ''उनकी कृतियों में घटनाएँ आती हैं, लेकिन इतनी सरल और लयबद्ध गति में कि 'घटना घटी' यह ठोस अहसास नहीं होता । यहाँ अकस्मात कुछ नहीं घटा है, और असल में यह 'घटना' के बजाय 'होना' ज्यादा है । होने के साथ ही कुछ घटना है, जिससे 'होगा' यह उपन्यास में तीव्रतर बन गया है । इसीलिए यहाँ औपन्यासिक क्रिया बाहर के बजाय आंतरिक और मानसिक अधिक है ।''[१७] रेखा शर्मा पुनः कहती हैं – ''निर्मल का लक्ष्य मूल में विविध मनःस्थितियों को ही निरुपित करता है । घटना के समय भी घटना उतनी केन्द्र में नहीं रहती जितनी तद्जनित मनःस्थिति या भाव–बोध ।''[१८] इसी तरह देखा जाय तो निर्मल वर्मा का औपन्यासिक साहित्य अतीत की स्मृतियों का है । 'वे दिन' का इंदी, लाल टीन की छत की काया, 'एक चिथड़ा सुख' का मुन्नू सभी पात्र अतीत जीवी हैं । अपने इन पात्रों के माध्यम से निर्मल वर्मा ने कई घटनाओं को मात्र दृश्यों और बिम्बों में चित्रित करते हुए सुन्दर अभिव्यक्ति दी हैं ।

निर्मल वर्मा के उपन्यासों में घटनाओं के घटने या होने से भी आगे बढ़कर पलों के गुजरने का अनुभव होता है और उन पलों के बीच जैसे कोई सामने से गुजर जाता है, कोई हँस देता है, कोई उपस्थित होकर चुपचाप देखने लगता है । बाहर सितम्बर की धूप खिली हुई है, बारह गिरजे का घंटा बोलता है और ऐसा ही कुछ–कुछ होता चलता है जो इस प्रकृति, मौसम और समय की स्वाभाविक उपलब्धि है । उससे निर्मल वर्मा अपने लिए संवेदनाएँ चुनकर जीवन को एकतार में बाँधते चलते हैं । इसे घटना का होना न होना या मनःस्थितियों का भावबोध में परिवर्तित होना कहने की बजाय क्षणों से गुजरती हुई धारा से साक्षात्कार करना ज्यादा उचित कहा जा सकता है । जहाँ तक 'होगा' की आशंका है, उनके सारे पात्र इस 'होगा' से ही आक्रांत हैं और

जो हो चुकता है उसका उपयोग उस आनेवाले समय के लिए करते हैं । जैसे कहीं दूर आकाश में उनके लिए दुःखों का एक धारदार अस्त्र तैयार हो रहा हो, जो उन्हें कभी भी अस्तित्व विहीन कर देता है ।

अस्तित्व विहीनता के पूर्व की यह घटनाएँ लेखक को उस चिंतन के मोड़ पर खड़ा कर देती हैं जिससे वह जीवन के सूत्र खोजते हैं । इस रूप में क्षणों के बीच गुजरनेवाली स्वाभाविक स्थितियाँ उन्हें घटनाओं के उपयोग का एक और रूप प्रदान करते हैं ।

वैसे निर्मल वर्मा के उपन्यास 'लाल टीन की छत' में देखा जाय तो कई घटनाएँ हैं, जैसे गिन्नी की मौत, लामा का चला जाना, माँ का निर्जीव बच्चे को जन्म देना और काया का रजस्वाला होना, घटनाएँ तो ये सभी हैं, लेकिन एक बारह तेरह साल की लड़की पे गुजरती है और यह युवती होने पर उन सबको याद करती है तो वे अलग रूप में आती हैं ।

इसी तरह हम देख पाते हैं कि निर्मल वर्मा के उपन्यासों के पात्र अतीतजीवी होने के कारण भी इस पर घटनाओं का बहुत प्रभाव निरुपित हुआ है ।

## (४) आत्मकथात्मक रूप में कथा प्रवाह :

निर्मल वर्मा ने लंबी-लंबी कहानियाँ लिखी हैं और उनमें अपने को कथानायक के रूप में जगह-जगह उपस्थित किया है । शायद वह इसलिए पाठक की सच्चाई से परिचित हो सके कि दुःख-सुख के ये क्षण जो उनके बीच से गुजर रहे हैं, वे कल्पना में रचे गये कथानक मात्र नहीं हैं । वे लेखक की जिन्दगी का हिस्सा हैं और उसे कल्पित मानकर अस्वीकार नहीं किया जा सकता । निर्मल वर्मा अपने उपन्यासों के लेखन में आमतौर पर आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग करते हैं । उनके अधिकांश उपन्यास इसी शैली में लिखे गये हैं । इस शैली में लेखक स्वयं पात्र या भोक्ता होता है । वह जो कुछ अनुभव करता है, उसे पाठकों के सामने रखता है ।

निर्मल वर्मा ने अपने पाँच उपन्यासों में से लगभग चार उपन्यासों को आत्मकथात्मक शैली में लिखा है जिनमें कथा कहनेवाले पात्रों के नाम भी हैं

लेकिन वे नाम कथाधारा में बहुत कम और सांकेतिक ढ़ंग से ज्यादा सामने आये हैं । 'वे दिन' का कथानायक इंदी है लेकिन संपूर्ण कथा कथानायक ''मैं'' के आसपास चलती है । यहाँ तक कि उसे पुकारने वाले पात्र भी प्रायः 'तुम' कहकर संबोधित करते हैं । संपूर्ण उपन्यास में खोजने का प्रयत्न करें तो शायद दो–तीन जगह ही ऐसा मिलेगा जहाँ यह पहचान भी होती है, कि इस उपन्यास का कथानायक इंदी है । यहाँ पर यह स्पष्ट है कि लेखक इस उपन्यास में इंदी की जगह अपनी उपस्थिति ही प्रमुख रखना चाहता है । यहाँ पर हम देख सकते है कि लेखक ने आत्मकथात्मक शैली को पूरी तरह से निरुपित किया है ।

इसी तरह 'लाल टीन की छत' की नायिका काया जीवन के कितने ही मोड़ों से गुजरकर अपनी कहानी कहने बैठी है और कथा के अंत में यह स्वीकार करती है कि इस कथानक के बीच जो गुजर रहा था उसमें खामोशी से जीकर भी उसने पूरे परिवार को दुःख–सुख के बीच ईश्वर और आस्था से बाँधे रखा है । शायद यही एक परिवार की नियति है, जिसे यह जीता हुआ ईश्वर में समाहित हो जाता है । काया कहती है कि – ''वहाँ ईश्वर है – और एक बार ईश्वर के पास जाकर मैं उस पाप से छुटकारा पा सकती हूँ जो कायर और स्वार्थी लोगों के साथ चिपटा रहता है ।''[१९]

इसी तरह 'रात का रिपोर्टर' का 'वह' आत्मकथात्मक शैली में व्यक्त होता हुआ चलता है और उपन्यास में बहुत कम जगहों पर अपने 'रिशी' नाम के साथ प्रस्तुत होता है । शायद उन क्षणों में जब कोई गहरे एकांत में उसे पुकारता है या कोई ऐसी बात कहनी होती है, जो उसके अतिरिक्त किसी और को संबोधित नहीं हो सकती । जैसा कि – ''राय साहब की निगाहें अभी रिशी पर टिकी थी । वे आसपास कुछ टटोल रही थीं ।''[२०] ''रिशी धीरे बोलो तुम बच्चे नहीं हो और मैं तुम्हें बचानेवाला कौन होता हूँ ।''[२१] ''रिशी खुले दरवाजे के बाहर अँधेरे में देखने लगा, जो धीरे–धीरे रात के अलग होकर उसके भीतर घूम रहा था ।''[२२] इसके बाद रिशी अपने नाम की पहचान छोड़कर 'वह' संबोधन से उपन्यास में अपनी जगह लेने लगता है । जैसा कि

– ''वह इसी क्षण की प्रतीक्षा कर रहा था ।''[२३] ''वह सुन्न सा रहकर उसकी और देखता रहा ।''[२४]

''वह मुड़ गया । सड़के भी वीरान पड़ी थी । कहीं दूर से जलते हुए पत्तों की तीखी गंध हवा में तैरते हुए उसके पास आ रही थीं ।''[२५]

इसी तरह यह स्पष्ट है कि निर्मल वर्मा ''मैं'' को ''वह'' में बदलकर प्रायः नाम की पहचान से अलग हो जाते हैं । 'अंतिम अरण्य' की तो शुरुआत ही 'वह' और 'मैं' से होती है । जैसे – ''वह आ रहे हैं मैं उन्हें दूर से देख सकता हूँ । वह अब पेड़ों के झुरमुट से बाहर निकल आये हैं और पगडंडी के उस अंतिम सिरे पर चलने लगे हैं जो उन्हीं कॉटेज के पिछवाडे तक जाती हैं ।''[२६] इस तरह 'अंतिम अरण्य' की कहानी शुरु होती है, जिसमें समाचार पत्रों में विज्ञापन देखकर कथानायक 'मैं' मेहरा साहब की आत्मकथा लिखने जाता है । लिखते–लिखते पाता है कि मेहरा साहब जैसे उम्र के उस अंतिम सिरे पर सिर्फ उसके होकर रह गये हैं । जिनका अंतिम संस्कार करना उसकी सबसे बड़ी जिम्मेदारी है । यही कारण है कि एक दिन मेहरा साहब की अस्थियाँ लेकर वह दूर पहाड़ी नदी 'सर्पा' में प्रवाहित करने जाता है, और पाता है कि जैसे उसने जिन्दगी का बहुत बड़ा काम कर लिया है । जैसे – ''पानी में खड़ा मैं दूर तक जाता हुआ उन्हें देखता रहा और तब एक क्षण तक मुझे लगा जैसे मैं बहुत हल्का हो गया हूँ । मानो मेरा कोई हिस्सा भी उनके साथ बह गया हो । लौटते हुए सिर्फ उनकी आवाज सुनाई दे रहीं थीं । वे मेरे साथ–साथ चल रहीं थीं ।''[२७] इस प्रकार 'अंतिम अरण्य' की आत्मकथात्मकता पाठक को उस संवेदना में बाँध देती है, जिसमें कोई युवा अपने अभिन्न पूर्वज को नदी में सचमुच बहाकर लौट रहा हो । वास्तव में यह निर्मल वर्मा की कहीं खोई हुई एक कहानी भी हो सकती है, जिसे प्रगतिशीलता के मोह ने लम्बे समय के लिए भूला दिया हो और भारतीयता में लौटने पर वह कहानी जैसे फिर से उनके पास लौट आई हो । इसी प्रकार निर्मल वर्मा के सारे उपन्यासों में आत्मकथात्मक शैली उभरकर सामने आती है ।

## (५) सूक्ष्म सांकेतिकता :

निर्मल वर्मा के उपन्यासों का कथानक वास्तव में सांकेतिकता पर ही आधारित है । यह सांकेतिकता कहीं खामोशी से वातावरण को चित्रित करते हुए संवेदनाओं को व्यक्त करती है और कहीं उस खौफनाक वातावरण की सृष्टि करती है जो सहसा भयावह हो उठता है । उनके उपन्यासों की सांकेतिकता के बारे में डॉ. छाया मोहरीर का कहना है कि – ''निर्मल वर्मा के उपन्यासों में सूनेपन और अकेलेपन का चित्र हैं । वे इन भावों को गहराने के लिए वातावरण की शांतता का वर्णन करते हैं । टेलिफोन की घंटी, घड़ी की टिक–टिक सुनाई देना, साँसों की आवाज वातावरण के इस स्तब्धता को गहराने के संकेत हैं ।''[२८]

इसी तरह छाया मोहरीर पुनः कहती है कि – ''निर्मल वर्मा अपने उपन्यासों में भयावह वातावरण की उपस्थिति भी करते हैं । 'वे दिन' की भयावहता द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद की थी । लेकिन ' एक चिथड़ा सुख' में भयावहता को लाने के प्रयत्न में वह चित्रण रहस्यमय ज्यादा बन गया है ।''[२९] इस प्रकार डॉ. रेखा शर्मा का कथन है कि – ''निर्मल ठोस रूप में नहीं मानते । वे मानते हैं कि यथार्थ तो झाड़ी में दुबका रहता है, झाँककर जितना दिख सकें उतना ठीक । यही उनकी कृतियों में भी होता है, कोई ठोस चित्रण नहीं, संकेतों से जितना समझा जाय वह ठीक है ।''[३०] इसलिए यह स्पष्ट है कि निर्मलवर्मा अपने उपन्यासों में स्थूल यथार्थ की सीमा का अतिक्रमण करते हुए सूक्ष्म यथार्थ को चित्रित करते हैं । इस सूक्ष्म यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए वे सांकेतिकता का सहारा लेते हैं । शायद यही वजह है कि निर्मल वर्मा के सारे कथा–साहित्य में भी सांकेतिकता का काफी प्रयोग हुआ है ।

इसी तरह निर्मल वर्मा के कथा साहित्य का मूलाधार अंततः या सूक्ष्म सांकेतिकता ही ठहरती है । 'वे दिन' का कथानक अगर देखा जाय तो इतना ही है कि गर्मियों की छुट्टियों में प्राग में एक बेकार युवक को टूरीस्ट गाईड का काम मिलता है और वह इटली से आई हुई रायना रहमान को प्राग घुमाने ले जाता है । और एक दिन रायना अपने देश लौट जाती है और कथानायक

उस संबंध को झटक कर सहसा मुक्त हो जाता है । इस लंबी कथायात्रा के बीच अगर कोई घटना घटती तो इतना कि जाते–जाते कथानायक उससे प्रतिशोध की अवस्था में शरीर सुख प्राप्त करता है । लेकिन इस कथायात्रा के दौरान उनका बार–बार शहर से दूर पहाड़ी ढलानों पर दौड़ना–उतरना, खिल–खिलाना, गिरजे का घंटा बजना, बर्फ पड़ना, ठंड में ठिठुरना जैसे ढेर सारे संकेत हैं, जिनके माध्यम से वह रायना और कथानायक के बहाने उस देशकाल के युवकों की कहानी कहते हैं । जैसा कि – ''हम मॉनेस्टरी पीछेवाले मैदान पर चल रहे थे । शाम हो चली थी । दूर लेटना की पहाड़ी पर बर्फ का रंग बैगनी हो आया था ।''[३१] ''एक सफेद सा परदा आर–पार डोल जाता था । लगता था जैसे बहुत सी सीढिया एक साथ चारों ओर गूंज रहीं हैं ।''[३२] ''पगडंडी के अगले मोड़ पर पहुंचकर पहाड़ी खुल गई थी, और तब सहसा समुचा प्राग हमारे पैरों के नीचे चला आया था । हजारों रोशनियों से मिलमिलाता हुआ ।''[३३] यहाँ पर यह स्पष्ट है कि संकेत कथानायक के भीतर के रोमांच की सफलता की कहानी कहने का प्रयास कर रहे हैं, जिसके आसपास एक लंबी दिनचर्या का बोध किया जा सकता है ।

निर्मल वर्मा की यह सांकेतिकता उनके सारे उपन्यासों में इसी तरह ही देखी जा सकती है । जैसा कि यदि ''रात का रिपोर्टर'' को ले तो दो–चार संकेत बिम्बों का उदाहरण दिया जा सकता है । – ''सड़क अकेली और उजाड़ पड़ी थी । पीछे जंगल था – धीरे–धीरे सितम्बर की हवा में सरसराता हुआ ।''[३४] ''वह हाँफता हुआ पीपल के छतनार तले खड़ा हो गया । जेब से रुमाल निकालकर पसीना पोंछा जो गर्दन से टपकता हुआ उसके कालर पर छू रहा था ।''[३५] ''बेर की झाड़ियाँ, वह उनके बीच बैठा था । उसे लगा, वह झाँड़ियों को जरा सा खोलेगा और भीतर से बीती सर्दिया और बिंदू का चेहरा, दोनों बाहर निकल आयेंगे ।[३६] इसी तरह निर्मल वर्मा ने सभी जगह संकेतों का सहारा लिया है और उसी के माध्यम से सारी बातें कह दी हैं, क्योंकि वर्णन तो उन्हें इष्ट है ही नहीं । 'एक चिथड़ा सुख' में हमें मुन्नू के कई कथनों से बिट्टी और डैरी के या इरा और नितीभाई के बारे में संकेत मिलते है । वैसे

ही ''लाल टीन की छत'' में भी गिन्नी की मौत और काया के रजस्वला होने की घटनाओं को वे बहुत ही सुन्दर संकेतों से बता देते हैं । 'छुटकारा' और ईश्वर के पास पहुँचकर उसके परे निकल जाना काया के रजस्वला होने के संकेत हैं ।

इसी प्रकार 'रात का रिपोर्टर' में आपातकाल में बुद्धिजीवियों के प्रति सरकार के दमन के पीछे उठनेवाली आशंका को लिए रिशी हर-जगह घूम रहा है । सरकार उसके पीछे नहीं भी हो, लेकिन वह अपने ही चक्रव्यूह में फँसा हुआ भयानक आशंकाओं के बीच दौड़ता रहता है । जिसे लेखक ने जगह-जगह संकेतों से उभारा है । यह संकेत ही निर्मल वर्मा के कथानक का सबसे बड़ा आधार है ।

यह स्पष्ट है कि निर्मल वर्मा अपने उपन्यासों में सांकेतिकता का अत्यधिक उपयोग करते हैं । चरित्रों के बारे में कहना हो तब भी और घटनाओं को बताना हो तब भी, निर्मल वर्मा सिर्फ संकेत देकर छोड़ देते हैं । निर्मल वर्मा ठोस निरूपण में नहीं मानते । वे मानते हैं कि यथार्थ तो झाड़ी में दुबका रहता है, झाँककर जितना दिख सके उतना ठीक । यही उनके उपन्यासों में भी होता है, कोई ठोस चित्रण नहीं, संकेतों से जितना समझा जाए वह ठीक है और यही उनकी भाषा की कलात्मकता है ।

वास्तव में निर्मल वर्मा का संपूर्ण शिल्पगत वैशिष्ट्य एक ऐसी सर्जना का परिणाम है, जिसमें सर्जन की अपनी ही मौलिकता और विशेषण है, जिसमें कथानक और घटनाएँ नाम-मात्र को आती हैं । और आत्मकथात्मक ढ़ंग से आगे बढ़ती हुई कथाधार में संकेतों का पर्याप्त विवरण मिलता है । यहाँ तक कि इन विवरणों के आधार पर कहीं-कहीं इस बात का भी अनुभव होने लगता है कि जैसे हम उपन्यास की कहानी नहीं किसी ललित निबंध से गुजर रहे हैं, जिसमें रची गई वैचारिकता के आसपास वातावरण के बिम्ब और सूक्ष्म संकेत लालित्य उपस्थित कर रहें हैं । यह लालित्य कितना धनीभूत है कि पाठक के भीतर ऊब पैदा करने लगता है । मगर लेखक ने अपनी रचनात्मक आधार के लिए जिस दुनिया का सूत्रपात किया है, वह दुनिया प्रबुद्ध पाठकों

की दुनिया है । उसमें सर्जन के लिए एक खुला हुआ आकाश अपनी उपलब्धियों से परिपूर्ण है । वास्तव में निर्मल वर्मा की सारी चिंतनधारा ही सांकेतिक है जो उनके कथा–साहित्य में भी व्यक्त हुई हैं ।

## ❀ निर्मल वर्मा के उपन्यासों में भाषागत वैशिष्ट्य :

कोई भी लेखक अपनी रचना में जो भी सर्जनात्मक वैशिष्ट्य उपस्थित करता है, उसके पीछे उसकी भाषा का चुनाव और रचाव प्रमुख रहता है । भाषा हमारे विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम है । प्रत्येक युग की रचना को माध्यम के इस अनवरत परिशोधन व संस्कार के प्रति सचेत होना पड़ता है किन्तु आज इस विषय में जितनी सतर्कता का आग्रह दीख पड़ता है उतना पहले कभी नहीं था । हर रचनाकार को अपने अनुकूल भाषा का चयन करता है । यही कारण है कि एक ही काल के दो लेखकों की भाषा भी अलग–अलग हो सकती है । भाषा का यही अंतर उन लेखकों की पहचान है ।

निर्मल वर्मा ने अपनी कृतियों में देशी–विदेशी शब्दों का वह उपयोग किया है, जो एक ओर हमें शब्दों की छायावादी शैली से जोड़ता है तो दूसरी ओर विदेशी शब्दों की चमक देकर उसके साहित्य को इस देश की धारा से बाहर निकालकर आगे ले आता है । कभी भारतीयता में लौटकर वे ऐसे साधारण शब्दों का आयोग कर बैठते हैं, जिन्हें देखकर लगता है कि लेखक को अपनी शैली में उतना नीचे क्यों उतरना चाहिए ? लेकिन निर्मल वर्मा की रचना यात्रा में यह स्वीकृत और अस्वीकृत शब्द ही चमत्कार उत्पन्न करते हैं इसलिए निर्मल वर्मा की भाषागत विशिष्टताओं को जानने के लिए उन शब्दों को जानना बहुत आवश्यक होगा । उस रचनात्मक यात्रा को जानना आवश्यक होगा, जिसमें संवेदनाएँ उपस्थित कर निर्मल वर्मा अपने पात्रों की कहानी कहते हैं ।

## (१) संवेदनशील गद्य :

निर्मल वर्मा के लेखन के बारे में उनके समकालिन लेखकों का मत है कि निर्मल वर्मा भाषा के धरातल पर अपने निजी मुहावरे की खोज करते हैं । राजेन्द्र यादव कहते हैं कि – ''भाषा के प्रति सबसे अधिक सजगता निर्मलजी में अपनी पीढ़ी में रही है, इसलिए उनके एक–एक वाक्य को उसी एकांत और एकाग्रता के साथ पढ़ना पड़ता है ।''[३७] निर्मलजी के गद्य के लिए मलयज ने लिखा है कि – ''संवेदना के अनुरूप निर्मल का गद्य है – धूप छाँही गद्य । वे चिलचिलाती धूप के लिये 'तितरी' धूप लिखते हैं । 'तितरी' शब्द में चमक तो है पर दाह नहीं है । यह गद्य स्मृति की कविता का गद्य है, वर्तमान की आँच में तपता सपाट मैदानी गद्य नहीं ।''[३८] और इसी तरह ध्रुव शुक्ल ने कहा है कि – ''निर्मल वर्मा हिन्दी के प्रथम गद्य कवि हैं ।''[३९] यह सच है कि निर्मल वर्मा एक एसे कथाकार हैं जिनका गद्य बहुत संवेदनशील गद्य है । वे अपने गद्य को अपने ही रचे शब्दों के माध्यम से अपने पात्रों के संसार में ले जाते हैं और उसे उनकी उपस्थिति से संपूर्ण करते हैं । जिसमें काव्य का लालित्य है तो निबंधों की वह वैचारिकता भी, जो किसी ठोस दार्शनिक की सोच से निकला हो । लेकिन निर्मल वर्मा अंततः कथाकार हैं । इसलिए वे बार–बार कथानक में लौट आते हैं और अपने गद्य को अपने पात्रों की दुनिया में समेट लेते हैं ।

लेकिन यह स्पष्ट है कि जब भी उनको कथानक से गुजरना होता है, तब हम पाते हैं कि निर्मल वर्मा अपने–अनुभवों उपदेशों और संवेदनाओं के धागे पकड़कर कथा से बहुत दूर चले जाते हैं । इसी स्तर पर पहुँचकर पाठक को लग सकता है कि वह एक उपन्यास से गुजर नहीं पा रहा है । और धीरे–धीरे निर्मल वर्मा के कथाकथन की सीमाओं की आदत हो जायेंगी और वह कथानक से आगे बढ़कर लेखक के उस स्वभाव से साक्षात्कार करने और उसे सँजोने के लिए अपने को तैयार कर लेता है ।

लेखक के इस स्वभाव को उनकी कृतियों में निम्नलिखित ढ़ंग से देखा जा सकता है । उनके उपन्यास 'अंतिम अरण्य' में – ''कच्ची रोशनी में भिगा

हुआ दिन जब कोई अपना शहर छोड़कर चला जाता है तो मौसम पहले जैसा नहीं रहता, अभाव सा रिस्ता रहता है.. मैं चलता–चलता रुक जाता जैसे कोई पीछे आ रहा है, पीछे मूड़कर देखता तो जानी–पहचानी इमारतें मुझे अपने पीछे आती दिखाई देती ... मैं रुक जाता तो वे भी रुक जाती, अपनी खिड़कियों के पीछे से मुझे घिरती हुई ।"[४०] "चीड़ की पीली, पकी सोईयाँ, हवा में बहते हुए एक कब्र से दूसरी तक उड़ जाती थीं । मैं कुछ देर वहीं किसी अनाम पत्थर के उपर उसी भांति घास पर बैठा रहा, शहर को सुनता रहा । वह किसी पाताल लोक से उठता हुआ उपर आ रहा था ।"[४१]

यहाँ यह स्पष्ट है कि जब कोई नागरिक वर्षो तक अपने जिये गये शहर को छोड़कर किसी और शहर में जायेगा तो उस पीछले शहरों में जिये गये दिन, महिने और वर्ष, शहर के लोग, संबंधी और घटनाएँ उसका पीछा करेंगी । हो सकता है दूसरा शहर उसे पसंद ही न आये और वह अपने पुराने शहर में लौटने को विवश हो जाये । इन सारी स्थितियों से गुजरते हुए कथाकार उन गुजरते हुए दिनों, बरसों के नजदीक आनेवाले पात्रों की कहानी कह सकता था । उनके जीवन के एक–एक पल को अंकित कर सकता था । और शायद यह उपन्यास कुछ और रुचिकर हो जाता है । यह भी हो सकता था कि यह बहुत बोझिल हो जाता । लेकिन उन दोनों स्थितियों से बचते हुए लेखक ने केवल संवेदनाओं का सहारा लेकर उस भरपूर कथानक को शहर और इमारतों के द्वारा इस तरह व्यक्त कर दिया है जैसे कथानायक इस शहर में जाकर भी इसे कभी अपने से अलग नहीं कर पायेगा ।

इसी तरह चीड़ के संदर्भ से किसी अनाम पत्थर पर बैठा हुआ कथानायक निःशब्द अपने शहर को सुन रहा है । और पाता है कि शहर किसी पाताल लोक से उठकर उसके पास आ रहा है । जाहिर है कि शहर उसके लिए एक ऐसा सच है जो अपनी रोज–रोज की घटनाओं और दिनचर्याओं के हजारों रंग रूप के साथ उसे अभिन्न रूप से स्वयं में लपेटता जा रहा है । वह हजारों घटनाओं और संवेदनाओं में लिपट रहा है । फिर ऐसे में वह किसी एक घटना या कथानक पर क्यों ऊँगली रखें । इन

घटनाओं के पार जो अपनेपन की संवेदना है, उसे लेखक ने बहुत कम शब्दों में पाठकों के सामने खोलकर रख दिया ।

निर्मल वर्मा के गद्य की यह संवेदनशीलता उनके सारे उपन्यासों में दिखाई देती है । यही गद्य 'वे दिन' के इंदी के आसपास घुमता है । यही गद्य 'रात का रिपोर्टर' में रिशी के आसपास है, यही गद्य 'एक चिथड़ा सुख' में बिट्टी से साक्षात्कार करता है और यहीं गद्य रिशी को उस भयानक स्थिति के बीच सुदूर बस्तर के उस वातावरण में लौटा ले जाता है, जहाँ उसे आदिवासियों ढ़ोल और मृदंग की आवाज सुनाई देती है ।

यहाँ यह स्पष्ट होता है कि कुछ लोगों की दृष्टि में भाषा सिर्फ माध्यम होती है लेकिन निर्मल वर्मा जैसे संवेदनशील रचनाकार के लिए यह केवल माध्यम ही नहीं है, बल्कि इससे कहीं अधिक है, शायद इसीलिए निर्मल ठीक कवियों की भाँति शब्द के अर्थ को लेकर चिन्तित रहते हैं । शब्दों को वे कविता की ही भाँति उपन्यासों के लिए भी आवश्यक मानते हैं । इसी तरह निर्मल वर्मा का गद्य संवेदनाओं के जिस उतार–चढ़ाव का परिणाम है, उसमें गद्य के आस–पास चलता हुआ सूत्र तिरोहित हो जाता है । और बच जाता है जिन्दगी का एक शाश्वत मर्म ।

## (२) लयात्मकता :

निर्मल वर्मा के गद्य की सबसे बड़ी विशेषता है उसकी लयात्मकता । जैसे कविता की एक लय होती है, और यह लय सामान्य पाठक को एक सीधे–सादे कथन के विपरीत अपनी चमत्कृति से मोह लेती है । निर्मल वर्मा अपनी लय से पाठकों को चमत्कृत करते हुए उन्हें अपनी प्रबुद्ध शैली में उतार लेते हैं । यहाँ तक कि उनकी रचनाओं में फैली हुई उदासी आगे बढ़कर रोशनियों और नीले आलोक में खत्म होती है । उनकी इस लयात्मकता का ही परिणाम है कि जिन्दगी के अनेक दुःखों से होकर भी उनके पात्र अंततः उन सुखों की ओर लौट जाते हैं, जो निरंतर दुःख सहने की परिणीति होती है । और उसके सामने ऐसे कोई संदर्भ खड़े हो जाते हैं तो उन्हें जीने की शक्ति देते हैं ।

निर्मल वर्मा की यह लयात्मकता कई कोनों से दिखाई देती है । जहाँ वह भयानक दुःखों में हो, जहाँ वह सुख का एक टुकड़ा जी रहा हो और जहाँ मौसम का अनंत विस्तार फैला हो । इन तीनों के माध्यम से लेखक अवसर लगते ही शब्दों की लय का एक ऐसा संसार उपस्थित करता है कि उससे होकर न केवल पाठक सुखानुभूति करता है, बल्कि लगातार दुःख और निराशा में जीनेवाला वह पात्र भी अंततः सुख की मंजिल प्राप्त कर लेता है । सुखानुभूत के वह उदाहरण निम्नलिखित संदर्भों में देखा जा सकता है । – ‘‘मैं उन्हें देख रहा था, दाढ़ी के बाल कुछ और सफेद हो गये थे, गले के नीचे माँस की सलवटें और फैल गई जान पड़ती । पर आँखों में एक अजीब सी जीवंतता थीं, जैसे भूतलियों की राख के भीतर कोई ज्वर की चिनगारीयां बची रह जाती ।’’[४२]

यह स्पष्ट है कि यहाँ पर मेहरा साहब धीरे–धीरे उम्र के अंतिम दोर पर पहुँच रहे हैं । यहाँ तक कि वे मृत्यु के बहुत निकट हैं । लेकिन जहाँ वे खड़े हैं वहाँ से मृत्यु का एक लम्बा फाँसला है । लेकिन उस फाँसले को लेकर अपने शब्दों की लय बाँधकर बहुत कम शब्दों में वहाँ तक पहुँचता है । लेकिन तब भी उससे राख के भीतर एक चिनगारी के बचे रहने की सुखानुभूति दे जाता है । यह सुखानुभूति पाठक की सबसे बड़ी उपलब्धि है । कोई और लेखक होता तो इस संदर्भ में मृत्यु की ओर बढ़ते मेहरा साहब के वर्तमान को कहीं भूत–भविष्य की घटनाओं में ले जाकर कथानक का अनंत विस्तार दे सकता था । लेकिन निर्मल वर्मा इन शब्दों का लयात्मक रचाव जिन सीमित शब्दों में, जिस संवेदना से इन क्षणों में सच्चाई निचोड़ लेता है, वह स्वयं में बहुत ही महत्त्वपूर्ण है । इसी तरह ‘एक चिथड़ा सुख’ की बिट्टी, डैरी भाई के साथ हाथ पकड़कर दौड़ रही है, और उसे लगता है कि जैसे वह बिट्टी नहीं प्रागैतिहासिक काल से भागती हुई कोई पात्र हो । जैसा कि – ‘‘वे भागने लगे... नुमायश के चमकीले अँधेरे में, मरियल घावों के आगे, जहाँ बौने की गुफा थी प्रागैतिहासिक अँधेरे में डूबी हुई ।’’[४३] यहाँ यह स्पष्ट है कि प्रागैतिहासिक अँधेरे में सब कुछ छोड़कर बिट्टी का डैरी भाई के साथ दौड़ना

उस लय को जन्म देता है, जो उसे वर्तमान के खोखले संदर्भो से बहुत दूर ले जा रही है ।

वस्तुतः निर्मलवर्मा के शब्द संसार में शब्दों का यह चयन और उससे रची गई यह लय ही प्रमुख है, जो चंद शब्दों में भूत–भविष्य से होती हुई एक व्यापक दुनिया तक दौड़ जाती है ।

## (३) उपन्यासों में प्रयुक्त शब्द–समूह :

निर्मल वर्मा की भाषा एक जीवंत व्यक्ति की भाषा है । इस भाषा में जीवन के अनुभवों की उत्कट साझेदारी है । निर्मल वर्मा भाषा के शुद्धतावादी आग्रह से पूरी तरह मुक्त हैं । वे अपने उपन्यासों में कथ्य के अनुरूप भाषा का प्रयोग करते हैं । अन्य कथाकारों की तरह वे अंग्रेजी, उर्दू शब्दों से परहेज नहीं करते । वे उस भाषा का प्रयोग करते हैं जिसमें आम हिन्दुस्तानी सहजता से अपनी अभिव्यक्ति करता है । इसी कारण उनकी भाषा में हिन्दी के अलावा अंग्रेजी, उर्दू तथा संस्कृत शब्द भी मौजूद मिलते हैं ।

निर्मल वर्मा ने अपने उपन्यासों में देशकाल के अनुरुप शब्दों का चयन किया है । वे कभी संस्कृत की तत्सम् शब्दावली का उपयोग करते हुए कविता के बोध से सम्पन्न भाषा देते है और कभी अंग्रेजी शब्दों के उपयोग से उसे आधुनिक बना देते हैं । साथ ही उर्दू शब्द और बोलचाल के शब्द देकर एक एसी विचित्रता खड़ी करते है कि सहसा समझने में मुश्किल हो जाता है कि निर्मल वर्मा की भाषा का मूल आधार क्या है ? वे एक भारतीय लेखक हैं ? अथवा विदेशी लेखक हैं ? और यदि वे विदेशी लेखक हैं तो उनकी भाषा में उर्दू और बोलचाल के गँवारु शब्दों का उपयोग क्यों हैं । जो भी हो निर्मल वर्मा की भाषा को समझने के लिए उनके शब्द चयन पर दृष्टि डालना तर्क संगत होगा ।

### *(i) अंग्रेजी शब्द :*

निर्मल वर्मा एक लम्बे समय तक विदेश में रहे हैं । ऐसे में यह अनायास नहीं है कि उनकी भाषा में अंग्रेजी शब्दों का बहुतायत से प्रयोग

मिलता है । अंग्रेजी के ऐसे शब्दों का जो आम बोलचाल की भाषा में प्रयुक्त होते हैं निर्मल के पात्र सहजता से प्रयोग करते हैं । निर्मल वर्मा अपनी रचनाओं में मुक्तहस्त से अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करते हैं । आम–आदमी की बोल–चाल में प्रयुक्त होनेवाले शब्दों का वे उपन्यासों में सहजता से प्रयोग करते हैं । उनके उपन्यासों में अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार है ।

| पृष्ठ | |
|---|---|
| | 'वे दिन' |
| १० | डाइनिंग हॉल, क्रिसमस, टूरिस्ट, एजेन्सी, टैक्सी, |
| ११ | रिसीवर, टेलीफोन, प्राइवेट, किचन, |
| २४ | ओवर कोट, रुमटेट, पेलीकान । |
| १०० | टोयलेट, कान्ट्रासेन्टिव्ज, कॉरीडोर, हीटर, अण्डरवियर, होटल |
| | 'लाल टीन की छत' |
| ६ | सूटकेस, गेट, लेटर बोक्स |
| १८ | हियरोक्लिप |
| २० | ड्रोइंगरुम |
| २३ | केफ, बिस्कुट |
| ६० | समर, हिल, स्टेशन |
| १२६ | बैटरी, टोर्च, क्लासरुम, बेंच, चोक सिमिट्री |
| | 'एक चिथड़ा सुख' |
| ६ | टाइम, स्टूडियो, रिहर्सल, स्टूल |
| २५ | ड्रामा, ब्राउन, हैड लाईट, स्वेटर |
| २७ | अल्मूनियम, फाईल, बिल्डिंग, टेफिक, लाईट |
| ३६ | सिग्नल, आर्किटेक्ट्स, फैशन |
| ६६ | थियेटर, पार्ट, विंग, ओडिटोरियम |
| १४३ | पेटिंग, पेनल |
| १६३ | नीग्डो, स्टेज, क्यूबिकल, फुटलाईटस |

इसी तरह निमल वर्मा के उपन्यासों को देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उनके उपन्यासों में अंग्रेजी शब्दों का ज्यादातर प्रयोग हुआ है । निर्मल वर्मा का यह अंगेजी शब्द प्रयोग बोझिल नहीं लगता परंतु वे पाठक की संवेदना को छूते हैं और उस पर गहरा प्रभाव छोड़ते हैं । इसी कारण ही अंग्रेजी शब्द उनके उपन्यासों में ज्यादातर आये हैं ।

### *(ii) अंग्रेजी वाक्य :*

निर्मल वर्मा के उपन्यासों में न केवल अंग्रेजी शब्द, अपितु, पूरे के पूरे अंग्रेजी वाक्यों का भी प्रयोग हुआ है । उनके उपन्यासों में से हम कुछ उदाहरण देख सकते हैं ।

| पृष्ठ | |
|---|---|
| | ‘वे दिन’ |
| ६ | रुम नंबर १३... यू हेव टेलीफोन, वी शैल पे फॉई इट । |
| ६३ | नोट ईवन फोर लव । पीस किल्ड इट... इट फिल्ड अस । |
| १३ | विजिट प्राग, द सिटी ऑफ योर ड्रीम्स । |
| २५ | द गोल्डन सिटी.. द सिटी ऑफ हण्ड्रेड टॉवर्स... द सिटी ऑफ टियस एण्ड नाइट मेयर्स । |
| ११६ | इट इज समथिंग डार्क एण्ड डीच |
| | ‘लाल टीन की छत’ |
| १६ | डांट वरी, शी विल बि ऑल राइट शी बिल बि फाइन । |
| २० | फूल्स, दे आर हियर एट लास्ट ! दे आर बेक अगेन । |
| २२ | यू आर स्टिल हियर ? |
| | ‘एक चिथड़ा सुख’ |
| १० | लेट अस गो टु द कजिन्स । |
| १६ | दे मैमोयर्स ऑफ ए मिशनरी, ***Last Night the Panther Came...*** |
| ४५ | सिस्टठर ऐट होम । |
| ६७ | ***The Wods decay and the woods decay*** |

| | |
|---|---|
| ११६ | ***Donţ touch me, donţ you ever dare to touch me.*** ***gat out, yet out of this place, get out.*** |
| ‘रात का रिपोर्टर’ | |
| १४ | ***Should they at all bother about us..*** |
| ‘अंतिम अरण्य’ | |
| १० | प्लीज डोंट डिस्टर्ब । |
| २४ | ***Please come this evening a surprise is waiting for you*** |
| ३४ | वॉटर ऑफ लाइफ |
| ६३ | ***Confessions of a country priest*** |

इसलिए हम देख पाते हैं कि निर्मल वर्मा ने अपने सारे उपन्यासों में अंग्रेजी शब्दों के साथ–साथ अंग्रेजी वाक्यों का प्रयोग भी किया है । उनके कई पात्रों के नाम भी अंग्रेजी में दिया गया है । अर्थात् निर्मल वर्मा का अंग्रेजी शब्द प्रयोग बोझिल नहीं लगते वरन् वे पाठक की संवेदना के छूते हैं और उस पर गहरा प्रभाव छोड़ते हैं ।

### *(iii) अंग्रेजी शब्दों का हिन्दी करण :*

निर्मल वर्मा ने केवल अंग्रेजी शब्दों और वाक्यों का ही उपयोग नहीं किया है, लेकिन उनके साथ–साथ कई अंग्रेजी शब्दों को हिन्दी में लेकर उन्हें हिन्दी के व्याकरण के अनुसार तोड़ मरोड़कर अपने उपन्यासों में प्रयुक्त किया है । निर्मलजी ने अंग्रेजी शब्दों को हिन्दी लिपि में ही नहीं लिखा, अपितु हिन्दी कारक चिन्हों का योग कर नये शब्द भी बनाये हैं । ये शब्द व्यवहार में प्रचलित है । अधिकतर शब्द बहुवचन से संबंधित है, जिनमें अंग्रेजी के एक वचन शब्द को हिन्दी के बहुवचन बनाया गया है । ऐसे शब्द उनके उपन्यासों में से निम्नलिखित रूप से देखा जा सकता है –

| *पृष्ठ* | *शब्द* | *पृष्ठ* | *शब्द* |
|---|---|---|---|
| ‘वे दिन’ | | | |
| १६७ | लाईन | ११३ | क्रिसमसइव |

| | | | |
|---|---|---|---|
| २१२ | स्लाइसें | ११३ | कॉरीडौर |
| २१७ | फाइलें | ११३ | ओवरफोटो |
| २१७ | टूरिस्टों | ११३ | स्पीड |
| ११२ | केबिन | ११५ | डेट |
| | 'एक चिथड़ा सुख' | | |
| २७ | फायरब्रिगेड | ३६ | रेडिकल |
| २७ | स्टेटमेन्स | ४६ | ऑडिटोरियम |
| २७ | स्ट्रेफिकलाईट | ५१ | स्टेज |
| | 'रात का रिपोर्टर' | | |
| १४ | स्टार्ट | १७ | फ्रिज |
| १४ | टेलिफोन बुथ | ११५ | टाई |
| १४ | हेन्डल | ११५ | एरियलपोल्स |
| १५ | स्कर्ट | ११७ | ट्रैल |
| १६ | प्राईवेट | | |
| | 'लाल टीन की छत' | | |
| ६ | सूटकेश | २३ | कमोड |
| १० | लेटरबोक्स | ३२ | एननडेल |
| १६ | बुलेटीन | ५४ | लौअर |
| २० | केक | | |
| | 'अंतिम अरण्य' | | |
| १७ | वर्ड एटलस | ३६ | डिटेक्टिव |
| २० | फाइले | ४२ | विट्गेन्शटाइन |
| २० | टेलिग्राम | ४३ | फेयरी टेल |
| ३० | गर्वनेस | ४३ | किपलिंग |
| ३३ | फायरलेंस | ४३ | जंगल स्टोरीज |
| ३६ | क्लब | | |

उपर्युक्त शब्दों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इनमें कई शब्द ऐसे हैं जिन्हें अंग्रेजी संस्कृति से भारतीयता में अपने मूलरूप में ही स्वीकार किया जा सकता है । उनका शब्दांतर नहीं किया जा सकता । फिर भी यह सच है कि इन शब्दों का प्रयोग निर्मलवर्मा जिस तरह सिल–सिलेवार करते हैं, उससे अंग्रेजी शब्दों के प्रति उनका मोह स्पष्ट दिखाई देता है । यहाँ तक कि लगता है – जैसे वह अपने पाठको को अपने कथापरिवेश की अभिजात्य दुनिया का बोध कराना चाहते हैं । यहाँ यर स्पष्ट है कि यह दुनिया जनसामान्य की दुनिया नहीं रह जाती और लेखक कुछ विशिष्ट केन्द्रित करने का प्रयास करने लगता है ।

### *(iv) संस्कृतनिष्ठ शब्दावली :*

निर्मल वर्मा ने अपने उपन्यासों में अंग्रेजी शब्दों का उपयोग करते हुए भी संस्कृत निष्ठ शब्दावली का उपयोग भी किया है । यहाँ तक की ये जिन शब्दों को बोलचाल की सरल भाषा में ले सकते थे, उन्हें संस्कृतनिष्ठा रूप देकर वे अंग्रेजी के माध्यम से जिस तरह अभिजात्य दुनिया खड़ी करते हैं, संस्कृतनिष्ठ शब्दावली से उनका आभिजात्य और बढ़ जाता है । उदाहरण के लिए निर्मल वर्मा के उपन्यासों में से संस्कृत शब्दावली को निम्नानुसार देखे जा सकते हैं ।

| पृष्ठ | शब्द | पृष्ठ | शब्द |
|---|---|---|---|
| ‘वे दिन’ | | | |
| ३४ | हास्यास्पद | १६१ | निश्च्छल |
| ४२ | अस्वाभाविक | १६७ | अनिवार्य |
| ६० | व्यावसायिक | २०५ | निस्तब्ध |
| १२४ | उज्जवल | २१५ | पूर्ववत् |
| १३७ | नीरवता | २२० | क्षमाप्रार्थी |
| १४४ | उत्सुकता | २२७ | अवसन्न |
| १६० | अत्यंत | २३० | निरीह |
| ‘एक चिथड़ा सुख’ | | | |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ४१ | आग्रह | ५० | आक्रोश |
| ४६ | मूर्च्छित | ५१ | उत्तेजित |
| ४७ | गोपनीय | १३७ | सान्त्वना |
| 'लाल टीन की छत' | | | |
| ४१ | अवसन्न | ६२ | आमंत्रण |
| ४६ | मंत्रमुग्ध | ११५ | अविश्वसनीय |
| ७२ | फूफकार | १२१ | आतंकित |
| ७३ | विस्मयकारी | १२६ | सशंकित |
| ८४ | आत्मलिप्त | १५१ | प्रत्यंग |
| ८२ | निस्पंद | १६६ | कृतज्ञता |
| 'रात का रिपोर्टर' | | | |
| ३२ | ताप | ४३ | अनुमति |
| ३२ | गति | ४५ | प्रकाशमान |
| ३३ | पारलौकिक | ४८ | एकाग्र |
| ४२ | अधैर्य | ५३ | स्मारक |
| ४३ | प्रलोभन | ५३ | अप्रत्याशित |
| 'अंतिम अरण्य' | | | |
| १० | विगत | २०२ | वार्तालाप |
| १० | यातानापूर्ण | २०३ | प्राचीन |
| ११ | नीरव | २७५ | आदिम |
| १६ | मृत्यु | २७६ | अस्वस्थ |
| २०२ | ध्यानावस्थित | | |

यहाँ स्पष्ट होता है कि संस्कृत शब्दावली का उपयोग हिन्दी में उतना वर्जित नहीं है । लेकिन निर्मल वर्मा जैसे केवल के लिए बहुत अस्वाभाविक है कि जो व्यक्ति लगातार अंग्रेजी शब्दों के उपयोग से अपना अभिजात्य साबित कर रहा हो, वह संस्कृत की इस भूमितक लौट आये ।

## (v) उर्दू शब्दावली :

निर्मल वर्मा के उपन्यासों में उर्दू शब्दों की भी भरमार है । यहाँ तक की उर्दू भाषा के लिए जो शब्द वर्जित हो उठे होंगे, निर्मल वर्मा उन शब्दों का भी पूरा उपयोग करते हैं । उदाहरण के लिए उनके उपन्यासों में निम्नलिखित शब्द देखे जा सकते हैं ।

| पृष्ठ | शब्द | पृष्ठ | शब्द |
|---|---|---|---|
| | 'वे दिन' | | |
| ६ | अखबार | २० | इमारत |
| १० | मंजिल | २१ | दस्तखत |
| १३ | मुक्त | २३ | अफवाह |
| १७ | अजीब | २५ | जुर्माने |
| १८ | तकलीफ | १२१ | महज |
| १६ | दफतर | १६५ | माफ |
| | 'लाल टीन की छत' | | |
| ११ | मुमकिन | ४३ | उम्मीद |
| १७ | अफसर | ४४ | लिफाफा |
| २० | खानाबदोश | ४८ | खजाना |
| २३ | किताबें | ६३ | पाबन्दी |
| २६ | दस्तक | १५३ | खुद–ब–खुद |
| ३८ | दहशत | १५६ | कब्र |
| | 'एक चिथड़ा सुख' | | |
| ६ | वक्त | २२ | निगाह |
| ६ | मजाक | २४ | बेहताशा |
| १० | खत्म | २४ | हमलावर |
| ११ | जिन्दा | ५१ | नुमायश |
| २० | आइने | ५१ | दिलचस्पी |

| 'रात का रिपोर्टर' | | | |
|---|---|---|---|
| १४ | मॉफ | ३५ | तकलिफे |
| १४ | परेशान | ४६ | गलतफॉम |
| १५ | इन्तजार | ४६ | मुसापुरजा |
| ३० | मुहलत | ३६ | रोशनदान |
| ३५ | जानवर | ४६ | मुश्किल |
| 'अंतिम अरण्य' | | | |
| १० | शक्की | २३ | मुसाफिर |
| ११ | पत्नी | २६ | कब्र |
| १६ | मंझिल | २७ | काग़ज |
| २० | खोफनाक | २६ | गुजरते हुए |
| २२ | शुरु | ३० | उम्र |

यहाँ यह स्पष्ट है कि सामान्य व्यक्ति की बोलचाल की भाषा में जगह पा गये उर्दू के शब्दों का प्रयोग निर्मल वर्मा के उपन्यासों में देखा जा सकता है । निर्मलजी के पात्र उर्दू के शब्दों का प्रयोग इतनी सहजता से करते हैं कि वे उर्दू–फारसी के शब्द न लगकर हिन्दी के जातीय शब्द–रूप–से लगते हैं । इन उर्दू शब्दों के प्रयोग से निर्मल वर्मा एक बार और चमत्कृत करते हैं और अपनी शब्द रचना की दुनिया विस्तृत करते हुए अपने पीछे एक सवाल छोड़ जाते हैं ।

## *(vi) बोलचाल की शब्दावली :*

यह बहुत आश्चर्याजनक है कि जहाँ एक ओर निर्मल वर्मा अंग्रेजी, संस्कत और उर्दू के शब्दों का अपने उपन्यासों में प्रयोग करते हैं, वहीं दूसरी ओर साधारण बोलचाल के शब्द उनकी रचनाओं में प्रचुरता से उपलब्ध हैं । ऐसा जनसाधारण के जीवन के नैकट्य के अभाव में संभव नहीं है । ऐसा भी नहीं है कि इन शब्दों का प्रयोग किसी फैशन के अंतर्गत हुआ है । बहुत से शब्द स्थितियों की माँग के अनुरूप हैं । ऐसे बोलचाल की शब्दावली

का उपयोग कर निर्मल वर्मा अपनी रचनात्मकता को स्थूल भारतीयता में ले आते हैं । उनका यह शब्द संयोजन निम्नानुसार ढ़ंग से देखा जा सकता है ।

| पृष्ठ | शब्द | पृष्ठ | शब्द |
|---|---|---|---|
| 'वे दिन' | | | |
| १२ | दूभर | १८४ | गड़हों |
| २० | मद्धिम | १८६ | सुर |
| १२६ | लौंदे | | |
| 'लाल टीन की छत' | | | |
| ११ | टोह में | ५६ | हक्की–बक्की |
| १३ | लौंदे सा | ८८ | लस्तम–पस्तम |
| ३३ | थिगली | १२६ | ढलान |
| ३५ | उबड़–खाबड़ | १४३ | बाट जोंट |
| ५२ | बैड़ौल | १५३ | ओंझल |
| ५६ | लहू लुहान | | |
| 'एक चिथड़ा सुख' | | | |
| १३ | रेंद | ४३ | मुँडेर |
| १६ | पाँवचे | ५० | लथपथ |
| २४ | गूदड | ६० | सुस्ताने |
| २६ | छीना–झपटी | ६५ | छटहरी |
| ३१ | झक्कड | ८४ | लबालब |
| ३७ | धुँधलका | १५४ | परनाले |
| 'रात का रिपोर्टर' | | | |
| १७ | टोहने | २६ | मकड़ी |
| १८ | कुल्लट | ३० | मुहलत |
| २२ | गुनगुनी | ३० | धब्बा |
| २४ | टीप | ३१ | पोटली |

| | | | |
|---|---|---|---|
| २७ | अधलेटा | | |
| 'अंतिम अरण्य' | | | |
| ५१ | खुरपी | ७१ | बूंदकिया |
| ५१ | फिरिच | ७४ | जोरिया |
| ६५ | दालान | ७५ | कोठरी |
| ६५ | अभागा | ८१ | जिमूर |
| ६७ | धागा | | |

इसी प्रकार निर्मल वर्मा के उपन्यासों में कई शब्द ऐसे हैं जिनका बातचीत और लेखन के बीच सुविधा से प्रयोग किया जाता है । लेकिन यहाँ यह स्पष्ट हैकि निर्मल वर्मा जैसे लेखक के लिए भाषा की इतनी निम्न सतह तक उतरना प्रश्नचिन्ह पैदा करता है । निर्मल वर्मा के उपन्यासों में साधारण बोलचाल के शब्दों में ऐसे शब्दों की संख्या बहुत है जो या तो तत्परता को सूचित करती है या जिनमें ध्वन्यात्मकता है । इन शब्दों का प्रयोग कथाकार की सूक्ष्म ऐन्द्रिय संवेदना का सूचक हैं ।

### *(vii) ध्वनियुक्त शब्द :*

निर्मल वर्मा की भाषा में कई ऐसे शब्द है जो वातावरण को ध्वनित करते हुए चलते हैं । यह ध्वनियुक्त शब्द निम्नलिखित रूप में देखे जा सकते हैं ।

| *पृष्ठ* | *शब्द* | *पृष्ठ* | *शब्द* |
|---|---|---|---|
| 'वे दिन' | | | |
| १४ | भुनभुनाती | ६६ | गड़गड़ाती |
| १५ | खरखराहट | ११६ | थपथपहट |
| १६ | डबड़बाई | १२३ | करकराती |
| २० | थरथराहट | १२७ | चरमराहट |
| २१ | खड़खड़ाहट | १६३ | खनखनाहट |
| २५ | झिलमिलाते | २०६ | मरमराती |

| 'लाल टीन की छत' | | | |
|---|---|---|---|
| १० | मिचमिचाती | ५१ | भड़भड़ाती |
| १८ | झिपझिपाती | ५८ | गुनगुनाहट |
| २० | फड़फड़ाहट | ८१ | झसझना |
| ३१ | कंपकंपाती | १०४ | छलछलाता |
| ३५ | झिंझोड़ना | १५१ | घड़घड़ाती |
| ४३ | छटपटाती | १६१ | सिर्र सिर्र |
| ४४ | सरसराहट | | |
| 'एक चिथड़ा सुख' | | | |
| १४ | भन्नाकर | ७३ | झक्कड़ |
| २६ | चकमकाहट | ७६ | चिलचिलाती |
| ३१ | धुरघुरा | ८६ | तिलमिलाती |
| ३६ | टिमटिमाती | १२० | गटपट |
| ५६ | फफकती | १३८ | गड़गड़ाहट |
| ६५ | सुलगती | १५२ | गुर्राहट |

इस प्रकार निर्मल वर्मा के उपन्यासों की तरह ही अन्य संग्रहों में भी ध्वनियुक्त शब्दों का प्रचुर प्रयोग हुआ है, जिससे वातावरण का सफल चित्रण हुआ है । प्रायः एक ध्वनिबिम्ब बनता है और अर्थग्रहण में सहायक होता है ।

### *(viii) शब्द प्रयोग में व्याकरणिक अशुध्धियाँ :*

निर्मल वर्मा के उपन्यासों में कतिपय शब्द ऐसे भी प्रयुक्त हुए हैं जो मानक हिन्दी की दृष्टि से न केवल अप्रचलित हैं अपितु व्याकरणिक दृष्टि से अशुद्ध भी हैं । निर्मल वर्मा ने अंग्रेजी और विदेशी शब्दों के प्रभाव से कुछ ऐसे शब्दों का भी प्रयोग किया है जो व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध माने जायें गे, किन्तु लेखक ने उनका उपयोग इसलिए किया है कि वह अपने रचनाकर्म को स्वतंत्र रूप में देखना चाहता है ।

उनके एक उपन्यास 'एक चिथड़ा सुख' के कुछ उदाहरणों को लेकर देखा जा सकता है कि वे जिस तरह शाब्दिक प्रयोग में स्वच्छंदता के कायल हैं ।

| *पृष्ठ* | *प्रयुक्त शब्द* | *वांछित शब्द* |
|---|---|---|
| ४५ | मेरी इंतजार | मेरा इंतजार |
| ६२ | टूटी | टोंटी |
| ७० | चंगुलभर | अंगुलभर |
| १०३ | करौंच | खरौंच |
| १०७ | पहिएये | पहिये |
| १४१ | गुसा | घुसा |
| १४२ | अपशगुन | अपशकुन |
| १४३ | दोहरी | देहरी |

### *(ix) शब्दशक्तियों का सर्जनात्मक उपयोग :*

निर्मल वर्मा ने शब्द शक्तियों का उपयोग एक विशिष्ट संदर्भ में किया है, जो उनकी भाषा को एक संपूर्णता देता है । भाषा में केवल शुद्धता अपेक्षित नहीं होती, मुख्य चीज है उसकी शक्ति । निर्मल वर्मा ने अपने उपन्यासों में कई जगह शब्द शक्तियों का उपयोग किया है । जिसे निम्न प्रकार से देखा जा सकता हैं ।

| पृष्ठ | |
|---|---|
| 'लाल टीन की छत' | |
| ११ | 'वे जड़ होकर लेटे रहें ।' |
| २० | 'खानाबदोश बाबू जो घर के न घाट के' |
| २१ | 'थाह पा ली' |
| २२ | 'उन्हें ताना दें' |
| ३३ | 'वह बादल फाड़कर थिगली लगा सकती है ।' |

| | |
|---|---|
| ३५ | ‘काया की नींद काफूर हो जाती’ |
| ५४ | ‘पत्थर की लकीर सा चमकता हैं ।’ |
| १०६ | ‘काया दंग रह गई’ |
| १०६ | ‘पहाड़ तुम्हें खाने दौड़ते है ।’ |
| १४३ | ‘बाट जोट रहीं थी ।’ |
| ‘एक चिथड़ा सुख’ | |
| ३३ | ‘कांटा सा कसकने लगा’ |
| ५८ | ‘धूल छानते’ |
| ६२ | ‘मैं मुड़ गया, उल्टे पाँव लौट गया’ |

इस प्रकार निर्मल वर्मा ने अपने उपन्यासों में शब्द शक्तियों का उपयोग करके अपनी भाषा को एक नविन सर्जनात्मकता देने का प्रयत्न किया हैं ।

## (४) मुहावरे और लाकोक्तियाँ :

निर्मल वर्मा ने अपने उपन्यासों में मुहावरे और लोकोक्तियों का खुलकर प्रयोग किया है । यहाँ तक कि सहसा आश्चर्य होता है कि रचना को इतनी नवीनता में देखनेवाला व्यक्ति एका-एक इतना पुरातन कैसे हो सकता है । लेकिन निर्मल वर्मा न केवल मुहावरों और लोकोक्तियों के धरातल पर पुराने हो जाते हैं, बल्कि इसके पुराने रूप को वे नये संदर्भों में रचते हैं । उनका यह स्थान निम्नलिखित बिंदुओं पर देखा जा सकता है ।

| पृष्ठ | |
|---|---|
| ‘लाल टीन की छत’ | |
| ११ | ‘वे जड़ होकर लेटे रहें ।’ |
| २० | ‘खानाबदोश बाबू जो घर के न घाट के’ |
| २१ | ’थाह पा ली’ |
| २२ | ‘उन्हें ताना दें’ |
| २८ | ‘उसका चेहरा अचानक पीला पड़ गया’ |
| ३३ | ‘वह बादल फाड़कर थिगली लगा सकती है ।’ |

| | |
|---|---|
| ३५ | 'काया की नींद काफूर हो जाती' |
| ५४ | 'पत्थर की लकीर सा चमकता हैं ।' |
| ६२ | 'काया दंग रह गई' |
| १०६ | 'पहाड़ तुम्हें खाने दौड़ते हैं ।' |
| १४३ | 'बाट जोट रहीं थी ।' |
| 'लक चिथड़ा सुख' | |
| ३३ | 'कांटा सा कसकने लगा' |
| ५८ | 'धूल छानते' |
| ६२ | 'मैं मुड़ गया, उल्टे पाँव लौट गया' |
| १२३ | 'बाट जोट रहीं थी ।' |

वास्तव में निर्मल वर्मा के संपूर्ण लेखन का आधार ही उनके द्वारा साहित्य में रचा गया वह मुहावरा है, जो उन्हें समकालिन दुनिया के सामने एक सर्वाधिक आधुनिक लेखक के रूप में खड़ा करता है । निर्मल वर्मा ने इस स्वमान पर बहुत ध्यान दिया है । यह उनकी विशेषता है और शायद इसी के कारण उन्होंने अपने पीछे बहुत सारे प्रश्नचिन्ह छोड़ दिये ।

## (५) भाषा में निहित संगीतमय तत्त्व :

एक ओर जहाँ निर्मल वर्मा अपनी भाषा में इन मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग करते हैं वहीं अचानक विधानों पर कोई स्वर मुखर हो उठता है । निर्मल वर्मा की भाषा में गीतात्मकता का पुट है । गिरजे का घंटा बोलता है, नदी का प्रवाह मुखरित होने लगता है और उनके मुहावरे किसी ऐसे संगीतमय संकेत में जाकर खत्म होते हैं जो उनकी कथाधारा को गति देता है । उदाहरण के लिए –

"एक आवाज दूसरी आवाज को पकड़ लेती और फिर भागने लगती अगले मौन के चौराहे तक आग की तरह ।"[४४] "यह नदी की आवाज है ।... वह हवा से बिलकुल अलग है.. इतनी ऊँचाई से उसका स्वर एक धीमी थपथपाहट सा लगता है ।"[४५] "फिर सब शांत हो जाता था और मूल

स्तब्ध ऑरकेस्ट्रा के जंगल से सिर्फ एक वॉयलिन सी साँस उठती थी, धास पर हिलती हुई ।''[४६]

वास्तव में किसी भी अच्छे गद्य का संगीतात्मकता हो जाना भी उसकी चरम परिणति है । निर्मल वर्मा इस परिवर्तित तक अपने गद्य को पहुँचाते हैं ।

## (६) बिम्ब और प्रतिक योजना का निरूपण :

निर्मल वर्मा अपने कथा संयोजन के लिए बार-बार बिम्बों और प्रतीकों में लौटते हैं और उनके माध्यम से अपने अव्यक्त की कहानी व्यक्त करते हुए बहुत कुछ अनकहा छोड़ देते हैं । वास्तव में यह बिम्ब और प्रतीक ही उस घूटी हुई कहानी को कह देते हैं ।

शिल्प के प्रति विशेष सजगता रखने के कारण निर्मल वर्मा के कथा साहित्य में बहुत खूबसूरत बिम्ब आए हैं, क्योंकि बात सीधी कहने के बजाय संकेत, प्रतीक या बिम्ब देकर स्पष्ट करना उन्हें अधिक रुचता है । वैसे तो बिम्ब योजना कविताओं में ज्यादा उभरते थे, लेकिन निर्मल वर्मा ने गद्य में भी इतनी खूबसूरती से बिम्बों को लिया है कि देखते ही रह जाते हैं । निर्मल का बचपन अधिक्तर पहाड़ो पर ही बीता, उन्होंने प्रकृति को उसके सुंदरतम् रूप में देखा है, और अपनी कृतियों में उसका चित्रण नहीं किया, बल्कि उसे हूबहू उतार दिया है । वे किसी भी अनुभूति को जब अभिव्यक्ति करने जाते हैं, सारी इन्द्रियाँ बहुत सचेत रहती हैं, और हर एक का सूक्ष्म से सूक्ष्म अनुभव भी सुन्दरतम् बिम्बों के माध्यम से उभर आता है । निर्मल वर्मा ने अपने उपन्यासों में लगभग सभी तरह के बिम्ब दिए हैं, जिनमें दृश्य भी हैं, श्राव्य भी । इनके अलावा और बिम्ब अपेक्षाकृत कम हैं, कुछ मिश्रित बिम्ब हैं । 'वे दिन' उपन्यास में देखा जाय तो – ''यह नदी की आवाज है, यह हवा से बिलकुल अलग है... इतनी ऊँचाई से उसका स्वर धीमी-सी थपथपाहट सा लगता था, कभी वह एकदम बुझ जाता था । तब हवा बीच में आ जाती थीं... उनके और उस स्वर के बीच... एक सफेद सा सूनापन । फिर वह उठता था, अपने-आप, एक कमजोर आग्रह की तरह जैसे वह अपने को हवा

से मुक्त करने के लिए छटपटा रहा हो ।''[४७] यहाँ पर नदी की आवाज के लिए उन्होंने सुन्दर बिम्ब दिया है । नदी की आवाज का मानो मानवीकरण करते हुए उसे बिलकुल सजीव रूप दे दिया है ।

इसी प्रकार उन्होंने स्वर बिम्ब में आवाजों को उनका एक अलग ही ग्रहण करने का तरीका है । आवाज को वे एक सजीव रूप में लेते हैं, जैसे वह व्यक्तित्व का एक बहुत बड़ा हिस्सा है । 'एक चिथड़ा सुख' का मुन्नू जब डैरी को याद करता है वर्षो बाद तो ''किन्तु आज जो चीज मुझे सबसे अच्छी तरह याद रह गई है, वह उनकी आवाज थी, पतली और तीखी जो पहले क्षणों में काफी चुभती थी, पर यदि उसे देर तरक सुनते रहो, तो उसके कोने झर जाते थे और वह सिकुड़कर एक लौ की तरह मेरे भीतर अपना रास्ता टटोल लेती थीं ।''[४८] इन्हीं बिम्बों को देखने के बाद सहज ही हम निर्मल वर्मा के वैशिष्ट्य को समझ सकते हैं । उनकी दृष्टि या कहीं संवेदनशील दृष्टि कैसे चीज को पकड़ती है कैसे गहरे में जाकर छोटी से छोटी बात को बाहर खींच लाती है और बिम्बों में उसे पाठक के समक्ष स्थापित करती है, वह निश्चय ही सराहनीय है ।

दूसरी और प्रतीकों के माध्यम से रचनाकार जटिल स्थिति, भाव या मनःस्थिति को, एक भिन्न ही अर्थ देकर चित्रित करता है, जहाँ बात के कहने से कई गुना गूढ़ार्थ उसमें छिपा होता है । और निर्मल वर्मा तो संवेदनाओं और मनःस्थितियों के ही कलाकार है, अतः प्रतीक उनके लिए एक सशक्त माध्यम बन पड़ा है ।

निर्मल वर्मा के उपन्यासों में जगह–जगह प्रतीकों का उपयोग देखा जाता है । 'वे दिन' में इन्दी और रायना की कथा के साथ–साथ फ्रांच और मारिया की भी कहानी है, सब अपने में अकेले है । लेखक मारिया की स्थिति को स्पष्ट करता हुआ कहता है कि – ''यह शायद वही सीमा थीं, जिसके आगे कोई किसी की मदद नहीं कर सकता था । लगता था, कोई बाहर का फन्दा है, जिसकी सब गाठे, सब सिरे दूसरे के हाथों में है जिन्हें हम नहीं देख सकते ।''[४९] यहाँ पर मारिया जो दो साल से वीसा के लिए कोशिश कर रही

है, क्योंकि फ्रांज के साथ जाना चाहती है, और फ्रांज जब इन्तजार नहीं कर सकता । मारिया के माध्यम से लेखक ने मनुष्य की नियति की ही बात की हैं ।

इसी प्रकार 'वे दिन' की नायिका रायना एक पर्यटक है । वह इधर–उधर घूमती रहती है । रायना का पर्यटक होना उसके मन की अस्थिरता का प्रतीक है । 'लाल टीन की छत' की काया अपने आप में प्रतीक है । वह किशोर वय का प्रतिनिधित्व करती प्रतीत होती है । 'एक चिथड़ा सुख' की बिट्टी उन कलाकारों का प्रतीक है कला में जीवन का अर्थ खोजने का असफल प्रयास कर रहीं है । ऐसे ही आपातकाल की पृष्ठ भूमि पर लिखे गये 'रात का रिपोर्टर' उपन्यास का नायक रिशी भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग का प्रतीक है । रिशी के सहारे निर्मल वर्मा ने आपातकाल में भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग पर छाये सता के आतंक का चित्रण किया है ।

इसी प्रकार निर्मल वर्मा ने नये–नये बिम्बों और प्रतीको के माध्यम से जिस संसार की रचना अपने उपन्यासों में की है वह दूसरे महायुद्ध के बाद का वह संसार है, जिसमें एक टूटी हुई दुनिया का मौन बिखरा पड़ा है । इस मौन को वे शायद इसी खामोशी के साथ कह सकते थे । इसलिए उन्होंने बिम्बों और प्रतिको का अपने उपन्यासों में सहारा लिया है । क्योंकि वहाँ उस टूटी हुई दुनिया के बाद जो कुछ बच जाता है, उसके लिए उनके पास कहने को कुछ शेष नहीं बचता । ये दृश्य विधान ही उसकी कहानी कहने में सक्षम हैं ।

## (७) अमूर्त को मूर्त बनाती भाषा :

निर्मल वर्मा एक संवेदनशील कथाकार हैं । वे अपनी भाषा में संयत और सतर्क होकर शब्दों का प्रयोग करते हैं । वे अपने वाक्यों में शब्दों को मंत्र की तरह साधकर रखते हैं । यहीं कारण है कि उनके शब्द मूर्त से अमूर्त स्थितियों को भी मूर्तता प्रदान कर देते हैं । छोटी से छोटी मनःस्थिति और अनुभूति भी निर्मल वर्मा की कलम के स्पर्श से पाठक के समक्ष साकार हो जाती है ।

निर्मल वर्मा की भाषा संबंधी अमूर्तता और मूर्तता के बारे में डॉ. परमानंद श्रीवास्तव लिखते हैं कि – ''उनकी भाषा का पहला महत्त्वपूर्ण गुण उसकी मूर्तता ही है – व्यक्ति का एकांत भी इसे छिपाता नहीं, दृश्य और प्रत्यक्ष करता है ।''[५०] निर्मल वर्मा अमूर्त स्थितियों और अनुभूतियों के लिए ऐसे बिम्ब का प्रयोग करते हैं जो पाठक के सामने अनुभूतियों को हूबहू साकार कर देते हैं ।

इसी तरह डॉ. कृष्णा सोबती के शब्दों में कहा जा सकता है कि – ''एक साथ जो भी कलम ढेर सारी धूप, हवाएँ, चांदनी, रुई-सी बर्फ, बर्फो के टीले, फूलों के मुखडे ऐसे आंक सके जैसे निर्मल वर्मा ने आंके हैं, उन्हें स्वर और संज्ञा दे सके, यकीनन वह बड़ी कलम है ।''[५१]

यह स्पष्ट है कि निर्मल वर्मा वातावरण के इस स्वभाव से उन अमूर्त क्षणों को रचते हैं जो उनके पात्रों के मुख से अर्थहीन हो जाते और यह अर्थहिनता उनके उपन्यासों की अर्थवत्ता धूलघूसरित कर देती है । उनकी अमूर्तता और मूर्तता के उदाहरण उनके उपन्यासों में से निम्न प्रकार से देखे जा सकते है – ''बाहर सर्दियों का मलिन आलोक था .... वे खिड़की के बाहर पूलों को देख रहे थे । ट्राम नदी के साथ-साथ एम्बेंकमेन्ट पर चल रहीं थी । नदी पर अब भी कहीं-कहीं बर्फ जमीं थीं । उसकी सतह नीले काँच-सी धूप में चमक रहीं थी ।''[५२] 'वे दिन' उपन्यास की कथा कुल मिलाकर तीन दिन की कथा है, जिसमें मात्र स्मृति में आती हुई छुटपुट स्मृतियाँ हैं, जिसमें वहाँ मूर्त रूप में कथानक नहीं है, जो है वह अमूर्त ही है ।

इसी तरह 'एक चिथड़ा सुख' उपन्यास में देखा जाय तो – ''कुछ देर सन्नाटा छाया रहा ।... रिकार्ड अचानक ठहर गया था । घूमता हुआ डिस्क धुई-धुई कर रहा था, खाली हवा को खाता हुआ ।''[५३] यहाँ यह स्पष्ट है कि इस उपन्यास में भी जैसा की मुन्नू सारी बातें कहता है – डायरी लिखता है और सारी कृति उसी के माध्यम से हमारे आगे रखता है । 'लाल टीन की

छत' उपन्यास में भी लगभग सभी चीजें अमूर्त सी ही है, सिर्फ अहसास होता है पात्रों, घटनाओं या कृति के आगे बढ़ने का, कई बार वह भी नहीं होता ।

इसी प्रकार उनका एक और उपन्यास 'रात का रिपोर्टर' में देखा जाय तो "उन दोनों के बीच कितना कम अंतर है, सितम्बर के महीने की तरह, जब धूप पीछे सरकने लगती है और आनेवाली सदियों की छाँह पास आने लगती है । और सारा शहर धूप और छाँह के टापूओं में बढ़ जाता है ।"[५४] ऐसा ही 'अंतिम अरण्य' में – "रोशनी नीचे चली जाती है । नवम्बर की धूप पहाड़ो की पीठ को सहलाती फिसलती जाती है । हवा के साथ चीडों की तीखी नशीली गद्य भीतर आती है । कुछ जल रहा है ।... नीले धुएँ की लढ़ भीतर आती है ।"[५५]

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि निर्मल वर्मा की भाषा में इस तरह दृश्य बिम्बों का बार–बार आना, सितम्बर की धूप का पीठ सहलाना, हवा में पीला आलोक फैलना, अपने ऊपर दिल्ली का आकाश महसूस करना ये सारे दृश्य बिम्ब किसी ऐसे अव्यक्त की कहानी कहते हैं जो उस कथानक के बीच कहीं नहीं है, अर्थात् अमूर्त है । किन्तु उस अमूर्त के इन दृश्य बिंदुओं से मूर्त करते हुए निर्मल वर्मा जितनी कथा कहते हैं, उससे कहीं अधिक अनकहा छोड़ देते हैं । और वह अनकही कहानी, ये दृश्य बिम्ब बहुत कम शब्दों में सुविधा से कर देते है । यहीं कारण है कि दोनों पात्रों के बीच एक छोटा–सा संवाद होता है और लेखक उन दृश्य बिम्बों में लौट जाता है ।

इस तरह निर्मल वर्मा अपनी भाषा को सर्जनात्मक रूप से कहीं विशिष्ट बनाने के प्रयास में कथानक की एक ऐसी सृष्टि करते हैं, जिसमें घटनाएँ न के बराबर हों, उन घटनाओं का विशिष्ट उपयोग हो, सूक्ष्म संकेत हों, और कथा यदि आत्मकथा के माध्यम से हो जो उसमें सच्चाईयों का अनुभव विस्तार उभरकर मुखरित होने लगे । वास्तव में निर्मल वर्मा ने एक संवेदनशील गद्य की रचना की है जिसमें लय है, संगीत है, भाषा में अंग्रेजी, संस्कृत, उर्दू और अपभ्रंश के शब्द है । उनमें महावरें लोकोक्तियाँ है, प्रतीकों और बिम्बों का निरूपण है । और इन सबके द्वारा अमूर्त को मूर्त बनाती हुई वह भाषा

है, जो भारतीय कथालेखन के पार जाकर अपनी अलग पहचान केन्द्रित करती हैं ।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कथ्य एवं शिल्प की तरह निर्मल वर्मा की तरह निर्मल वर्मा का भाषा प्रयोग भी विशिष्ट है । उनके पास भाषा का अपना संस्कार है । वे कम–से–कम शब्दों में अधिक प्रभाव छोड़ते है । अर्थात् निर्मल वर्मा की भाषा में एक नयापन है, एक ताजगी है जो उन्हें दूसरे कथाकारों से अलग करती है ।

## संदर्भ सूची :



| | |
|---|---|
| १ | अमृतलाल नागर का उपन्यास साहित्य, पृ. २४० |
| २ | हिन्दी शब्द सागर, संपादक श्यामसुन्दरदास, पृ. ४७५१ |
| ३ | मानवि की पारिभाषिक कोश, संपा. नगेन्द्र, पृ. २४-२५ |
| ४ | हिन्दी-उर्दू उपन्यास शिल्प बदलते परिपेक्ष्य - डॉ. प्रेम भटनागर, पृ. ३ |
| ५ | प्रेमचंदोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि - डॉ. सत्यपाल चुध, पृ. १० |
| ६ | हिन्दी उपन्यास की शिल्पविधि का विकास - डॉ. ओम शुक्ल, पृ.१७-१८ |
| ७ | हिन्दी उपन्यास की शिल्पविधि का विकास - डॉ. ओम शुक्ल, पृ. २७ |
| ८ | उपन्यास का शिल्प - डॉ. गोपालराय, पृ. ६ |
| ९ | निर्मल वर्मा का कथा संसार कथ्य और संरचना, डॉ. युवराजसिंह, पृ. २२९ |
| १० | 'व दिन', निर्मल वर्मा, २८२ |
| ११ | 'लाल टीन की छत', निर्मल वर्मा, पृ. २६७ |
| १२ | 'रात का रिपोर्टर', निर्मल वर्मा, पृ. २३२ |
| १३ | 'जलती झाडी', डॉ. नामवरसिंह |
| १४ | कथाकार निर्मल वर्मा, नरेन्द्र इष्टवाल, पृ. १०७ |
| १५ | 'रात का रिपोर्टर', निर्मल वर्मा, पृ. २० |
| १६ | 'अंतिम अरण्य', निर्मल वर्मा, पृ. १३०-१३२ |
| १७ | निर्मल वर्मा और सुरेश जोशी का कथा साहित्य, डॉ. रेखा शर्मा, पृ १२६ |
| १८ | निर्मल वर्मा और सुरेश जोशी का कथा साहित्य, डॉ. रेखा शर्मा, पृ १२६ |
| १९ | 'लाल टीन की छत', निर्मल वर्मा, पृ. १६६ |
| २० | 'रात का रिपोर्टर', निर्मल वर्मा, पृ. ७४ |
| २१ | 'रात का रिपोर्टर', निर्मल वर्मा, पृ. ७५ |
| २२ | 'रात का रिपोर्टर', निर्मल वर्मा, पृ. ७६ |
| २३ | 'रात का रिपोर्टर', निर्मल वर्मा, पृ. ७७ |
| २४ | 'रात का रिपोर्टर', निर्मल वर्मा, पृ. ७८ |
| २५ | 'रात का रिपोर्टर', निर्मल वर्मा, पृ. ८१ |
| २६ | 'अंतिम अरण्य', निर्मल वर्मा, पृ. ६ |
| २७ | 'अंतिम अरण्य', निर्मल वर्मा, पृ. पृ. २८०-२८१ |
| २८ | हिन्दी लघु उपन्यासों के संदर्भ में निर्मल वर्मा के उपन्यास - डॉ. छाया मोहरीर, पृ. ३२१ |

| | |
|---|---|
| २६ | हिन्दी लघु उपन्यासों के संदर्भ में निर्मल वर्मा के उपन्यास – डॉ. छाया मोहरीर, पृ. ३२१ |
| ३० | निर्मल वर्मा और सुरेश जोशी का कथा साहित्य, डॉ. रेखा शर्मा, पृ. १२८ |
| ३१ | 'वे दिन', निर्मल वर्मा, पृ. ६२ |
| ३२ | 'वे दिन', निर्मल वर्मा, पृ. ६२ |
| ३३ | 'वे दिन', निर्मल वर्मा, पृ. १०६ |
| ३४ | 'रात का रिपोर्टर', निर्मल वर्मा, पृ. ३४ |
| ३५ | 'रात का रिपोर्टर', निर्मल वर्मा, पृ. ३४ |
| ३६ | 'रात का रिपोर्टर', निर्मल वर्मा, पृ. ३५ |
| ३७ | आलोचना जुलाई सितम्बर, १६८६, पृ. ५६ |
| ३८ | निर्मल वर्मा, मलयज, पृ. १२८ |
| ३६ | निर्मल वर्मा, मलयज, पृ. १७६ |
| ४० | 'अंतिम अरण्य', निर्मल वर्मा, पृ. १६२ |
| ४१ | 'अंतिम अरण्य', निर्मल वर्मा, पृ. १६३ |
| ४२ | 'अंतिम अरण्य', निर्मल वर्मा, पृ. २३३ |
| ४३ | 'लक चिथड़ा सुख', निर्मल वर्मा, पृ. १०६ |
| ४४ | 'वे दिन', निर्मल वर्मा, पृ. ८२ |
| ४५ | 'वे दिन', निर्मल वर्मा, पृ. ६४ |
| ४६ | 'वे दिन', निर्मल वर्मा, पृ. १७७ |
| ४७ | 'वे दिन', निर्मल वर्मा, पृ. १२३ |
| ४८ | 'लक चिथड़ा सुख', निर्मल वर्मा, पृ. ५६ |
| ४६ | 'वे दिन', निर्मल वर्मा, पृ. ६७ |
| ५० | उपन्यास का यथार्थ और रचनात्मक भाषा, पृ. १७६ |
| ५१ | हमहशमत, पृ. १३ |
| ५२ | 'वे दिन', निर्मल वर्मा, पृ. ८६ |
| ५३ | 'लक चिथड़ा सुख', निर्मल वर्मा, पृ. ११७ |
| ५४ | 'रात का रिपोर्टर', पृ. निर्मल वर्मा, पृ. २२ |
| ५५ | 'अंतिम अरण्य', निर्मल वर्मा, पृ. १६६ |


❀❀❀

# उपसंहार

# उपसंहार

समकालीन हिन्दी कथासाहित्य में निर्मल वर्मा एक ऐसे हस्ताक्षर हैं, जिन्हों ने पश्चिम के देशकाल के धरातल पर भारतीयता की परख करते हुए एक ऐसे कथालोक का निर्माण किया है, जिसे पढ़ने पर यह बहुत आश्चर्यजनक लगता है कि कोई भारतीय लेखक इस भाषा शैली में ऐसा वैश्विक परिवेश रच सकता है । वास्तव में निर्मलवर्मा उस पारिवारिक धरातल की उपज है, जहाँ दादी के संसार में पौराणिकता का घनघोर वातावरण था, तो पिता अंग्रेजी संस्कृति में पले–बढ़े एक ऐसी दुनिया के आसपास थे, जो उन्हें आधुनिक संसार की ओर ले जाती थी । निर्मल वर्मा अपने पिता के साथ उन पहाड़ी कस्बों में रहे जो अंग्रेजों की आराम–गाह थी और उन कस्बों का गिरजाघर, पहाड़ी ढलाने, बर्फ और सूनेपन के बीच जिन्दगी का मर्म खोजती आँखें निर्मल वर्मा को सहज ही विरासत के रूप में प्राप्त हुए ।

उस दिन पहाड़ी कस्बों में जीते हुए उन्होंने पाया कि बचपन केवल बड़े होने की सिढ़ि नहीं है, बल्कि बच्चों का जिया हुआ दुःख अपने समय की सबसे बड़ी सच्चाई है । यही कारण है कि 'वे दिन' का मीता उन्हें अपनी क्रियाशीलता में बार–बार आकर्षित करता है और रायना–रहमान से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हो उठता है । यही कारण है कि 'लाल टीन की छत' की 'काया' निर्मल वर्मा के व्यक्तित्व को बहुत झकझोरती है और ''लामा'' के चरित्र का रहस्यलोक उनके लिए छोटा होकर भी बड़ा हो उठता है । इसी तरह ही 'एक चिथड़ा सुख' का मुन्नु बिट्टी के साथ दिल्ली में रहते हुए सुनी आँखों से वह सब कुछ देखता है, जो उसे देखना चाहिए और उस पर खुलकर प्रतिक्रिया व्यक्त करनी चाहिए । मुन्नु माँ–पिता की बात मानकर हर जगह चुप रहता है, लेकिन उसका मौन सर्वत्र बोलता रहता है । वास्तव में यह मीता और मुन्नु नहीं है यह निर्मल वर्मा का स्वयं का वह बचपन है जो शिमला के उस पहाड़ी कस्बे में भाई–बहनों के बीच भटकते हुए बीता होगा ।

निर्मल वर्मा का वह बचपन उस माँ–पिता के साथ भी जुड़ा था जो प्रशासक पिता और दिल्ली के चाँदनी चौक की खत्री परिवार की बेटी के रूप में अपनी माँ से जुड़ा था । निर्मल वर्मा अपनी किसी विशेष बहन को प्रेरणा का आधार पाते हैं । पारिवारिक धरातल में एक ओर जहाँ संबधों की नींव पर उन्हें चलने को विवश किया, वहीं पिता का अंग्रेजी वातावरण उन्हें उस दुनिया में खींच रहा था । वहाँ जो उस देशकाल में न केवल भारतीयता बल्कि समुचे विश्व की आधारशिला थी । इस परिवेश में निर्मल वर्मा की शिक्षा–दीक्षा हुई । वे स्कूल से अधिक अपने घर में दीक्षित हुए । उन्होंने माता–पिता के साथ उन धार्मिक स्थलों की यात्रा की, जहाँ जाने पर मनुष्य भारतीय धर्म की सर्वोच्च सीढी पर कदम रखता है । और उसके साथ ही सिमला के बटलर स्कूल, दिल्ली के सेन्ट इस्टीफेन्ट कॉलेज, चेकोस्लाविया के प्राग विश्वविद्यालय में उनकी उपस्थिति ने उन्हें लगातार दिक्षीत किया । निर्मल वर्मा इस अध्ययन–अध्यापन के दौरान न केवल विदेशी संस्कृति के संपर्क में आये, बल्कि वे देश–विदेश के उन लेखकों के संपर्क में भी आये जिनके साहित्य से साक्षात्कार कर निर्मल वर्मा ने अपनी रचना–धर्मिता का मार्ग चुनना आरंभ किया ।

एक लेखक के रूप में अपनी ही जिन्दगी जीते और दोहराते हुए निर्मल वर्मा ने विवाह के धरातल पर जो यंत्रणा झेली, उसका परिणाम यह हुआ कि उनकी रचनाओं में दाम्पत्य टुटन की अनुगूंज और उसके आसपास फैली हुई उदासी बहुत दूर तक दिखाई देती है । यह उदासी और टुटन ‘वे दिन’ में फ्रांज और मारिया के बीच है, ‘अंतिम अरण्य’ में मिस्टर मेहरा और उनकी पत्नी के बीच है । यही ‘एक चिथड़ा सुख’ में बिट्टी और डैरी भाई के बीच है । यही टूटन ‘लाल टीन की छत’ में और ‘रात का रिपोर्टर’ जैसे उपन्यास में जगह–जगह दिखाई देती है । वास्तव में निर्मल वर्मा का समूचा रचना–संसार संबंधों के उस पड़ताल पर आधारित है, जो वैश्विक परिवेश में निरंतर बदलते और अपना अस्तित्व खोजते आदमी के लिए बहुत आवश्यक है । यही कारण है कि अपनी हर कथा कृति में देशकाल की पड़ताल करते

हुए निर्मल वर्मा बार–बार संबंधों की दुनिया में लौट जाते हैं और उसके पार जाकर एक ऐसी उदासी का सृजन करते हैं, जो मनुष्य के जीवन का शास्वत गंतव्य है । वास्तव में यह गंतव्य निर्मल वर्मा को अपने जीवन और परिवेश से प्राप्त हुआ है ।

संबंधों की इस बुनावट में लेखक की वे विदेशी यात्राएँ भी शामिल हैं, जिनके चलते उसने अपनी सोच को विश्व के धरातल पर फैलते और प्रचारित होते हुए पाया होगा । निर्मल वर्मा बार–बार प्राग के उस विश्वविद्यालय में अध्यापन और अनुवाद के लिए आमंत्रित होते रहे, जहाँ रिल्के, पॉल ऐलुआ और बोरिक पास्तरनाक जैसे रचनाकारों से उनका संबंध गहरा होता गया । वहीं रहकर उन्होंने जाना कि शब्द–शक्ति पर सारी दुनिया में भयानक पहरा है । वहीं रहकर साम्यवादी विचारधारा से उनका मोहभंग हुआ और उन्होंने विश्वविद्यालय छोड़कर लंदन में एक रिपोर्टर की हैसियत से काम शुरु किया । वहीं रहकर इटली की एक महिला के संपर्क से उन्होंने 'वे दिन' उपन्यास का ताना–बाना बुना और अपने नितांत बेरोजगार क्षणों में उन्होंने लंदन की सड़कों पर भटककर जीवन की सच्चाईयों को नजदीकी से देखा ।

लेकिन अंततः लौटकर निर्मल वर्मा के पास अपने देशकाल का वातावरण था, भारतीयता की आधारशिला थी, पौराणिकता और प्रेमचंद से विकसित होता हुआ रचनालोक का और भारतीयता की वह माँग थी, जिसमें मनुष्य, प्रकृति और ईश्वर के अंर्तसंबंधों का एक गहरा सूत्र था । स्वदेश में निर्मल वर्मा के पास एक ऐसी दुनिया थी, जो पश्चिम की दुनिया से एकदम विपरीत थी । लेकिन भारतीय वातावरण से लेकर विदेशों तक की पड़ताल करनेवाले निर्मल वर्मा के लिए यह बहुत ही सहज था कि अंतर्राष्ट्रीय धरातल पर मनुष्य जो जिन्दगी जी रहा है, भारतीयता की दुनिया उससे अलग नहीं, बल्कि उसका एक अटूट हिस्सा है । यही कारण है कि अपनी रचनाओं में निर्मल वर्मा भारतीयता से निकलकर उस वैश्विक परिवेश में चले जाते हैं । जो आज का मनुष्य वर्तमान और जिसे किसी देशकाल के धरातल पर अस्वीकार नहीं किया जा सकता ।

निर्मल वर्मा मूलतः कथाकार हैं । एक ओर उन्होंने जहां उपन्यास लिखे, वहीं दूसरी ओर लम्बी–लम्बी कहानियाँ लिखी, जो अपने रूपाकार में लघु उपन्यास के आसपास थीं । वास्तव में निर्मल वर्मा एक वैचारिक लेखक हैं और उनका संपूर्ण रचनाकार्य विचारधारा के धरातल पर फैला हुआ है । वे रचना के लिए रचना नहीं लिखते, नाम–यश के लिए शब्द संसार की सृष्टि करते हैं । उनका पूरा लेखन अपने वर्तमान की जाँच–परख करते हुए आज के आदमी के जीवन के लिए संभावनाओं की खोज करना है । यह खोज कहानी और उपन्यास के माध्यम से तो है ही । निर्मल वर्मा ने लम्बे–लम्बे निबंध लिखकर अपने विचारों की खुलकर पुष्टि की है । जिसमें अंतर्राष्ट्रीय धरातल पर जीवन–जगत और साहित्य की गहरी परख देखी जा सकती है । उन्होंने लम्बी–लम्बी डायरियाँ लिखी और उसमें बस्तर के जंगलों से लेकर संगीत और पश्चिम के काव्यमय संसार तक के दर्शन होते हैं । निर्मल वर्मा ने इससे भी आगे जाकर कहानी और नाटकों के वे अनुवाद प्रस्तुत किए, जो उनके लेखन की पसंद है और उनकी विचारधारा को गति देते हैं ।

निर्मल वर्मा के उपन्यासों पर बात करते हुए यह बहुत आवश्यक है कि उनकी अन्य विधाओं को भी देखा–परखा जाय और उनकी रोशनी में उनके उपन्यासों का आकलन किया जाय । उदाहरण के लिए निर्मल वर्मा की कहानी 'परिन्दे' और 'लन्दन की एक रात' को देखा जा सकता है । 'परिन्दे' की नायिका लतिका अपने आप में एक एसा चरित्र है, जो किसी उपन्यास से कम नहीं और उदासी का एक ऐसा संसार बुनती है जिसे देखकर सहसा विश्वास नहीं होता कि यह किसी भारतीय लेखक की कहानी है । यहीं कारण है कि डॉ. नामवरसिंह ने इसे हिन्दी की पहली नयी कहानी का दर्जा दिया है । इसी तरह 'जलती झाड़ी' शीर्षक में 'लंदन की एक रात' शीर्षक से एक एकान्त है, जिसमें लन्दन की फेक्टरियों में रात की भर्ती के बाद बचे हुए मजदूर एक बियर बार में जाकर अपनी बेकारी का मातम मनाते हैं । इस बार में एक विदेशी अंग्रेज लड़की के साथ डान्स करता है, जिसके साथ इसलिए मारपीट की जाती है कि वह निग्रो है और काले लोगों के प्रति गोरो की घृणा का

जीवन्त उदाहरण है । इसी तरह 'बीच बहस' संग्रह के अंतर्गत 'छुट्टियों के बाद' शीर्षक की पात्र मारथा पेरिस में एक ऐसे युवक के साथ जुड़ जाती है, जिसे छोड़कर वह अपने देश जा रही है और उस युवक को स्टेशन पर बेचैनी से चूम रही है, जिसे वह थोड़ी देर बाद छोड़कर आगे चली जायेगी । मारथा जब अपने स्टेशन पहुँचती है तो वह एक दूसरी मारथा बनकर उस युवक से लिपट जाती है, जिसे वह इन छुट्टियों में अपने शहर में छोड़ आयी थी । निर्मल वर्मा के एक ओर संग्रह 'कौव्वे और कालापानी' में 'धूप का एक टुकड़ा' की नायिका उस गिरजाघर के सामने बैठकर अपने अतीत को याद करती है, जिसमे १५ वर्ष पूर्व उसका विवाह हुआ था, और वह अपने पति से ७ वर्षो से अलग रह रही है । नायिका अपने पति के साथ बिताये गये क्षणों को भूल नहीं पाती और उसे लगता है कि लोग जिन्दगी के अमूल्य सुखों को छोड़कर दुर्घटनाओं और दुःखो की याद में क्यों जीवन गॅवाते रहते हैं । वास्तव में वह नायिका स्वयं उन सुखों और क्षणों को दुर्घटनाओं की तरह ही देखती है और उसके बीच से सुख के क्षण ढूढने और संग्रह करने की कोशिश करती है । 'सूख और अन्य कहानियाँ' संग्रह में 'टर्मिनल' कहानी के अंतर्गत इस स्टेज शो के दौरान कथानायक एक लड़की से प्यार कर बैठता है, लेकिन भविष्य के खतरों की आशंका करती हुई वह लड़की उसे अस्वीकार कर देती है और एक ऐसी महिला से उसे मिलाता है, जो उन दिनों के संबंधों को तोड़ने में सहायक होती है । लेकिन एक–दूसरे से अलग होकर वे केवल बंधन मुक्ति से अलग होते हैं । उनका प्रेम पहले से और अधिक विकसित हो उठता है ।

वास्तव में निर्मल वर्मा की ये कहानियाँ उनके उपन्यासों की रचना का पूर्वभ्यास है । यही कारण है कि उनका हर पात्र संबंधों की बुनावट से आरंभ होकर उसकी चरम परिणति टूटन तक जाती है । उस टुटन को भी वह अपनी मुक्ति समझता हुआ यादों के संसार में संबंधों का एक अटूट सिलसिला रचता रहता है । यह संबंध, रोमांच और रिश्तों की टूटती हुई अनुगूंज निर्मल वर्मा का पहला उपन्यास 'वे दिन' से लेकर 'अंतिम अरण्य' तक दिखाई देती

है । यही अनुगूंज इण्डी और रायना के बीच है । यही अनुगूंज बिट्टी और ड़ैरी भाई के बीच है और अंततः यही अनुगूंज पूर्व आई.ए.एस., मेहरा साहब और उनके उन संबंधियों के बीच है जिनकी निगाह में वे एक साथ सम्मान, आश्चर्य और आशंका के पात्र हैं । निर्मल वर्मा ने अपनी संपूर्ण रचनात्मकता के बीच अंततः संबंधों के उस भारतीय कलेवर पर व्याख्यायित किया है जो अंतर्राष्ट्रीय धरातल पर अपनी समकालीन दुनिया से गहरे तक जुडा है । यहां तक कि वे अपने निबंधों, डायरीयों और साक्षात्कारों में बार–बार अंतर्राष्ट्रीय दुनिया को नापकर अपने को एक ऐसी केन्द्रियता में स्थापित करना चाहते हैं, जिसे जानने समझने के बाद उनके साहित्य को संपूर्ण रूप से जाना जा सकेंगा । यहाँ तक कि उनके ललित निबंधों का संसार भी उन्हें पहाड़ी कस्बों और ढलानों की उस दुनिया में ले जाता है, जहां कथा संसार जैसी दूर तक प्रसरी हुई उदासी है और लेखक को एक संपूर्ण कथा–साहित्य कि रचना का सुख देती है । ‘शब्द और स्मृति’ से लेकर ‘अंत और आरंभ’ के भीतर बार–बार भारतीयता की बात करते हुए निर्मल वर्मा वैश्विक परिवेश में लौट जाते हैं, जो उनका मूल ध्येय है और जिसके बिना भारतीयता की कल्पना नहीं की जा सकती । उनकी यही चिंता ‘चीड़ों पर चाँदनी’ और ‘हर बारिश में’ जैसे यात्रा संस्मरणों में है, यही चिंता पश्चिम में बिताये गये क्षणों से लेकर शिमला, रानी खेत, भोपाल, अमरकंटक और नागालेन्ड की स्मृतियों में है, जिसे आधार बनाकर निर्मल वर्मा एक विशाल रचनालोक में प्रवेश करते हैं । जिसे जाने बिना उनके उपन्यासों के रचनात्मक संसार को जानना असंभव हो जाता है ।

निर्मल वर्मा के उपन्यासों पर दृष्टि डालने से पहले हिन्दी उपन्यास साहित्य की औपन्यासिक परंपरा एवं यात्रा पर दृष्टि डालते हुए उनके उपन्यासों को उस क्रम में देशकाल से जोड़कर देखना होगा । भारतीय परंपरा में कथा–कथन से पूर्व पाश्चात्य देशों की धार्मिक और रोमांटिक परंपरा रही है, जिनमें देवदूतों की प्रचलित कथाएँ है, तो सम्राटों की प्रेम कथाएँ भी । उस परंपरा से होती हुई तेरहवीं शताब्दी में वहाँ गद्य परंपरा विकसित थी । और

सोलहवीं सदी के आरंभ में फ्रेंच साहित्य में पुनःरुत्थान युग आरंभ हुआ । इस शताब्दी मे एक रोमांटिक आंदोलन की तरह कथासाहित्य ने पश्चिम में अपनी जड़े जमानी आरंभ कर दी और आगे बढ़कर अंग्रेजी साहित्य को गहरे तक प्रभावित किया । उसके बाद एक लम्बी रचना यात्रा के परिणाम स्वरूप बीसवीं शताब्दी में महायुद्धों का आधार लेकर पाश्चात्य देशों में उपन्यास अपने शीर्ष पर पहुँच गया । भारतीय परंपरा में पश्चिम के समानांतर ही वैदिक साहित्य से स्तुतियों के रूप में आरंभ हुआ । कथासाहित्य पुराणों एवं नीतिकथाओं में कथा–कथन को विकसित करता हुआ दिखाई देता है । बाद में संस्कृत परंपरा में पंचतंत्र, मुद्राराक्षस, मृच्छकटिकम् जैसी कृतियों से यह परंपरा और भी विकसित हुई । आगे बढ़कर अपभ्रंस परंपरा की प्रेमाख्यानक कृतियों ने इसका सर्वश्रेष्ठ रूप प्रस्तुत किया । हिन्दी में दशकुमारचरित जैसी कृतियों को आधार बनाकर किस्सा तोता–मैना से होती हुई यह धारा चंद्रकान्ता जैसी तिलस्मी धारा तक पहुँच गई और बंगला साहित्य से होती हुई उसने प्रेमचंद जैसे कथाकार को जन्म दिया ।

हिन्दी उपन्यास में प्रेमचंद के साथ ही जो युग आरंभ हुआ उसने एक ओर सामाजिकता को स्थान दिया तो दूसरी ओर मनोविज्ञान ने कथाक्षेत्र में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका उपस्थित की, और तीसरी ओर ऐतिहासिक उपन्यासों में संस्कृति का शास्वत अध्याय रचने में कोई कसर नहीं छोड़ी । बाद में प्रेमचंदोतर साहित्यकारों ने प्रयोग के आधार पर सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक, प्रयोगशील और ग्रामीण संदर्भ के उपन्यास दिये । इस तरह निर्मल वर्मा से पूर्व हिन्दी उपन्यास की एक ऐसी परंपरा अस्तित्व में रही है, जिसने निर्मल वर्मा को एक ऐसी कथाधारा के बीच खड़ा किया जो अपने आप में एक ओर संपूर्ण दिखाई देती है तो दूसरी और नयेपन की चुनौतियाँ लेखक के सामने रहती है । नये लेखन के लिये एक ओर जहाँ उपन्यास के तत्त्वों से परिपूर्ण रुढ़ियाँ हैं, उन दूसरी ओर उन रुढ़ियों से मुक्ति का नयी कहानी का आंदोलनात्मक वातावरण भी उनके साथ रहा है । सबसे बड़ी बात यह रही है कि इस मोड़ पर आकर सारे कथाकार अंतर्राष्ट्रीय दुनिया की सोच–समझ के

आस-पास स्वयं को स्थापित करने में लगे हुए थे । स्पष्ट है कि एक ओर परंपरा का स्वीकार-अस्वीकार और समसामयिक संदर्भों से जुड़ाव की गहरी आकांक्षा थी तो दूसरी ओर अंतर्राष्ट्रीय जगत से साक्षात्कार की व्यापक प्रासंगिकता हमारे कथाकारों का मूलाधार थी ।

निर्मल वर्मा इस कथाधारा के बीच 'वे दिन' उपन्यास से शुरु होता है और विदेशी परिवेश से भारतीयता से आकर उन संबंधों की ओर लौट जाते हैं जो एक ओर भारतीयता से आक्रांत हैं, तो दूसरी ओर पश्चिम की जीवनशैली उनकी भारतीयता पर हावी होती दिखाई देती है । 'वे दिन' का इण्डी अंततः 'रात का रिपोर्टर' में ठेठ भारतीय होकर आपातकाल की विशुद्ध भारतीय यंत्रणाएँ झेलता है, और उसके मन में संबंधों को मापने का अंततः पश्चिमी आधार ही शेष बचता है । 'लालटीन की छत' में लामा, मिसेज जोसुआ, और नथवाली स्त्री ये सारे पात्र ठेठ भारतीय है किन्तु आवरण के पीछे अपने जीवनयापन में वे संबंधों को जिस तरह स्वीकार करते हैं, उसमें भारतीयता की अनुगूंज कहीं दिखाई नहीं देती । वे भारतीयता के हिसाब से चरित्र हीन कहे जाते हैं । लेकिन पश्चिम की निरंतर बढती हुई जीवन शैली उन्हें साहस से जीने और जिन्दगी में खड़े रहने की शक्ति देती है । 'एक चिथड़ा सुख' की बिट्टी तो ऐसी है कि यदि महानगर दिल्ली न होता और उसके आस-पास किसी परिवार का संरक्षण होता तो पारिवारिक धरातल पर एसी लड़की आधार मानकर परिवार के बाहर कर दी जाती । पर निर्मल वर्मा के ये पात्र भारतीयता में पश्चिमी दृष्टिकोण को लेकर खड़े होते हैं और उस वातावरण से स्वीकृत भी होते हैं, जो उनके आस-पास है । स्पष्ट है कि महायुद्धों के बाद अंतर्राष्ट्रीय दुनिया में विकसित होती हुई सामाजिकता में उन्हें चरित्र हीन से समाज का सर्व मान्य हिस्सा बन जाते हैं ।

लेकिन इन पात्रों की दुनिया रचते हुए निर्मल वर्मा प्रगति के शीर्ष पर जाते हुए भी उस परंपरा में लौट आते है जो भारतीयता में वैदिक युग से आरंभ हुई थीं । यहीं कारण है कि 'अंतिम अरण्य' के मेहरा साहब को कथानायक अंततः एक पहाड़ी कस्बे में जाकर गंगा की एक छोटी सी धारा को

सोंप आते हैं, उसका पिंडदान करते हैं और उसे कव्वों को चढ़ाकर ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर मेहरा साहब आत्मा की शांति की कामना करता है । निर्मल वर्मा भारतीय परंपरा के बीच एक ऐसी अदभूत कड़ी उपस्थित करते हैं, जो अपने में अद्वितीय है । जो पूरी तरह पश्चिम से आक्रान्त है, लेकिन भारतीयता से उतनी ही जुड़ी है जितना कि घोर पारंपरिक व्यक्ति इस देश के कर्मकाण्ड़ से जुड़ा होता है ।

इन बातों की पुष्टि के लिए निर्मल वर्मा के सारे उपन्यासों की जाँच–परख करें तो हम पायेंगे कि उनके नायक और उनका देशकाल गहरे मानसिक उथल–पुथल का परिणाम हैं, जो सदी के उस मोड़ पर न केवल अपने वक्त की तकलीफे झेल रहे हैं, बल्कि उसके पीछे परंपरा का एक मजबूत आधार भी है । इण्डी अपने पीछे जो परिवार छोड़ आया है, वह इससे उतना अलग हो चुका है कि छुट्टियों में भी उसे घर लौटने की जरुरत महसूस नहीं होती । इण्ड़ी वापस नहीं जाता लेकिन परिवार का वह खोखलापन इस सुदूर देश में भी उसके साथ है । रायना जर्मनी छोड़कर प्राग आई हुई है । लेकिन उसके साथ पूर्व पति की वे यादें भी वहाँ तक चली आयी है, जिससे हफ्ते में एक बार मिलती है और नये–नये शहरों में अपना जीवन ढूँढ ने चल देती है । इस उपन्यास में फ्रांज और मारिया भी है । फ्रांज किसी और देश का विजा चाहता है और मारिया से शादी करके अपने देश में ही लौटना चाहता है । स्पष्ट है कि इसके पीछे फ्रांज का वह पारिवारिक वातावरण है, उसकी वह परंपरा है, जिसके कारण प्राग के अध्यापक उसे पसंद नहीं करते और वह पबों में भटकता रहता है तथा ईश्वर और शैतान को एक मानता है । फ्रांज बचपन में उस युद्ध से आक्रांत है, जो उसने देखा था । माँ ने एक–दूसरा विवाह कर लिया है और पश्चिम बर्लिन में रहती है । जिससे वह क्रिसमस के दौरान मिल जाता है । लेकिन हमेशा के लिए वह अपने घर वापस लौटना नहीं चाहता । फ्रांज की तरह मारिया भी है, जो कुछ नहीं बोलती और अपने दुःखों को अपने अतीत को चुपचाप पी जाती है, जिसके पास उपन्यास के सारे पास सुख ढूँढने जाते हैं । लेकिन अंततः पाते

हैं कि मारिया किसी गहरे दुःख के बीच डूबी हुई है । टी.टी. बर्मा का निवासी है और अपने देश के अखबारों का पुलिंदा पाने पर सारी रात उसे उलटता-पलटता रहता है । उसे प्राग और चेक भाषा दोनों से नफरत है; लेकिन वह अपने देश में लौटना नहीं चाहता । वह चाहता है कि माँ दूसरा विवाह कर ले और अपनी अकेली उदासी से हंमेशा मुक्त हो जाये । उन पात्रों के अलावा मेलकोन्विच है जो किसी से कुछ नहीं बोलता और बंद कमरे के भीतर संगीत की धुनों में खोया हुआ अपने परिवार को याद करता है । वह स्वदेश लौटना चाहता है लेकिन राजनैतिक कारणों से वहाँ लौट नहीं सकता । ध्यान से देखे तो ये सारे पात्र परंपरा से पाये हुए क्षतिग्रस्त जीवन के कारण उस स्थिति में फँसे हैं, जहाँ से पीछे का रास्ता बंद हो चुका है और आगे के लिए खोखली संभावनाएँ मुँह खोले हुए खड़ी हैं ।

'वे दिन' से अलग और पारिवारिक धरातल पर बुना गया उपन्यास है 'लाल टीन की छत' जिसमे दिल्ली में नौकरी करते हुए पिता हैं जो छुट्टियों के बीच कभी-कभी आ जाते है । परिवार में अधिकतर महिलाएँ हैं । माँ है, मिसेज जोसुआ है, लामा है, काया है और इन सबके बीच दूर तक प्रसरी हुई एक उदासी है जो पूरे घर को अधूरा और तनावग्रस्त करती चलती है । काया बड़ी हो रही है । उसे अपनी उम्र के धरातल का एक साथी चाहिए, जिसके साथ बैठकर वह अपनी जिज्ञासाओं को शांत कर सकें, उससे कुछ पूछ सकें और अपना अधूरापन समाप्त कर सके । काया के साथ लामा है जो उसका अधूरापन समाप्त करता है । अंततः वह कहीं दूर ब्याह दी जाता है और काया को अधूरा करते हुए स्वयं भी अधूरे लोक में लौट जाता है । मिसेज जोसुआ है जो अपने पति से अलग होकर इस देश में चली आयी है और संपूर्ण रूप से अधूरी होकर रह गयी है । बिमार माँ है जो पीड़ा और अकेलेपन की प्रतिमा है । चाचा है जो नथवाली पहाड़ी स्त्री के साथ जाकर अपने अधूरेपन को तोड़ने में लगे हैं और विरेन हैं जिसके साथ काया अंततः जुड़ नहीं पाती । उपन्यास के सारे पात्र एक छोटे से सुख की तलाश में आधी-अधूरी जिन्दगी की तलाश में भटक रहे हैं । स्पष्ट है कि यहाँ भी

परंपरा और वर्तमान का यही द्वंद्व दिखायी देता है जो 'वे दिन' में विदेशी पात्रों के माध्यम से संबंधों के दूसरे धरातल पर रचा गया था ।

निर्मल वर्मा का अगला उपन्यास 'एक चिथड़ा सुख' में बिट्टी थियेटर के प्रति समर्पित होकर दिल्ली चली जाती है और ड़ैरी भाई के प्रति आकर्षण में प्रेम के उस बदहाली को स्वीकार कर लेती है जो उसे चौराहे पर छोड़ देती है और मंजिल तक नहीं ले जाती । नित्तीभाई इरा को स्वीकार नहीं कर पाते और पानी में डूबकर आत्महत्या कर लेते हैं । इरा पागलपन की स्थिति में लंदन लौट जाती है । इन पात्रों के बीच मुन्नु है जिसे सबकुछ कष्टप्रद लगता है, लेकिन वह बोल नहीं सकता, क्योंकि उसे पिता ने हर मोड़ पर चुप रहने की नसीहत दी है । स्पष्ट है कि यह अधूरापन यहाँ भी पात्रों की नसों में तेजी से दौड़ता रहता है ।

'रात का रिपोर्टर' का रिशी आपातकाल में अपने इस रिपोर्टींग से परेशान है जो बस्तर से लम्बे समय तक प्रवास के दौरान लिखकर लाया है । लेकिन आपातकाल में दयाल साहब से मिलकर वह अपना होश खो बैठता है । उसके सामने अनूपभाई है, प्रेमिका बिन्दु है, पत्नि और अस्पताल की यंत्रणाएँ हैं और इन सबके बीच कलम के उपर वह प्रश्नचिन्ह है जिसके कारण वह कभी भी पकड़ लिया जायेगा, उसके साथ दबाव किया जायेगा, मार दिया जायेगा या पता नहीं उसके साथ क्या होगा ? एक निरंतर खालीपन की ओर बढ़ती हुई यात्रा का परिणाम है यह उपन्यास । उस खालीपन के बीच लेखक अंततः मजदूरों की बस्ती का सहारा लेता है और एक सपने के भीतर उसकी आकांक्षाओं का अंत होता है ।

इसी तरह 'अंतिम अरण्य' के मेहरा साहब पहाड़ी कस्बे में अपने जीवन का अध्याय लिखा रहे है । लेकिन लिखते–लिखते वे पाते हैं कि जो कुछ लिखा रहे थे, पता नहीं वह क्या था । वे तय नहीं कर पाते कि वे कितना उचित कर रहे है या अनुचित । मेहरा साहब अतीत में बार–बार खो जाते हैं और संबंधों का एक अटूट संसार उन्हें उस संस्मरण लेखन से बार–बार भटका ले जाता है । जिसके लिए उन्होंने इस पहाड़ी कस्बे की शरण लीं ।

मेहरा साहब जीवन और मृत्यु के बीच जुलने लगे है और अंततः एक दिन अपनी अधूरी स्थिति के साथ संसार से विदा हो जाते हैं । यहाँ भी परंपरा और वर्तमान उनका पीछा नहीं छोड़ता और अंततः उन्हें मृत्यु तक पहुँचा देता है ।

निर्मल वर्मा के इन पात्रों का संसार संवेदनाओं का वह अंतत संसार है, जिसे हजारो कोनों से देखने और परखने के बाद भी सहसा लगता हैं कि कहीं कुछ छूट गया है । अपने समय को शताब्दियों की विकसित होती हुई संस्कृति के बीच लेखक ने जिस तरह चित्रित किया है, उसे बहुत लम्बे समय तक देखा और परखा जाता रहेगा । शायद तभी उसके संपूर्ण रचनाकर्म की पहचान संभव नहीं होगी ।

फिर भी उनकी संवेदना की परख करने के लिए उनके पात्रों के माध्यम से भारतीय और पाश्चात्य विचारकों की विचारधारा की रोशनी में हमें समकालीन दुनिया को देखना होगा, जिसमें पात्रों का नवीन संदर्भो में निरूपण है । भले ही यह निरूपण उन्हें तथाकथित चरित्रहीनता और स्वच्छंदता की दुनिया में खड़ा कर देता हो । वास्तव में यह उनका यथार्थ है जिसे वे गहरे दुःखों के बीच अपने समय के परिणाम के बीच जी रहे है । अंततः संबंधों का एक ऐसा नग्नरूप पाते हैं जो उन्हें एक–दुसरे के प्रति निष्ठा और लगाव की जगह मोहभंग से भर देता है । उनकी कृतियों में हर संबंध अंततः चरम पर जाकर टूटता है । चाहे वह इण्डी और रायना का संबंध हो, दिवा और मेहरा साहब का संबंध हो, डैरी और बिट्टी का संबंध हो, संबंधों की यह टूटन सर्वत्र दिखाई देती है । वास्तव में संबंधों की यह दुनिया उन्हें ऐसे सतह पर ले जाती है जहाँ प्रगाढ क्षणों में पहुँचकर वह अंततः स्वतंत्रता चाहते हैं और यह स्वतंत्रता उन्हें संबंधों की मुक्ति की ओर ले जाती है । यह मुक्ति उन्हें मृत्युबोध पर ले जाकर ठहरा देती है । यह मृत्यु बोध इण्डी, मेलन्कोविच और टी.टी. का है, यही मृत्युबोध दयाल साहब और अनूपभाई का है, और यही मृत्युबोध डॉ. सिंह कथानायक, 'मैं' अन्नाजी और अंततः मेहरा साहब को अपनी ओर खींचता चलता है ।

यह स्पष्ट है कि संबंधों के शिखर पर पहुँचकर निर्मल वर्मा के सारे पात्र अपने को मोहभंग की स्थिति में पाते हैं । उन्हें उन उपलब्धियों से नफरत होने लगती है जो उन्हें सपनों की दुनिया में ले जाती हैं । फिर भी उनमें जीवन के प्रति एक प्रबल आकांक्षा है । वे उस मोह भंग से उबलकर किंचित खीज और दुःख के साथ अपने अगले पड़ाव की ओर चल देते हैं । वास्तव में उनके ये पात्र प्रेम के प्रति उन नवीन दृष्टिकोण से परिपूर्ण हैं, जो उन्हें समकालीन दुनिया ने जीने को विवश किया है । भले ही वह प्रेम भारतीयता को कहीं झटका देकर पश्चिम के खुलेपन को प्रश्रय देता हो । यह प्रेम वास्तव में भारतीय पीढ़ियों का एक ऐसा संघर्ष उपस्थित करता है जिसे पारंपरिक रूप से स्वीकार करना बहुत कठिन है । लेकिन समय के बदलते हुए मूल्यों में इस अंतर्राष्ट्रीय हो चुके बोध को स्वीकारना लेखक के लिए संभव नहीं हो पाता । यहीं कारण है कि उसके पात्र उस रूप में बंधनमुक्त हो उठते हैं । यह मुक्ति एक ओर संस्कृतियों का द्वंद्व उत्पन्न करती है तो दूसरी ओर संवेदनाओं के ऐसे धरातल खोलकर रख देती है, जिन्हें अस्वीकार करना अपने समय की सच्चाईयों को अस्वीकार करना होगा । इन सच्चाईयों के माध्यम से निर्मल वर्मा संवेदनाओं की जिस दुनिया की यात्रा करते हैं, वह एक विराट दुनिया की परिणति है ।

निर्मल वर्मा इन संवेदनाओं के लिए एक ऐसे शिल्प का निर्माण करते हैं जो भारतीयता के हिसाब से परंपराओं को तोड़ता हुआ विशिष्ट सर्जनात्मकता का उपयोग करता है उनके कथानक सिलसिलेवार कही गई कहानी के विपरीत, घटना विशेष की अनुगूँज पर आधारित है, जो दूर तक कथा के साथ चलती रहती है । जो सूक्ष्म संकेतों के आधार पर बुनी हुई जीवन का वह तरल आख्यान होती है, जिसकी विरलता को पाठक गहरे तक अनुभव करता है । यह कथा–कथन प्रायः आत्मकथात्मक रूप से लेखक को उस प्रामाणिकता के आसपास खड़ा कर देता है, जो इस बात का बोध कराते हैं कि जैसे वह स्वयं इस कथाधारा में कहीं शामिल रहा हो । जैसे उसने स्वयं तरलता के सारे क्षण अनिवार्य रूप से जीये हों ।

इस सर्जनात्मक विशिष्टता के लिए निर्मल वर्मा ने वह संवेदनशील रचनात्मकता दी है, जिसमें एक और लयबद्धता है तो दूसरी ओर भाषा की कवितामय अभिव्यक्ति है । उन्होंने अपने उपन्यासों में भारतीयता से लेकर पश्चिम तक के उन सारे शब्दों को बार–बार दोहराया है, जो प्रायः भारतीय परंपरा में प्रचलित रहे हैं और अपनी उपस्थिति से समकालीन अंतर्राष्ट्रीय दुनिया की पहचान धनीभूत कर देते हैं । इस क्रिया–प्रक्रिया में लेखक का अपना मुहावरा है, बिम्बों और प्रतिकों का नवीनतम उपयोग है जो सांकेतिक ढंग से अमूर्त की यात्रा करता हुआ, मूर्त की संभावनाएँ व्यक्त करता है । उनके शब्दों का चयन रचना का वह विशिष्ट संसार निर्मित करता है, जिससे यह प्रमाणित होता है कि निर्मल वर्मा एक अंतर्राष्ट्रीय सोच और समझ के रचनाकार हैं और अपनी पहचान उस धरातल पर की जानी चाहिए ।

निर्मल वर्मा की यह परख उन सारे कोनों से करने के बाद भी, उनकी रचना के आस्वाद को अंततः सीमाहीन आस्वाद में खड़ा कर देती है जिसके लिए पहचान के सारे सूत्र निर्मूल हो जाते हैं । निर्मल वर्मा एक प्रबुद्ध लेखक हैं और हर प्रबुद्ध लेखक की तरह उनकी संवेदनाओं का संसार आस्वाद के धरातल पर ही देखा जा सकता है ।

❀❀❀

# संदर्भ ग्रंथ सूची

## ❀ आधार ग्रंथ

### ➢ निर्मल वर्मा की रचनाएँ

| *क्रम* | *पुस्तक* | *प्रकाशक* | *प्रकाशन वर्ष* |
|---|---|---|---|
| उपन्यास : | | | |
| १ | वे दिन | राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली | दूसरी आवृत्ति, १९९९ |
| २ | लालटीन की छत | राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली | पहली आवृत्ति, २००० |
| ३ | एक चिथड़ा सुख | राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली | दूसरी आवृत्ति, २००० |
| ४ | रात का रिपोर्टर | राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली | पहली आवृत्ति, २००० |
| ५ | अंतिम अरण्य | राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली | पहली आवृत्ति, २००० |
| कहानी संग्रह : | | | |
| ६ | परिन्दे | राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली | पहली आवृत्ति, १९९२ |
| ७ | पिछली गर्मियों में | राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली | द्वितीय संस्करण १९७६ |
| ८ | जलती झाड़ी | राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली | तीसरी आवृत्ति, २००० |
| ९ | कव्वे और कालापानी | राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली | चौथी आवृत्ति, १९९९ |
| १० | सूखा तथा अन्य कहानियाँ | राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली | पहली आवृत्ति, १९९८ |
| ११ | प्रतिनिधि कहानियाँ | राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली | तीसरी आवृत्ति, २००१ |
| निबंध संग्रह : | | | |
| १२ | शब्द और स्मृति | राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली | तृतीय संस्करण १९९५ |

| | | | |
|---|---|---|---|
| १३ | कला का जोखिम | राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली | तृतीय संस्करण २००१ |
| १४ | भारत और यूरोप : प्रतिश्रुति के क्षेत्र | राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली | द्वितीय संस्करण २००१ |
| १५ | शताब्दी के ढलते वर्षों में | राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली | पहली आवृत्ति २००० |
| १६ | आदि, अंत और आरंभ | राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली | पहला संस्करण २००१ |
| **यात्रा संस्मरण :** | | | |
| १७ | चीड़ों पर चाँदनी | राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली | पहला संस्करण १९९८ |
| १८ | हर बारिश में | राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली | तृतीय संस्करण १९८९ |
| **नाटक** | | | |
| १९ | तीन एकान्त | राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली | पहला संस्करण १९९० |
| **अनुवाद** | | | |
| २० | इतने बड़े धब्बे | राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली | |
| २१ | कारेल चापेक की कहानियाँ | राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली | |
| २२ | रोमियो, जुलियट और अंधेरा | राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली | |
| **डायरी** | | | |
| २३ | धुंध से उठती धुन | राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली | दूसरा संस्करण २००० |

## ➢ सहायक ग्रंथ

| *क्रम* | *किताब* | *लेखक* |
|---|---|---|
| १ | हिन्दी साहित्य का इतिहास | आ. रामचंद्र शुक्ल |
| २ | हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन | डॉ. गणेश |
| ३ | काव्य के रूप | गुलाबराय |
| ४ | संस्कृत साहित्य का इतिहास | बलदेव प्रसाद उपाध्याय |

| | | |
|---|---|---|
| ५ | हिन्दी उपन्यास | डॉ. शिवनारायण श्रीवास्तव |
| ६ | भारतीय संस्कृति के आधार स्तंभ | डॉ. रामलाल वर्मा |
| ७ | भारतीय संस्कृति तथा धर्म समन्वय की रूपरेखा | डॉ. स्वर्णकान्ता |
| ८ | हिन्दी साहित्य कोश | डॉ. धीरेन्द्र वर्मा |
| ९ | साठोतरी हिन्दी उपन्यासों में राजनैतिक चेतना | कृष्णकुमार चंद्र |
| १० | हिन्दी उपन्यास | सुषमा प्रियदर्शिनी |
| ११ | हिन्दी शब्द सागर | श्याम सुन्दरदास |
| १२ | साहित्य का उद्देश्य | प्रेमचंद |
| १३ | काव्यशास्त्र | भगीरथ मिश्र |
| १४ | हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास | हजारी प्रसाद द्विवेदी |
| १५ | हिन्दी साहित्य का इतिहास | डॉ. नगेन्द्र |
| १६ | प्रेमचंद की प्रासंगिकता | अमृतराय |
| १७ | नया साहित्य नये प्रश्न | नन्ददुलारे वाजपेयी |
| १८ | भारतीय तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र | डॉ. सत्यवेद चौधरी |
| १९ | साहित्य का उद्देश्य | प्रेमचंद |
| २० | साहित्य सहचर | हजारी प्रसाद द्विवेदी |
| २१ | निर्मल वर्मा | संपादक : अशोक वाजपेयी |
| २२ | हिन्दी उपन्यास | ममता कालिया |
| २३ | कथाकार निर्मल वर्मा | नरेन्द्र इष्टवाल |
| २४ | कहानी की बात | मार्कण्डेय |
| २५ | कहानी, नयी कहानी | नामवरसिंह |
| २६ | आधुनिक हिन्दी उपन्यास | इन्द्रनाथ मदान |
| २७ | जातक | भदन्त आनंद कौशल्यायन |
| २८ | हिन्दी उपन्यास | डॉ. शिवनारायण श्रीवास्तव |
| २९ | साठोतरी हिन्दी उपन्यासों में राजनैतिक चेतना | डॉ. कृष्णकुमार |
| ३० | हिन्दी उपन्यास | सुषमा प्रियदर्शिनी |

| | | |
|---|---|---|
| ३१ | हिन्दी उपन्यास : शिल्प और प्रयोग | डॉ. त्रिभुवन सिंह |
| ३२ | निर्मल वर्मा और उत्तर उपनिवेशवाद | डॉ. सुधीश पचौरी |
| ३३ | हिन्दी लघु उपन्यासों के संदर्भ में निर्मल वर्मा का उपन्यास | छाया मोहर्रिर |
| ३४ | निर्मल वर्मा : सृजन और चिन्तन | रमेश शाह |
| ३५ | निर्मल वर्मा और सुरेश जोशी का कथा साहित्य | डॉ. रेखा शर्मा |
| ३६ | हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास | डॉ. मफतलाल पटेल |
| ३७ | हिन्दी उपन्यास नये क्षितिज | डॉ. शशिभूषण सिंहल |
| ३८ | हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास | डॉ. रणवीर बाबू |
| ३९ | आज का हिन्दी साहित्य | डॉ. रामदरश मिश्र |
| ४० | हिन्दी लघु उपन्यास | घनश्याम मधुप |
| ४१ | निर्मल वर्मा : सृजन और चिंतन | डॉ. प्रेमसिंह |
| ४२ | हिन्दी उपन्यास : द्वन्द्व और संघर्ष | डॉ. मोहनलाल रत्नाकर |
| ४३ | हिन्दी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना | डॉ. उषा यादव |
| ४४ | हजारी प्रसाद द्विवेदी चुने हुए निबंध | मुकुन्द द्विवेदी |
| ४५ | आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य में काममूलक संवेदना | श्री रामबा महाजन |
| ४६ | अग्निसागर : संवेदनापक्ष | डॉ. विरेन्द्र भारद्वाज |
| ४७ | आधुनिक साहित्य संज्ञाकोश (गुजराती) | डॉ. चंद्रकान्त टोपीवाला |
| ४८ | नालंदा विशाल शब्दसागर | श्री नवलजी |
| ४९ | हिन्दी संस्कृत कोश | डॉ. रामस्वरूप 'रुसिकेश' |
| ५० | भगवदगो मंडल (गुजराती) | स. भगवतसिंहजी |
| ५१ | हिन्दी साहित्य कोश भाग-१ | सं. धीरेन्द्र वर्मा |
| ५२ | संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर | सं. रामचंद्र वर्मा |
| ५३ | मानवी की पारिभाषिक कोश : साहित्य खण्ड | सं. श्री राय |
| ५४ | दिनमान साहित्य सिद्धांत और समालोचना | डॉ. देवीप्रसाद गुप्त |
| ५५ | दिनमान हिन्दी शब्दकोश | सं. श्री शरण |

| | | |
|---|---|---|
| ५६ | हिन्दी कहानी एक अंतरंग पहचान | डॉ. रामदरश मिश्र |
| ५७ | सामाजिक यथार्थ और कथा–भाषा | डॉ. अज्ञेय |
| ५८ | अमृतलाल नागर का उपन्यास साहित्य | |
| ५९ | हिन्दी शब्दसागर | संपादक श्यामसुन्दरदास |
| ६० | मानवि की पारिभाषिक कोश | संपा. नगेन्द्र |
| ६१ | हिन्दी–उर्दू उपन्यास शिल्प बदलने परिप्रेक्ष्य | डॉ. प्रेम भट्टनागर |
| ६२ | प्रेमचन्दोतर उपन्यासों की शिल्प विधि | डॉ. सत्यपाल चुध |
| ६३ | हिन्दी उपन्यास की शिल्पविधि का विकास | डॉ. ओम शुक्ल |

1. The History of English Novel, See Bakes
2. The Grouth of English Novel, Chusen
3. A Short History of French Literature

➢ *पत्र पत्रिकाएँ :*

वागर्थ, अंक फरवरी २०००
वागर्थ, अंक मई २०००
वागर्थ, अंक जुलाई २००१
वागर्थ, अंक सितम्बर २००२
पूर्वग्रह – अंक, दिसम्बर–जनवरी १९९८
सृजन दस्तावेज, अंक, जुलाई–सितम्बर–१९९९
पल–प्रतिपल – अंक, मार्च–जुन, २०००
विश्वभारती पत्रिका – अंक, अप्रैल–जून, १९७६
आलोचना – अंक, अप्रैल, १९५४
आलोचना – अंक, अक्टूबर–दिसम्बर, १९७८
साहित्य संदेश – अंक जुलाइ–अगस्त, १९५६
नयी अक्षरा अंक, जनवरी–मार्च १९९८
धर्मयुग – जुन, १९७९
कला वार्ता – अगस्त, १९८१


❀❀❀